गुरुमण्डलग्रन्थमालायाः पञ्चदशपुष्पम्

श्रीसात्त्विकजीवन-स्तोत्रमाला

प्रथमो भागः

श्रीगणेश, कार्त्तिकेय, शङ्कर और भगवती के
स्तोत्रों का संग्रह
(सानुवाद)

सज्जनकुमार मोर
५, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

प्रथमवार १०००

❀ श्रीः ❀

भगवत्पूजा के द्वादश-पुष्प

अभय दान दो भयविह्वल को, भूखे को भोजन का दान।
प्यासे को जल दान करो और अपमानित को आदर-दान॥

अज्ञानी को ज्ञान-दान दो, आरत को सुखशान्तिप्रदान।
वस्त्रहीन को वस्त्र-दान दो, रोगी को औषध का दान॥

धर्मरहित को धर्म सिखाओ, शोकातुर को धीरज दान।
भूले को सन्मार्ग बताओ, गृहविहीन को आश्रय-दान॥

करो सभी निःस्वार्थ भाव से, कभी न हो अहमिति का भार।
अपने सम सबको ही मानो, फिर किसपर किसका आभार॥

इन बारह पुष्पों से प्रतिदिन, जो करता पूजन अरु ध्यान।
हो निष्काम प्रेमयुत उसको, निश्चय मिलते हैं भगवान्॥
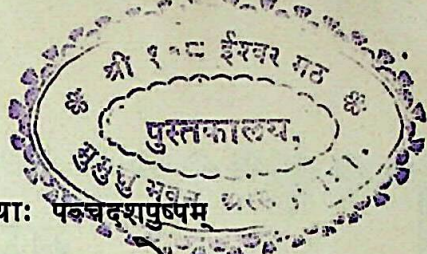
गुरुमण्डलग्रन्थमालायाः पञ्चदशपुष्पम्

श्री सात्त्विकजीवन-स्तोत्रमाला

प्रथमो भागः

गणेश, कार्त्तिकेय, शङ्कर और भगवती के स्तोत्रों का संग्रह

(सानुवाद)

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं शाम्भवम् ॥
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टि नवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

सज्जनकुमार मोर

५, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

विक्रम सं० २०१२] प्रथमवार १००० [ईशवीय सन् १९५६

समर्पण

अपनी स्नेह-सुधा की सतत प्रवहमान निर्झरिणी से जिसने हम सभी का लालन-पालन कर अपनी वात्सल्यमयी अमर साधना से उनींदे बच्चों को दुलार से थपकियां दे-देकर मन, वाणी और कर्म से जीवन-पर्यन्त हमें कर्त्तव्य मार्ग में लगा हमारा अवर्णनीय उपकार किया, बल्कि हमारे लिये ही जीवन लगाया ; उसी सर्वस्वभूता स्वर्गीया

पूज्या मा के

यशः शरीर की सेवा में श्रद्धाभक्तिपूर्वक स्मृतिरूप यह अकिञ्चन भेंट

श्रीसात्त्विकजीवन-स्तोत्रमाला सादर समर्पित है।

मातः ! हमारे अपराध क्षमा करती हुई दिव्य-लोक से नित्य जननी और जन्मभूमि के लिये गौरव बढ़ाने की सामर्थ्य देने का शुभाशीर्वाद देती रहना।

"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।"

प्यारा कनिष्ठ पुत्र—

सज्जनकुमार मोर

✻ पूज्या माता ✻

श्रीमती भगवानी देवी मोर

(भाद्रपद शु० ५ वि० सं० १९५५—माघ कृ० २ सं० २००६)

स्नेह-सुधा का सिञ्चन कर जो सन्तति को सहलाती।
वत्सलता से भावित होकर अपना ध्येय बनाती॥
मातृजाति की गौरव-गाथा अमर रहे जय तेरी।
आशिष दो निज बालक को यह नम्र प्रार्थना मेरी॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

इस स्तोत्रमाला के विषय में

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

(सम्पूर्ण दिग्विदिशाओं में ऊँचे विचारों एवं सृष्टि के प्राणीमात्र के हितार्थ उन्नत क्रिया-कलापों का विस्तार हो।)।

श्रीरासेश्वर जगन्मङ्गलकारी परब्रह्म प्रभु की चितिशक्ति की पूर्ण कृपा से यह अभिनव प्रयत्न "सात्त्विकजीवन-स्तोत्रमाला" के प्रथम भाग के रूप में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। वैसे तो प्रभु की अविचिन्त्य गुण-गरिमा का प्रार्थना रूप में सर्वत्र सभी भाषाओं में अलौकिक चमत्कारमय वर्णन हुआ है, परन्तु संस्कृत भाषा की विशिष्ट छन्दोवद्ध प्रणाली में गेय पदों की विशेषता, भावप्रवणता और एकात्मता की विशेषता से वह रूप अधिक मुखरित हुआ है। इसीलिये संस्कृत स्तोत्रों का यह संग्रह प्रस्तुत है। इसके नामकरण के पीछे एक छोटी-सी घटना है जिसका उल्लेख करना समयोचित है।

सम्वत् २०१० के चैत्र में पूज्य पिताजी जब नवलगढ़ स्वास्थ्य-सुधार के लिये गये हुए थे, तब हम सभी बालक उनके साथ थे। वहां प्रायः उन्होंने पुराण के पारायण का क्रम चालू रक्खा। एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार सन्ध्या को "सात्त्विकजीवन-शाला" के विशाल प्रार्थना भवन में विद्याव्रती ब्रह्मचारियों के द्वारा किये जानेवाले नियत सङ्कीर्त्तन में आनन्द लाभ होता था। हम सभी उस समय शाला के विद्यार्थी के रूप में बराबर ही उपस्थित रहते थे। मुझे इनको याद करने की रुचि हुई, तो पं० हनुमत्प्रसादजी शास्त्री ने कृपाकर लिखकर संग्रह कर दिया। सामूहिक प्रार्थनाओं में जो एकतानता, ध्यानमग्नता और पवित्र वातावरण की सृष्टि से हृदय की परितृप्ति होती है वह अनिर्वचनीय है। ब्रह्मचारियों की इस समष्टिगत स्वरलहरी से हृत्तन्त्री के तार सविशेष झङ्कृत हो जाते हैं जो अनुभव से ही अधिक प्रत्यक्ष है। अस्तु,

वहीं फिर पुराण कथाओं में जगन्माता एवं अचिन्त्य महिमामय प्रभु की नाना

रूपमयी अहैतुकी भक्ति से विलसित देव, मनुष्य एवं ऋषियों द्वारा समय-सम
पर अभिलषित इष्ट की प्राप्ति के लिये आर्त्तभाव से की गई स्तुतियां आती थ
तो पूज्य बाबूजी ने शाला के अध्यक्ष श्री पं० बसन्तलालजी शास्त्री, एम० ए
साहित्याचार्य एवं प्राध्यापक श्री हनुमत्प्रसादजी शास्त्री को इन्हें बताया, ये आ
सब को बहुत ही पसन्द आईं। अध्यक्षजी ने यह प्रस्ताव किया कि ये स्तुति
एकत्र कर शाला के सान्ध्य प्रार्थना के समय नियमित रूप से एक के बाद ए
भक्तिप्रवण वातावरण में गाई जांय। यह काम भाषानुवाद के साथ करने
लिये श्री पं० हनुमत्प्रसादजी को दिया गया, तदनुसार कार्य होने लगा
जो स्तुतिभाग पुराणों में दिन में देखा जाता सन्ध्या को उसे ब्रह्मचारीग
प्रभु की सेवा में प्रार्थना-नैवेद्य में समर्पित करते। मेरे देखते-देखते पचास
स्तोत्र संग्रह में एकत्रित हो गये। अब इन्हें उपयोगार्थ लिपिबद्ध छपाने के लि
तैयार किया गया और गणनाथ की कृपा से शिवपरिवार के गणेश, कार्त्तिकेय
शङ्कर तथा भगवती स्तोत्रों का यह गुच्छक उसी का प्रथम प्रयास है। इसमें स्तुति
भाग के साथ कवच, हृदय और उपनिषत् तथा शतनाम के क्रम का समावेश है

संस्कृत की भावोपनिबद्ध शैली का राष्ट्र-भाषा में समुचित अर्थ प्रकट कर
के लिये विशेष प्रौढ़िमा एवं सभी विषयों का पूर्ण अधिकार अपेक्षित है। अत
उसमें भावों की स्पष्टता अधिक व्यक्त नहीं होने पर भी अनुवादमात्र सङ्कोचवश
किया गया है। इस काम में प्रूफ-रीडिङ्ग, संशोधन एवं चयन में हमारे कलकत्तास
श्रीमोर प्राच्य शोध-संस्थान की पण्डित-मण्डली के सदस्यों ने अधिक योग दिय
है। जहां-तहां मानव सुलभ अशुद्धियां अपेक्षित हैं। कृपालु स्तोत्रमाला के प्रेमीगण
इन्हें शोधन कर कृतार्थ करें।

"कामये दुःखतप्तानाम्प्राणिनामार्त्तिनाशनम्"।

श्रीपञ्चमी बृहस्पतिवार, विक्रम सं० २०१२
५, क्लाइव रो, कलकत्ता।

कृपाभिलाषी—
सज्जनकुमार मोर

निर्माल्यन्निवेदनम्
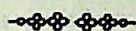
अयि भगवद्गुणगानरसिकास्तन्नामकीर्त्तनपरायणा भक्तजनाः कतिपयैरहोभिरस्मत् श्रेष्ठिनां मानससरःसन्निधौ प्रावर्तत पुराणपारायणं पर्व। तस्मिन्नेव मानससरसि पर्वणोद्वेल्लिते वेलातटे सततशास्त्रावगाहनात् निर्मथनादिव स्वतः प्राप्तानि सर्वभूतहिते रतादीनि वाक्यरत्नानि समये समये उपायनीकृत्य प्रदीयन्ते स्म परिचितेभ्यो भागवद्भ्यः। तेष्वेव वितीर्यमाणेषु-अहमपि विशेषतो लोलुपतया कानिचिद् भगवतो नानानामरूपधारिणः परमेश्वरस्य स्तोत्ररत्नानि आप्राप्नुवम्। तान्येव प्रगुणीकरणाय निधिरिवसंरक्षणाय श्रीमद्भगवच्चरणयोर्न्यस्यन्ते।

——हनुमत्प्रसादेन
सात्त्विकजीवनशालाप्राध्यापकेन

श्री सच्चिदानन्द प्रभु के पाद-पद्मानुरागी भक्तजनो! यदि आप अपनी आत्मा को बलिष्ठ बनाने की वाञ्छा रखते हों तो, भगवन्नाम का नैवेद्य चढ़ाओ। यही आत्मा का पोषक है, जो जिसका अंश होगा उसको उसीसे पोषण प्राप्त होता है। अतः उस अनादि अखण्ड अनन्त प्रभु से यदि योग-क्षेम की प्राप्ति आपको अभीष्ट है तो नाम जप करो। "कलौ नामैव नामैव" हरिनाम-कीर्त्तन के साथ-साथ उस परमपिता को नमस्कार भी करते रहना चाहिये, क्योंकि नमस्कार ही स्वापकर्षबोधपूर्वक प्रभु के उत्कर्ष को ज्ञापन करता है। अतः प्रस्तुत स्तोत्ररत्नमाला में नमामियुक्त स्तोत्रों का संग्रह अधिक किया गया है। दूसरा जपशब्द प्रयुक्त किया गया है, यह भी सर्वेश्वर की सर्वातिशायिता का द्योतक है।

उपासक के लिये यही भाव कल्याणकारी होते हैं कि हे भगवन्! मैं आपका दास हूं आप स्वामी हैं। मैं अंश हूं आप पूर्ण हैं। यही ध्वनि प्रत्येक नामोच्चारण के साथ व्यक्त होती रहे। इसी उद्देश्य से नमस्कार जपकारयुक्त स्तोत्र ही इस संग्रह में संगृहीत किये हैं। आशा है कि भगवत् प्रेमी भक्तजन इनको उच्चारण करके भुक्ति-मुक्ति प्राप्त करेंगे। मन्त्र के साथ-साथ मन्त्रार्थ भी आवश्यक है; क्योंकि अनर्थज्ञ को पाठकों की श्रेणी में अधम कहा है। अतः इन स्तोत्रों का हिन्दी अनुवाद भी यथामति किया गया है जिससे उस सर्वशक्तिमान् के स्वरूप तथा विभूतियों का यथावत् ज्ञान प्राप्त कर पाठकजन अधिक लाभान्वित हों। यद्यपि प्रस्तुत संग्रह में भिन्न-भिन्न देवताओं की स्तुतियाँ हैं तथापि सूक्ष्म दृष्टि से अर्थ का मनन करने से एकेश्वरवादिता की ही पुष्ट होती है। उसी सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान् को अनेक नामों से गाया है। यह १०५ स्तोत्रों का संग्रह है, इसमें गणेश, कार्तिक, शिव और दुर्गा की स्तुतियां हैं। शेष स्तोत्र पुनः।

वसन्तपञ्चमी २०११ विक्रम सम्वत्
श्रीसात्त्विक-जीवन-शाला
नवलगढ़ (राजस्थान)

निवेदक—
हनुमत्प्रसाद शास्त्री

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीसात्त्विक-जीवनस्तोत्रमाला

प्रथमो भागः
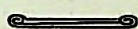
हिन्दी भावानुवाद के स्तोत्रों की

विषय-सूची

स्तोत्रनाम ... पृष्ठाङ्क

(१) श्रीगणपतिस्तोत्राणि—

(२) श्रीषडाननस्तोत्राणि—

(३) श्रीशङ्करस्तोत्राणि—

स्तोत्रनाम | | | पृष्ठाङ्क

मङ्गलश्लोकानां संग्रहः

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरम्
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरम्
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः ।
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरनरतिलकं रत्नसिंहासनस्थम् ॥
दोर्भिः पाशाङ्कुशाब्जाभयवरमनसं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रम्
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ।

यम्ब्रह्मवेदान्तविदो वदन्ति परं प्रधानं पुरुषं तथाऽन्ये
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ॥

प्रातःस्मरणानि—(१) श्रीगणेशस्य

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम् ।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्डमाखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ॥
प्रातर्नमामिचतुराननवन्द्यमानमिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम् ।
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय ॥
प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तिशोकदावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम् ।
अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाहमुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम् ।
प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ॥

---

(२) परब्रह्मणः

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं तद्ब्रह्मनिष्कलमहं न च भूतसङ्घः॥
प्रातर्भजामि मनसा वचसामगम्यं वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण।
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचंस्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम्॥
प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्त्तौ रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितम्वै॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम्।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम्॥

---

(३) श्रीशिवस्य

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥
प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्द्धदेहं सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम्।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥
प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षडभावशून्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥
प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य श्लोकत्रयं येऽनुदिनम्पठन्ति।
ते दुःखजातं बहुजन्मसञ्चितं हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः॥

---

(४) श्रीभगवत्याः

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम्।
दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां रक्तोत्पलाभचरणां भवतीम्परेशाम्॥
प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्डशुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम्।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललीलाम् चण्डीं समस्तसुरमूर्त्तिमनेकरूपाम्॥
प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम्।
संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां मायां परां समधिगम्यपरस्य विष्णोः॥

श्रीगणेशस्तोत्रम्

विष्णुरुवाच।

गणेशमेकदन्तञ्च हेरम्बं विघ्ननायकम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥
नामाष्टार्थञ्च पुत्रस्य शृणु मातर्हरप्रिये !। स्तोत्राणां सारभूतञ्च सर्वविघ्नहरं परम्॥
ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः। तयोरीशं परम्ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः। बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम्॥
दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः। दीनानां परिपालकं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः। विपत्खण्डनकारकं नमामि विघ्ननायकम्॥
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरम्पुरा। पित्रादत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरञ्च तम्॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ। सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्॥
विष्णुप्रसादपुष्पञ्च यन्मूर्ध्नि मुनिदत्तकम्। तद्गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम्॥
गुहस्याऽग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये। वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम्॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे! नामभिः संयुतं परम्। पुत्रस्य पश्य वेदे च तदा कोपं यथा कुरु॥
एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतं शुभम्। त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी॥
ततो विघ्नाःपलायन्ते वैनतेयाद् यथोरगाः। गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद्ध्रुवम्॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी विपुलां स्त्रियम्। महाजड़ः कवीन्द्रश्च विद्यायांश्च भवेद्ध्रुवम्

॥ इति ब्रह्मवैवर्त्ते गणपतिखण्डे श्रीगणेशस्तोत्रं समाप्तम्॥

श्रीभगवत्यष्टपदी

जय जय जनकसुनन्दिनि ! हरिवन्दिनि ! हे !
दुष्टनिकन्दिनि ! मातः ! जय जय विष्णुप्रिये ! ।।
सकलमनोरथदोहिनि ! जगसोहिनि ! हे !
पशुपतिमोहिनि ! मातः ! जय जय विष्णुप्रिये ! ।।
विकटनिशाचरकुन्थिनि ! दधिमन्थिनि ! हे !
त्रिभुवनग्रन्थिनि ! मातः ! जय जय विष्णुप्रिये ! ।।
दिवानाथसमभासिनि ! मुखहासिनि ! हे !
मरुधरवासिनि ! मातः ! जय जय विष्णुप्रिये ! ।।
जगदम्बे ! जगकारिणि ! खलहारिणि ! हे !
मृगरिपुचारिणि ! मातः ! जय जय विष्णुप्रिये ! ।।
पिप्पलादमुनिपालिनि ! वपुशालिनि ! हे !
खलदलदालिनि ! मातः ! जय जय विष्णुप्रिये ! ।।
तेजविजितसौदामिनि ! हरिभामिनि ! हे !
अयि गजगामिनि ! मातः ! जय जय विष्णुप्रिये ! ।।
धरणीधरसुसहायिनि ! श्रुतिगायिनि ! हे !
वाञ्छितदायिनि ! मातः ! जय जय विष्णुप्रिये ! ।।
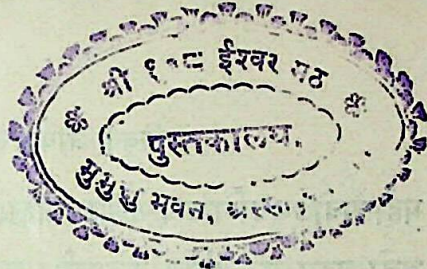
सात्त्विक जीवन-स्तोत्रमाला
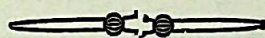
श्री गणपतिस्तोत्राष्टकम्

यः सर्व कार्येषु सदा सुराणामधीशविष्ण्वम्बुजसंभवानाम् ।
पूज्यो नमस्यः परिचिंतनीयस्तं विघ्नराजं शरणं व्रजामः ॥

न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसम्प्रदाता ।
निश्चित्य चैतत् त्रिपुरान्तकोऽपि तं पूजयामास वधेऽसुराणाम् ॥

करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन् महाक्रतौ सत्वरमाम्बिकेयः ।
ध्यातेन येनाऽखिल देहभाजां पूर्णा भविष्यन्ति मनोरथा वै ॥

श्री गणेश की हम सब शरण हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवताओं के सब कार्यों के अधीश्वर हैं और इसीलिये जो प्रथम पूज्य तथा सर्व प्रथम स्मरणीय हैं।

श्री विघ्नराज (गणपति) के समान शीघ्र मनोवाञ्छित सिद्धिदाता अन्य देव नहीं है। यही निश्चय कर त्रिपुरारि (महादेव) ने राक्षसों का वध करते समय प्रथम इनकी पूजा की है।

वह अम्बिका सुत हमारे क्रियमाण कार्यों में विघ्न न होने दें। जिनके ध्यान-मात्र से सम्पूर्ण देह-धारियों के मनोरथ सिद्ध होते हैं।

महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या जातः सुतश्चिन्तित मात्र एव।
अतो वदन सुर संघाः कृतार्थाः सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः ॥
यो मातुरुत्संगगतोऽपि मात्रा निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम्।
संगोपयामास पितुर्जटासु गणाधिनाथस्य विनोद एषः ॥
पपौ स्तनं मातुरथोऽपि तृप्तो यो मातृमात्सर्यकमाय बुद्धिः।
लंबोदरस्त्वं भव विघ्नराज ! लंबोदरे नाम चकार शम्भुः ॥
संवेष्टितो देव गणैर्महेशः प्रवर्ततां नृत्यमितीत्युवाच।
सन्तोषितो नूपुररावमात्राद् गणेश्वरत्वे निषिषेच पुत्रम् ॥

भगवती पार्वती के ध्यानमात्र से ही जिस समय गणपति की उत्पत्ति हुई, तब बहुत ही देवी-देवताओं ने बड़ा उत्सव मनाया और आपका नाम सद्योजात (शीघ्र उत्पन्न) रक्खा और 'सद्योजाताय वै नमः' कहकर प्रणाम किया।

बाल्यकाल में माता पार्वती की गोद में बैठे-बैठे पिता की जटाओं में विराजमान चन्द्रदेव को जो गणपति (माता के बार बार मना करने पर भी) पिता के जटाजूट में छिपाने का प्रयत्न करते हैं, ऐसे क्रीडाप्रिय विघ्नेश्वर को प्रणाम है।

जो विघ्नराज माता पार्वती का स्तन पीते-पीते तृप्त ही नहीं हुए, अतएव जिनका नाम भगवान् शंकर ने लम्बोदर रक्खा ऐसे लम्बोदर गणपति को प्रणाम। अर्थात् इधर तो जगदम्बा के स्तन जो समस्त जीवधारियों को स्तन्य देने में समर्थ, उनमें दूध की क्या कमी और उधर गणेशजी पीनेवाले जो तृप्त होनेपर भी स्तन को छोड़ना नहीं चाहते। अतः भगवान् शङ्कर को बाध्य होकर लम्बोदरत्व का वरदान देना पड़ा।

सम्पूर्ण देवी-देवता उपस्थित थे। भगवान् शङ्कर की सभा में उपस्थित सदस्यों मे मनोविनोदार्थ नृत्य का आयोजन किया गया। सब ही प्रमथादिगणों ने

यो विघ्नपाशं च करेण बिभ्रत् स्कन्धे कुठारं च तथाऽपरेण।
अपूजितो विघ्नमथोऽपि मातुः करोति को विघ्नपतेः समोऽन्यः॥
धर्मार्थकामादिषु पूर्व पूज्यो देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम्।
यस्यार्चनं चैव विनाशमस्ति तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि॥
यो मातरं सरसैर्नृत्यगीतैस्तथाभिलाषैरखिलैर्विनोदैः।
सन्तोषयामास सदाऽतितुष्टं तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥
सुरोपकारैरसुरैश्च युद्धे स्तोत्रैर्नमस्कारपरैश्च मंत्रैः।
पितृप्रसादेन सदा समृद्धं तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥

अपनी-अपनी कला प्रदर्शित की; किन्तु गणेश्वर ने अपने नूपुर के शब्दमात्र से सब को सन्तुष्ट कर दिया। उसी समय भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न हो आपका गणराज के सिंहासन पर अभिषेक किया।

जो गणपति एक हाथ में विघ्नपाश तथा दूसरे में फरसा धारण करते हैं तथा बिना पूजा किये जो शिव दुर्गा के कार्यों में भी विघ्न कर दें, ऐसे विघ्नपति के समान और श्रेष्ठ देव कौन हैं?

सम्पूर्ण धार्मिक, आर्थिक, ऐच्छिक क्रिया-कलाप में जो देव, दानव, मानवों द्वारा प्रथम पूजे जाते हैं, अर्थात् जिनके पूजे बिना श्रेयः संभव नहीं, ऐसे पूर्व पूज्य गणपति को हम प्रणाम करते हैं।

जो गणेश्वर, अपनी माँ जगदम्बा को नाच, गायन, हँसी आदि विनोद से सदा मुदित रखते हैं, ऐसे मातृप्रिय नित्य प्रसन्न गणेश की हम शरण हैं।

देवता उपकृत होने से, दानव पराजित होने से, जिनकी नमस्कार परक मन्त्रों से स्तुति करते हैं, ऐसे पिता (शङ्कर) के प्यारे ऋद्धि-सिद्धि सहित गणपति की हम शरण हैं।

जये पुराणामकरोत्प्रतीपं पित्राऽपि हर्षात् प्रतिपूजितो यः ।
निर्विघ्नतां चापि पुनश्चकार तस्मै गणेशाय नमस्करोमि ।।
यस्यार्थनात् प्रार्थनयानुरूपां दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिः ।
स्वतन्त्रसामर्थ्य कृतातिगर्वं भ्रातृप्रियं त्वाखुरथं तमीडे ।।

।। श्रीगणपतिस्तोत्राष्टकं सम्पूर्णम् ।।

श्री गणेशकवचम्

गौर्युवाच

एषोऽतिचपलो दैत्यान्बाल्येऽपि नाशयत्यहो ।
अग्रे किं कर्म कर्तेति न जाने मुनिसत्तम ।।
दैत्या नानाविधा दुष्टाः साधुदेवद्रुहः खलाः ।
अतोऽस्य कंठे किंचित्त्वं रक्षार्थं बद्धुमर्हसि ।।

मुनिरुवाच ।

ध्यायेत्सिंहगतं विनायकममुं दिग्बाहुमाद्ये युगे ।
त्रेतायां तु मयूरवाहनममुं षड्बाहुकं सिद्धिदम् ।।
द्वापारे तु गजाननं युग भुजं रक्तांगरागं विभुम् ।
तुर्ये तु द्विभुजं सितांगरुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा ।।

त्रिपुरासुर-वध के समय भगवान् भोलेनाथ गणाधिप का अर्चन भूल गये तो शीघ्र ही विघ्न उपस्थित हो गया। पुनः जब पूजन-अर्चन हुआ तब कहीं त्रिपुरारि का कार्य सिद्ध हुआ, ऐसे गणाधिराज को प्रणाम है।

जिसकी प्रार्थना से समस्त अनुकूल सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, ऐसे भ्रातृप्रिय मूषक वाहन गणेश को प्रणाम है।

विनायकः शिखां पातु परमात्मा परात्परः ।
अति सुन्दरकायस्तु मस्तकं सुमहोत्कटः ॥
ललाटं काश्यपः पातु भ्रूयुगं तु महोदरः ।
नयने भालचन्द्रस्तु गजास्यस्त्वोष्ठपल्लवौ ॥
जिह्वां पातु गणक्रीडश्चिबुकं गिरिजासुतः ।
वाचं विनायकः पातु दंतान् रक्षतु दुर्मुखः ॥
श्रवणौ पाशपाणिस्तु नासिकां चिंतितार्थदः ।
गणेशस्तु मुखं कंठं पातु देवो गणञ्जयः ॥
स्कंधौ पातु गजस्कंधः स्तनौ विघ्नविनाशनः ।
हृदयं गणनाथस्तु हेरम्बो जठरं महान् ॥
धराधरः पातु पार्श्वौं पृष्ठं विघ्नहरः शुभः ।
लिंगं गुह्यं सदा पातु वक्रतुंडो महाबलः ॥
गणक्रीडो जानुजंघे ऊरू मंगलमूर्त्तिमान् ।
एक दंतो महाबुद्धिः पादौ गुल्फौ सदाऽवतु ॥
क्षिप्रप्रसादनो बाहू पाणी आशाप्रपूरकः ।
अंगुलीश्च नखान्पातु पद्महस्तोऽरिनाशनः ॥
सर्वांगानि मयूरेशो विश्वव्यापी सदाऽवतु ।
अनुक्तमपि यत्स्थानं धूम्रकेतुः सदाऽवतु ॥
आमोदस्त्वग्रतः पातु प्रमोदः पृष्ठतोऽवतु ।
प्राच्यां रक्षतु बुद्धीश आग्नेय्यां सिद्धिदायकः ॥

दक्षिणस्यामुमापुत्रो नैऋत्यां तु गणेश्वरः ।
प्रतीच्यां विघ्नहर्ताऽव्याद्वायव्यां गजकर्णकः ॥
कौवेर्यां निधिपः पायादीशान्यामीशनंदनः ।
दिवाऽव्यादेकदन्तस्तु रात्रौ संध्यासु विघ्नहृत् ॥
राक्षसासुरवेतालग्रहभूतपिशाचतः ।
पाशांकुशधरः पातु रजःसत्त्वतमः स्मृतीः ॥
ज्ञानं धर्मं च लक्ष्मीं च लज्जां कीर्तिं तथा कुलम् ।
वपुर्धनं च धान्यं च गृहदारान्सुतान्सखीन् ॥
सर्वायुधधरः पौत्रान् मयूरेशोऽवतात्सदा ।
कपिलोऽजाविकं पातु गजाश्वान्विकटोऽवतु ॥
भूर्जपत्रे लिखित्वेदं यः कंठे धारयेत्सुधीः ।
न भयं जायते तस्य यक्षरक्षः पिशाचतः ॥
त्रिसंध्यं जपते यस्तु वज्रसारतनुर्भवेत् ।
यात्राकाले पठेद्यस्तु निर्विघ्नेन फलं लभेत् ॥

॥ श्रीगणेशकवचं सम्पूर्णम् ॥

॥ गणेश महिम्नस्तोत्रम् ॥

अनिर्वाच्यं रूपं स्तवनिकरो यत्र गणित-
स्तथा वक्ष्ये स्तोत्रं प्रथम पुरुष स्यास्य महतः ।
यतो जातं विश्वं स्थित मपि सदा यत्र विलयः
स की दृग्गीर्वाणःसुनिगमनुतः श्रीगणपतिः ॥

गणेशं गाणेशा शिवमिति शैवाश्च विबुधाः
रविं सौरा विष्णुं प्रथम पुरुषं विष्णु भजकाः ।
वदन्त्येके शाक्ता जगदुदयमूलां परशिवां
न जाने किं तस्मै नमः इति परंब्रह्म सकलम् ॥

तथेशं योगज्ञा गणपतिमिमं कर्म निखिलं
समीमांसा वेदान्तिन इति परं ब्रह्म सकलम् ।
अजां सांख्यो ब्रूते सकलगुणरूपां च सततं
प्रकर्त्तारं न्यायस्त्वथ जगति बौद्धा धियमिति ॥

गणेशमहिम्नस्तोत्रम्

हे गणपते ! आपके रूप अवर्णनीय हैं और स्तुति मेरी सीमित है तथापि मैं आपके सृष्टि-स्थिति प्रलयकारी स्वरूप का यथामति वर्णन करता हूं । गणेशोपासक आपको गणेश और शैव आपको शिव तथा सौर आपको सूर्य एवं वैष्णव आपको विष्णु मानकर पूजते हैं । शाक्त लोग आपको जगत् की मूल प्रकृति मानकर पूजते हैं, हम नहीं जानते कि आपको क्या कहकर नमस्कार करें । अतः सर्वव्यापी परब्रह्म समझकर प्रणाम करते हैं ।

योगी लोग आपको ईश और मीमांसक, कर्म, तथा वेदान्ती परब्रह्म मानते हैं । नैय्यायिक कर्त्ता और बौद्ध आपको बुद्धिरूप समझते हैं ।

कथं ज्ञेयो बुद्धेः परतर इयं बाह्यसरणि
यथा धीर्यस्य स्यात्स च तदनुरूपो गणपतिः ।
महत्कृत्यं तस्य स्वयमपि महान् सूक्ष्म गुण वद्
धृति ज्योति विन्दुर्गगन सदृशः किंच सदसत् ।।
अनेकाक्षः(स्यो) पाराक्षिकरचरणोऽनंतहृदय
स्तथा नाना रूपो विविध वदनः श्रीगणपतिः ।
अनन्ता हः शक्त्या विविध गुण कर्मैकं समये
त्वसंख्या ता नन्ताभिमतफलदोऽनेक विषये ।।
न यस्यान्तो मध्यो न च भवति चादिः सुमहता-
मलिप्तः कृत्वेत्थं सकलमपि खंवत् सच पृथक् ।
स्मृतः संस्मर्तृणां सकलहृदयस्थः प्रियकरो
नमस्तस्मै देवाय सकलसुरवंद्याय महते ।।

वस्तुतः आप मानवी बुद्धि से परे हैं अतः अपनी-अपनी बुद्धि अनुरूप भक्त लोग आपके नाम रूप रखते हैं। हे गणपते ! आप महान् हैं क्योंकि आपका कार्य (जगत् रूप) भी तो महान् है। अतः आकाश के तुल्य आप अनन्त और सूक्ष्म इन्द्रियातीत हैं।

हे विनायक ! आपके अनन्त नेत्र और और अनन्त हाथ-पैर तथा अनन्त ही हृदय हैं आपके अनेक मुख और अनेक रूप हैं। जिस प्रकार आपके नाम रूप अनन्त है उसी प्रकार अपने भक्तों को अनन्त फल भी आप देते हैं।

जिस गणपति का न आदि है, न मध्य और न अन्त है, जो गणपति ब्रह्म के समान सब में व्यापक और निर्लिप्त है, भक्तजनों के हृदय में निवास करनेवाले उन गणपति को हम प्रणाम करते हैं।

गणेशाद्यं वीजं दहनवनितापल्लवयुतं
अनुश्चैकार्णोऽयं प्रणवसहितोऽभीष्टफलदः ।
सविन्दुश्चांगा द्यां गणक ऋषिं छन्दोऽस्य च निचृत्स
सदेवः प्राग्वीजं विपदपि शक्तिर्जपकृताम् ॥
गकारो हेरम्बः सगुण इति पुंनिर्गुणमयो
द्विधाऽप्येको जातः प्रकृति पुरुषो ब्रह्म हि गणः ।
स चेशश्चोत्पत्तिस्थितिलयकरोऽयं प्रथमको
यतो भव्यं भूतं भवति र्पति रीशो गणपतिः ॥
गकारः कंठोर्ध्वं गजमुखसमो मर्त्यसदृशो
णकारः कंठाधो जठरसदृशाकार इति च ।
अधोभागः कट्यां चरण इति हीशोऽस्य च तनु
विभातीत्थं नाम त्रिभुवन समे भूर्भुवस्सुवः ॥

गं जिसका बीज है जो अग्नि की पत्नी स्वाहा से युक्त है प्रणव के सहित होकर जो सकल अभीष्ट सिद्ध करनेवाला है, इस (गं) वीज मंत्र का गणक ऋषि है और निचृत् छंद है, देवता इसका स्वयं गणपति है, इसके जप करने से साधक को महती शक्ति प्राप्त होती है ।

गण प्रकृति है पति का अर्थ पुरुष है "गं" इन दोनों का एक रूप ब्रह्म है जिससे इस जगत् की सृष्टि पालन और संहार होते हैं, यही भूतभव्येश गणपति का रूप है ।

'ग'कार कंठ से ऊपर की भाग है और 'ण'कार मध्य भाग है तथा 'पति' कटि और चरण पर्यन्त भाग का द्योतक यही उस विराट गणपति को देह भूः भुवः स्वः स्वरूपक त्रैलोक्य है ।

गणेशेति त्र्यर्णात्मकमपि वरं नाम सुखदं
सकृत्प्रोच्चैरुच्चारितमिति नृभिः पावनकरम् ।
गणेशस्यैकस्य प्रतिजप करस्यास्य सुकृतं
न विज्ञातो नाम्नः सकल महिमा कीदृशविधः ॥

गणेशेत्याह्वां यः प्रवदति मुहुस्तस्य पुरतः
प्रपश्यंस्तद्वक्त्रं स्वयमपि गणस्तिष्ठति सदा ।
स्वरूपस्य ज्ञानं त्वमुक इति नाम्नाऽस्यभवति
प्रबोधः सुप्तस्य त्वखिलमिह सामर्थ्यममुना ॥

गणेशो विश्वस्मिन्स्थित इह च विश्वं गणपतौ
गणेशो यत्रास्ते धृति मतिरनैश्वर्यमखिलम् ।
समुक्तं नामैकम् गणपतिपदं मंगलमयं
तदेकास्यं इष्टेः सकल विबुधास्येक्षणसमम् ॥

गणेश यह तीन अक्षरों का नाम भी अत्यन्त सुखद और सुन्दर है। इसके एक बार भी उच्चारण करने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। पुनः निरन्तर इस गणेश नाम के जप की महिमा का तो वर्णन ही किस किस प्रकार किया जाय।

श्री गणपति की प्रतिमा के सम्मुख गणेश-गणेश इस अक्षर मन्त्र का भी यदि जप किया जाय तो साधक को सहज ही स्वरूप बोध हो जाता है मानो सुप्तावस्था से जाग्रत् में पहुंच गया हो और स्वयं गणरूप हो जाता है।

यह समस्त विश्व गणेश में स्थित है और गणेश सारे विश्व में व्यापक है। जहाँ गणेश अथवा गणपति पद का उच्चारण किया जाता है वहीं धृति, मति तथा सम्पूर्ण मंगल स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। एक गणपति के मुख के दर्शन से समस्त देवताओं के दर्शन का फल होता है।

बहु क्लेशैर्व्याप्तः स्मृत उत गणेशे च हृदये
क्षणात्क्लेशान्मुक्तो भवति सहसात्वभ्रचयवत् ।
वने विद्यारंभे युधिरिपुभये कुत्र गमने
प्रवेशे प्राणान्ते गणपतिपदं चाशु विशति ॥
गणाध्यक्षो ज्येष्ठः कपिल अपरो मंगलनिधि-
र्दयालु हेरम्बो वरद इति चिन्तामणिरजः ।
वरानीशो ढुण्ढिर्गजवदन नामा शिवसुतो
मयूरेशो गौरीतनय इति नामानि पठति ॥
महेशोऽयं विष्णुः सकविरविरिंदुः कमलजः
क्षितिस्तोयं वह्निः श्वसन इति खंत्वद्रिरुदधिः ।
कुजस्तारः शुक्रो गुरुरुडुबुधोऽगुश्च धनदो
यमः पाशी काव्यः शनिरखिलरूपो गणपतिः ॥

कोई भी महत्कष्ट से दुःखी श्री गणेश का हृदय में स्मरण करता है, तो जैसे हवा के झोंके से बादलों का समूह दूर हो जाता है वैसे ही वे कष्ट दूर हो जाते हैं। भगवान् गणपति का स्मरण करने से वन में, विद्या आरम्भ करने के समय युद्ध में शत्रु से डरने पर कहीं जाने पर मंगल होता है। जब मृत्यु समय उपस्थित हो भगवान् गणेश के यहाँ शीघ्र ही चला जाता है।

गणपति, गणाध्यक्ष, ज्येष्ठ (सर्वप्रथम वन्दनीय), कपिल, अपर, मङ्गलनिधि, दयालु, हेरम्ब, वरद, चिन्तामणि, अज (न जन्म लेनेवाला) वरानीश, ढुण्ढि, गजवदन (हाथी के मुँहवाले), शिवजी के पुत्र, मयूरेश, गौरीतनय इन नामों के पढ़नेवाले का सर्वत्र मङ्गल होता है।

जो साक्षात् महेश शंकरजी, विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा, पृथ्वी, जल, अग्नि,

मुखं वह्निः पादौ हरिरपि विधाता प्रजननं
रविर्नेत्रे चंद्रो हृदयमपि कामोऽस्य मदनः।
करौ शक्रः कट्यामवनिरुदरं भाति दशनं
गणेशस्यासन्वै क्रतुमयवपुश्चैव सकलम्॥

अनर्घ्यालंकारैररुणवसनैर्भूषिततनुः
करींद्रास्यः सिंहासनमुपगतो भाति बुधराट्।
स्मितः स्यात्तन्मध्येऽप्युदितरविबिंबोपमरुचिः
स्थिता सिद्धिर्वामे मतिरितरगा चामरकरा॥

वायु, आकाश, पर्वत, समुद्र, तारे, शुक्र, बृहस्पति, चन्द्र, कुबेर, यमराज, शनि, मंगल आदि ग्रह सभी निखिलरूप में गणेश ही हैं।

इस ब्रह्माण्ड में महादेव गणेश का मुँह अग्नि, विष्णु चरण, ब्रह्मा प्रजनन (उपस्थ), सूर्य-चन्द्र दोनों नेत्र, मदन हृदय स्वरूप, इन्द्र हाथ, पृथ्वी कटिप्रदेश, दाँत और पेट सभी गणेशजी के क्रतुमय शरीर के अंग है।

सुन्दर-सुन्दर गहनों और लाल वस्त्रों से गणेशजी का शरीर शोभित है, ये बुद्धिमानों में श्रेष्ठ करीन्द्रास्य (हाथी के मुखवाले) अपने सिंहासन पर बैठे हुए बहुत ही सुन्दर लगते हैं।

आपके मुखपर थोड़ी-थोड़ी मन्द-मन्द मुस्कान उदय होनेवाले सूर्य की आभा के समान भली लगती है आपके बांये अंग में सिद्धि और दूसरे पार्श्व में चामर (चंवर हाथ में लिये) मति शोभा देती है।

समंतात्तस्यासन्प्रवरमुनिसिद्धासुरगणाः
प्रशंसंतीत्यग्रे विविधनुतिभिः सांजलिपुटाः ।
बिडौजाद्यैर्ब्रह्मादिभिरनुवृतो भक्तनिकरै-
र्गणक्रीडामोदप्रमुदविकटाद्यैः सहचरैः ॥

वशित्वाद्यष्टादशदिगखिलाल्लोलमनुवा-
ग्धृतिः यादूः खड्गोऽश्वनरसवलाः सिद्धयइमाः ।
सदा पृष्ठे तिष्ठन्त्यनिमिषदृशस्तन्मुखलया
गणेशं सर्वंतेप्यतिनिकटसूपायनकराः ॥

मृगांकास्या रंभा प्रभृतिगणिका यस्य पुरतः
सुसंगीतं कुर्वंत्यपि कुतुकगंधर्वसहिताः ।
मुदः पारो नात्रेत्यनुपममदे दोर्विगलिता
स्थिरं जातं चित्तं चरणमवलोक्याऽस्य विमलम् ॥

गणेशजी के चारों ओर विशिष्ट, सिद्ध मुनि, असुरगण विविध प्रकार के स्तोत्रों से हाथ जोड़कर स्तुति कर रहे हैं। इन्द्रादि देवता और ब्रह्मादि आपको घेरे हुए हैं सारी भक्तमण्डली तथा विकटादि पार्षदों से गणक्रीड़ा का आनन्द अनुभव करते हुए भगवान् गणेशजी विराज रहे हैं।

वशित्वादि अष्टसिद्धि और दशों दिशाओं के लोकपाल, वाणी, धृति, खड्ग और सभी प्रकार की सिद्धियाँ भगवान् गणेश के सामने बिना पलकमारी आँखों से हाथ जोड़कर इस प्रतीक्षा में खड़ी हैं कि अब उनका क्या आदेश होता है।

चन्द्रबदना रम्भादि अप्सरायें कौतुहल पूर्ण गन्धर्वों के साथ आप के सामने सुन्दर शास्त्रीय संगीत को सुनाती हैं, ऐसे सुन्दर वातावरण में आनन्द की कोई सीमा नहीं, ऐसी मनोमोहक स्थिति में दोषों का कहीं पता भी नहीं लगता। श्री गणपति के विमल चरणों में चित्त स्थिर हो जाता है।

हरेणाऽयं ध्यातस्त्रिपुरमथने चासुरवधे
गणेशः पार्वत्या बलिविजयकालेऽपि हरिणा ।
विधात्रा संसृष्टावुरगपतिना क्षोणिधरणे
नरैः सिद्धौ मुक्तौ त्रिभुवनजये पुष्पधनुषा ॥

अयं सुप्रासादे सुर इव निजानन्दभुवने
महान् श्रीमानाद्यो लघुतरगृहे रंकसदृशः ।
शिवद्वारे द्वःस्थो नृप इव सदा भूपतिगृहे
स्थितो भूत्वोमाङ्के शिशुगणपतिर्लालनपरः ॥

अमुष्मिन्संतुष्टे गजवदन एवापि विबुधे
ततस्ते संतुष्टास्त्रिभुवनगताः स्युर्बुधगणाः ।
दयालुर्हेरम्बो न च भवति यस्मिश्च पुरुषे
वृथा सर्वं तस्य प्रजननमतः सान्द्रतमसि ॥

त्रिपुर के मथन (मारने) में भगवान् शंकर ने, असुरों को संहार करने में पार्वतीजी ने और बलिराजा पर विजय पाने के लिये भगवान् विष्णु ने आपका स्मरण किया। ब्रह्मा ने सृष्टि रचने के समय, गरुड़पति ने पृथ्वी धारण करते समय, मनुष्योंने सिद्धि और मुक्ति में तथा कामदेव ने तीनों लोकों को जीतने में आपका ध्यान किया व सफलता प्राप्त की।

भगवान् गणेश बड़े राजप्रासादों में आनन्दमग्न 'देवताओं के समान बड़े श्रीमन्त रूप में, छोटी झोंपड़ियों में रङ्क (निर्धन) के समान भूतभावन शंकर के यहाँ द्वारपाल रूप में, राजा के यहाँ राजा के समान और माता पार्वती की वात्सल्य-मयी गोदी में लाडले बालक गणपति में अहर्निश अपनी सामर्थ्य बताते हैं।

श्री गणेशजी के प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण संसार के बुद्धिमान् पुरुषों की कृपा हो जाती है। जिस व्यक्ति पर साक्षात् गणपति कृपा नहीं करते उसका जन्म घोर अन्धकार में रहता है और व्यर्थ है।

वरेण्यो भूशुण्डीभृगुगुरुकुजा मुद्गलमुखा
ह्यपारास्तद्भक्ता जपहवनपूजास्तुतिपराः ।
गणेशोऽयं भक्तप्रिय इति च सर्वत्र गदितं
विभक्तिर्यत्राऽऽस्ते स्वयमपि सदा तिष्ठति गणः ॥

मृदः काश्चिद्धातोश्छदविलिखिता वापि दृषदः
स्मृताव्याजान्मूर्त्तिः पथि यदि वहिर्येन सहसा ।
अशुद्धोऽद्धा द्रष्टा प्रवदति तदाह्वा गणपतेः
श्रुता शुद्धो मर्त्यो भवति दुरिताद्विस्मय इति ॥

बहिर्द्वारस्योर्ध्वं गजवदनवर्ष्मेन्धनमयं
प्रशस्तं वा कृत्वा विविधकुशलैस्तत्र निहतम् ।
प्रभावात्तन्मूर्त्या भवति सदनं मंगलमयं
विलोक्याऽऽनंदस्तां भवति जगतो विस्मय इति ॥

भगवान् गणेश की वरेण्य काकभुशुण्डी, भृगु, बृहस्पति भौम, (मंगल),- मुद्गल आदि महर्षि और असंख्य भक्त जप हवन पूजा स्तुति से विनय करते हैं। गणेश को अपनी भक्ति बहुत प्यारी है ऐसा प्रसिद्ध है, जहाँ विशेष रूप से इनकी भक्ति होती हैं वहाँ साक्षात् गणपति सदा निवास करते हैं।

किसी ने किसी बहाने से मिट्टी की भगवान् गणेश की मूर्ति बनाई या मार्ग में ही आपका सहसा ध्यान कर लिया, या किसी काम से अशुद्ध होने पर भी ऐसे ही भगवान् गणपति को किसी ने स्मरण किया तो वह शुद्ध हो जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि उस व्यक्ति के पाप उसी समय नष्ट हो जाते हैं।

भगवान् गणेशजी की लकड़ी की मूर्ति को किसी सद्गृहस्थ के द्वार पर कुशल कारीगरों ने प्रतिष्ठित कर दिया उस मूर्ति के प्रभाव से ही वह घर मङ्गलमय हो जाता है, जगत् को उस आनन्द को देखकर मूर्ति पर विस्मय होता है।

सिते भाद्रे मासे प्रतिशरदि मध्याह्नसमये
मृदो मूर्तिं कृत्वा गणपतितिथौ ढुंढिसदृशीम् ।
समर्चत्युत्साहः प्रभवति महान् सर्वसदने
विलोक्यानन्दस्तां प्रभवति नृणां विस्मय इति ॥

तथा ह्येकः श्लोको वरयति महिम्नो गणपतेः
कथं स श्लोकेऽस्मिन् स्तुति भवेत्संप्रपठिते ।
स्मृतं नामास्यैकं सकृदिदमनंताह्वयसमं
यतो यस्यैकस्यस्तवनसदृशं नान्यदपरम् ॥

गजवदन विभो यद्वर्णितं वैभवंते
त्विह जनुषि ममेत्थं चारुतद्दर्शयाशु ।
त्वमसि च करुणायाः सागरः कृत्स्नदाताऽ
प्यतितव भृतकोऽहं सर्वदा चित्तकोऽस्मि ॥

भाद्रमास के शुक्लपक्ष में शरत्काल में मध्याह्न के समय चतुर्थी के दिन ढुण्ढिराज के आकार की गणेश की मूर्ति मिट्टी की बनाकर जो सम्पूर्ण उत्साह से उसे पूजते हैं वह सारे घर का प्रधान होता है और मूर्ति के आश्चर्य-जनक आनन्दकारी प्रभाव से मनुष्यों को बहुत ही विस्मय होता है।

एक श्लोक से गणपति भगवान् की क्या स्तुति की जाय क्योंकि वे तो अमित महिमाशाली हैं। एक बार ही आपका नाम लेना असंख्य नामों के समान है क्योंकि एक ही स्तवन से श्रेष्ठ दूसरा और स्तोत्र नहीं है।

हे विभो आपकी महिमा को मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार गाया है इस जन्म में आप मुझे शीघ्र अपनी विभूति का चमत्कार दिखलाइये। आप दया

सुस्तोत्रं प्रपठतु नित्यमेतदेव
स्वानन्दं प्रतिगमनेऽप्ययं सुमार्गः।
संचित्य स्वमनसि तत्पदारविन्दं
स्थाप्याऽग्रे स्तवनफलं नतीः करिष्ये॥

गणेशदेवस्य माहात्म्यमेतद्यः श्रावयेद्वाऽपि पठेच्च तस्य।
क्लेशालयं याति लभेच्च शीघ्रं स्त्रीपुत्रविद्यार्थगृहं च मुक्तिम्॥

॥ श्रीगणेशमहिम्नस्तोत्र सम्पूर्णम्॥

के सागर हैं और सम्पूर्ण इष्टकामनाओं की पूर्ति करते हैं मैं आपका अनन्य भृत्य (नौकर) हूं और आप में ही प्रतिक्षण भक्तिपूर्वक चित्त लगाकर अपने मङ्गलमय जीवन को अर्पण करता हूं।

प्रतिदिन इन सुन्दर स्तोत्र का पाठ करें क्योंकि यह आनन्द प्राप्ति का सुमार्ग है, भगवान् गणेश के चरणारविन्द का अपने मन में ध्यान कर उनकी मूर्ति के सामने स्तोत्र का फल समर्पण कर विनयावनत नमस्कार करता हूं।

भगवान् गणेशदेव के इस माहात्म्य को जो सुनाता है या पढ़ता है उसके भारी कष्ट दूर हो जाते हैं और शीघ्र ही स्त्री, पुत्र, विद्या, धन और घर की प्राप्ति होती है तथा अन्त में मुक्ति का लाभ करता है।

श्रीगणपतिस्तवः

अजं निर्विकल्पं निराहारमेकं निरानन्दमानंदमद्वैतपूर्णम् ।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥

गुणातीतमानं चिदानन्दरूपं चिदाभासकं सर्वगं ज्ञानगम्यम् ।
मुनिध्येयमाकाशरूपं परेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥

जगत्कारणं कारणज्ञानरूपं सुरादिं सुखादिं गुणेशं गणेशम् ।
जगद्व्यापिनं विश्ववंद्यं सुरेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥

रजोयोगतो ब्रह्मरूपं श्रुतिज्ञं सदाकार्यशक्तं हृदाऽचिंत्यरूपम् ।
जगत्कारणं सर्वविद्यानिदानं परब्रह्मरूपं गणेशं नताः स्मः ॥

उस अजन्मा स्वयंभू एकरूप नित्यतृप्त असीम आनन्द के निधि गुणातीत और वासना रहित शुद्ध अद्वैत रूप गणेश परब्रह्म को मैं भजता हूं । जो गणपति चैतन्य रूप होते हुए समस्त प्रपंच के प्रकाशक हैं । सर्व व्यापी एवं ज्ञानगम्य हैं ऋषि मुनि जिनका परमेश्वर रूप से ध्यान करते हैं उनको हम सब भजें ।

जो गणपति जगत् के आदि कारण हैं तथा देवताओं में प्रथम पूज्य हैं, गुण-सत्वादि और गण-पंच महाभूतादि के जो स्वामी हैं, उन जगद्व्यापी जगद्वन्द्य गणेशजी को हमें भजना चाहिये ।

जो गजानन रजोगुण से युक्त हो ब्रह्मा का रूप धारण कर चारों वेदों के ज्ञाता होकर समस्त सृष्टि के निर्माण कार्य में आसक्त रहते हैं, उन प्रजापति रूप गणपति को हमें भजना चाहिये ।

सदा सत्ययोग्यं मुदा क्रीडमानं सुरारीन्हरंतं जगत्पालयंतम् ।
अनेकावतारं निजज्ञानहारं सदा विश्वरूपं गणेशं नमामः ॥
तमोयोगिनं रुद्ररूपं त्रिनेत्रं जगद्धारकं तारकं ज्ञानहेतुम् ।
अनेकागमैः स्वं जनं बोधयंतं सदा सर्वरूपं गणेशं नमामः ॥
नमः स्तोमहारं जनाज्ञानहारं त्रयीवेदसारं परब्रह्मसारं ।
मुनिज्ञानकारं विदूरे विकारं सदा ब्रह्मरूपं गणेशं नमामः ॥
निजैरोषधीस्तर्पयंतं कराद्यैः सुरौघान्कलाभिः सुधास्राविणीभिः ।
दिनेशांशुसंतापहारं द्विजेशं शशांकस्वरूपं गणेशं नमामः ॥
प्रकाशस्वरूपं नमो वायुरूपं विकारादिहेतुं कलाधारभूतम् ।
अनेकक्रियानेकशक्तिस्वरूपं सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः ॥

जो विनायक सत्वगुण से युक्त हो दैत्यों का संहार करते हुए जगत् का पालन करते हैं, उन अनेक अवतारधारी विष्णुरूप विनायक को हमें आराधन करना चाहिये।

जो गणेश तमोगुण से युक्त हो रुद्र कहलाते हैं, उन त्रिनेत्रधारी जगत् संहार-कारी समस्त विद्याओं के ईश्वर संसार-सागर से तारनेवाले पशुपति रूप गणपति का हमें पूजन करना चाहिये।

जो एकदन्त अज्ञानराशि का विनाश करनेवाले हैं तथा तीनों के सार परब्रह्म रूप हैं, उन विकार रहित विनायक को हम सदा प्रणाम करते हैं।

जो अपनी अमृतमयी किरणों से औषधियों और कलाओं से देवताओं को तृप्त करते हैं, उन चन्द्रमा रूप गणपति को हम प्रणाम करते हैं।

जो गणेश वायु अग्निरूप से समस्त क्रियाओं के शक्ति स्वरूप हैं, उन सर्व शक्तिमान् गणपति को हम प्रणाम करते हैं।

प्रधानस्वरूपं महत्तत्वरूपं धराचारिरूपं दिगीशादिरूपम् ।
असत्सत्स्वरूपं जगद्धेतुरूपं सदा विश्वरूपं गणेशं नताः स्मः ॥
त्वदीये मनः स्थापयेदंघ्रियुग्मे जनो विघ्नसंघातपीड़ां लभेत ।
लसत्सूर्यबिम्बे विशाले स्थितोऽयं जनो ध्वांतपीडां कथं वा लभेत॥
वयं भ्रामिताः सर्वथाऽज्ञानयोगादलब्धस्तवांघ्रिबहून्वर्षपूगान् ।
इदानीमवाप्तास्तवैव प्रसादात्प्रपन्नासदा पाहि विश्वम्भराद्य ॥

एवं स्तुतो गणेशस्तु संतुष्टोऽभून्महामुने ।
कृपया परयोपेतोऽभिधातुमुपचक्रमे ॥

जो गणेश प्रधान प्रकृति स्वरूप और महत्तत्व रूप हैं तथा पृथ्वी को धारण करनेवाले शेष और इन्द्रादि दिक्पाल रूप हैं, उन जगत् के कारण विश्वरूप गणेश को हम सदा प्रणाम करते हैं।

हे गणपते! आपके चरण-युगल में मन लगानेवाले मनुष्य को कभी विघ्न-बाधायें ऐसे नहीं आ सकतीं—जैसे, सूर्यमंडल के उदय होनेपर अन्धकार नहीं रहता।

हे विश्वम्भर! हम मोहवश बहुत वर्षों तक भ्रम में पड़े रहे, आपके चरणों की कृपा न प्राप्त कर सके। अब आपकी ही कृपा से आपके स्वरूप का यथार्थ ज्ञान कर पाये हैं, अतः अब हम आपकी शरण में हैं हमारी रक्षा कीजिये।

श्रीगणेशाष्टकम्

गणपति परिवारं चारुकेयूरहारं गिरिधरवरसारं योगिनीचक्रचारं ।
भवभयपरिहारं दुःखदारिद्र्यदूरं गणपतिमभिवन्दे वक्रतुंडावतारम् ।।
अखिलमलविनाशं पाणिना हस्तपाशं कनकगिरिनिकाशं सूर्यकोटिप्रकाशं ।
भज भवगिरिनाशं मालतीतीरवासं गणपतिमभिवन्दे मानसे राजहंसम् ।।
विविधमणिमयूखैः शोभमानं विदूरैः कनकरचितचित्रं कण्ठदेशे विचित्रम् ।
दधति विमलहारं सर्वदा यत्नसारं गणपतिमभिवन्दे वक्रतुंडावतारम् ।।
दुरितगजममन्दं वारुणीं चैव वेदं विदितमखिलनादं नृत्यमानन्दकन्दम् ।
दधति विमलहारं सर्वदा यत्नसारं गणपतिमभिवन्दे वक्रतुण्डावतारम् ।।

श्री गणेशजी महाराज को मैं प्रणाम करता हूं, जो भगवान् विष्णु के परम प्रिय हैं तथा जिनके अनुचर हार केयूरादि से अलंकृत हो योगिनी समूह सहित भक्तों के विघ्न नाश के लिये पृथ्वी पर विचरते हैं। संपूर्ण मल (मानसिक दुश्चिन्ता) को दूर करनेवाले हाथ में नागपाश धारण किये सुवर्ण सदृश कान्तिमान् तथा कोटि-कोटि सूर्य समान प्रकाशकर्त्ता, संहार रूपी दुर्लंघ्य पर्वत को पार करा देनेवाले, मालती के तट पर निवास करनेवाले तथा मनमानस के राजहंस श्री गणेश का भजन करना चाहिये।

अनेक प्रकार की मणियों से सुशोभित सुवर्ण हार को कंठ में धारण करनेवाले वक्रतुंड गणेश को मैं प्रणाम करता हूं।

विघ्नों को कुचलने में मतवाले हाथी सदृश, तथा चारो वेदों के स्वर सहित ज्ञाता, चन्द्रमुकुट, कौशेय वस्त्रधारी श्री आनन्दकन्द गणपति को मैं प्रणाम करता हूं।

त्रिनयनयुतभाले शोभमाने विशाले मुकुटमणि सुभाले मौक्तिकानां च जाले ।
धवल कुसुममाले यस्यशीर्ष्णः सताले गणपतिमभिवन्दे सर्वदा चक्रपाणिम् ॥
वपुषि महति रूपं पीठमादौ सुदीपं तदुपरि रसकोणंयस्य चोर्ध्वं त्रिकोणम् ।
गजमितदलपद्मे संस्थितं चारुछद्म गणपतिमभिवन्दे कल्पवृक्षस्य वृन्दे ॥
वरदविशदहस्तं दक्षिणं यस्य हस्तं सदयमभयदं तं चिन्तये चित्तसंस्थम् ।
शबल कुटिल शुण्डं चैक तुण्डं द्वितुण्डं गणपतिमभिवन्दे सर्वदा वक्रतुण्डम् ॥

कल्पद्रुमाधः स्थितकामधेनुं चिन्तामणिं दक्षिणपाणिशुण्डम् ।
बिभ्राणमत्यद्भुतचित्तरूपं यः पूजयेत्तस्य समस्तसिद्धिः ॥

व्यासाष्टकमिदं पुण्यं गणेशस्तवनं नृणाम् ।
पठतो दुःखनाशाय विद्यां स श्रियमश्नुते ॥

॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे व्यासविरचितं गणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

जिनका मस्तक तीन नेत्रों से युक्त है तथा जिनका मुकुट मोतियों की माला से सुसज्जित हैं जो श्वेतपुष्पों की माला धारण किये हैं, ऐसे चन्द्रपाणि गणपति को मैं प्रणाम करता हूं।

इनकी पूजा के लिये साधकको प्रथम षट्कोण मंडल बनाकर ऊपर त्रिकोण के मध्य में दशदलोंवाला कमल बनाकर उसपर श्री गणेश की प्रतिमा स्थापित कर चारों ओर कल्प वृक्ष बनाना चाहिये।

जिन गणपति का दक्षिण हाथ सदा ही भक्तों को वरदान और अभय दान देने को उद्यत रहता है तथा जिनके एक दन्त और दो सूँड सुशोभित हैं ऐसे वक्रतुंड गजानन को प्रणाम करता हूं।

कल्पवृक्ष के नीचे कामधेनु और चिन्तामणि सहित विराजमान ऋद्धि-सिद्धि विधायक श्री विघ्न-विनायक गणपति का जो भक्त ध्यान करते हैं, उनके समस्त कार्यों की सिद्धि होती है।

श्रीगणेशाष्टकम्

यतोऽनंतशक्तेरनंताश्च जीवा यतो निर्गुणादप्रमेया गुणास्ते ।
यतो भाति सर्वं त्रिधाभेदभिन्नं सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥

यतश्चाविरासीज्जगत्सर्वमेतत्तथाब्जासनो विश्वगो विश्वगोप्ता ।
तथेन्द्रादयो देवसंघा मनुष्याः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥

यतो वह्निभानू भवो भूर्जलं च यतः सागराश्चन्द्रमा व्योम वायुः ।
यतः स्थावरा जंगमा वृक्षसंघाः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥

यतो दानवाः किन्नरा यक्षसंघा यतश्चारणा वारणाः श्वापदाश्च ।
यतः पक्षकीटा यतो वीरुधश्च सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥

जिन अनन्त शक्तिसम्पन्न श्री गणपति देव से अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं तथा निर्गुण ब्रह्मरूप गणेश यह सब गुण-ग्राम प्रादुर्भूत हुआ व जिसके प्रकाश से यह त्रिगुणमयी सृष्टि प्रकाशित है, उस गणपति को सदा हम प्रणाम करते हैं ।

जहाँ से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्रादि देवताओं का जगत् सहित आविर्भाव हुआ है, उन प्रथम देव गणेश को हम प्रणाम करते हैं ।

यतः—जिनसे अग्नि, सूर्य, शिव, पृथ्वी, जल, समुद्र, चन्द्रमा, आकाश, वायु तथा स्थावर जंगम प्राणी उत्पन्न हुए उन गणेश को हम प्रणाम करते हैं ।

जिनसे दानव, किन्नर, यक्ष, चारण आदि देवयोनियों और हाथी आदि चौपाये पशु एवं पक्षीगण, कीड़े तथा औषधियाँ उत्पन्न हुई उन गणपति को हम भजते हैं, प्रणाम करते हैं ।

यतो बुद्धिरज्ञाननाशो मुमुक्षोर्यतः संपदो भक्तसन्तोषिकाः स्युः ।
यतो विघ्ननाशो यतः कार्यसिद्धिः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥
यतः पुत्रसम्पद्यतोवांछितार्थो ततोऽभक्तविघ्नस्तथाऽनेकरूपाः ।
यतः शोकमोहौ यतः काम एव सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥
यतोऽनंतशक्तिः स शेषो बभूव धराधारणेऽनेकरूपे च शक्तः ।
यतोऽनेकधा स्वर्गलोका हि नाना सदा नेतिनेतीति यत्ता(त्तं) गृणन्ति ।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥

श्रीगणेश उवाच

पुनरूचे गणाधीशः स्तोत्रमेतत्पठेन्नरः ।
त्रिसन्ध्यं त्रिदिनं तस्य सर्वकार्यं भविष्यति ॥

जिन गणपति से मुमुक्षु लोग अज्ञान-नाशिनी बुद्धि प्राप्त करते हैं और भक्त लोग संतोषदायक संपत्ति पाते हैं तथा जो गणराज विघ्नों को दूरकर इच्छित कार्य की सिद्धि करते हैं उनको हम भजते हैं, प्रणाम करते हैं ।

जिन गणपति की आराधना से पुत्रादि सम्पत् प्राप्त होती है वांछितार्थ सिद्ध होते हैं और जो अभक्तों के लिये अनेक विघ्न उपस्थित कर देते हैं तथा जिनसे शोक मोह, काम और क्रोधादि उत्पन्न होते हैं, उन गणेशजी को हम प्रणाम करते हैं भजते हैं।

जिन गणपति की अनन्त शक्ति से शेषनाग धरणी को धारण करने में समर्थ हुए तथा जिनका गुण वर्णन करते हुए देवता लोग नेति-नेति कहते हैं, सच्चिदानन्द स्वरूप उस परब्रह्म गणपति को हम प्रणाम करते हैं, भजते हैं ।

श्री गणेशजी महाराज कहते हैं—इस स्तोत्र का जो तीनों सन्ध्याओं में पाठ

यो जपेदष्टदिवसं श्लोकाष्टकमिदं शुभम् ।
अष्टवारं चतुर्थ्यां तु सोऽष्टसिद्धीरवाप्नुयात् ॥
यः पठेन्मासमात्रं तु दशवारं दिने दिने ।
स मोचयेद्बंधगतं राजवध्यं न संशयः ॥
विद्याकामो लभेद्विद्यां पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।
वांछितांल्लभते सर्वानेकविंशतिवारतः ॥
यो जपेत्परया भक्त्या गजाननपरो नरः ।
एवमुक्त्वा ततो देवश्चांतर्धानं गतः प्रभुः ॥

॥ इति श्रीगणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

करता है उसके समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। जो मनुष्य आठ दिन तक निरन्तर इन श्लोकों का जप करे एवं चतुर्थी के व्रती होकर पठन करे तो आठों सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

जो साधक एक मास तक नित्य दश बार पठन करता है, वह राज्य-बन्धन से मुक्त हो जाता है। विद्यार्थी इसके पठन से विद्या को प्राप्त होता है तथा पुत्रार्थी पुत्र को प्राप्त होता है। इक्कीस बार पाठ करने से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं। श्री गणपति देव ने इस प्रकार इस स्तोत्र का माहात्म्य अपने मुखसे स्वयं वर्णन किया है।

॥ श्रीगणेशस्तवराजः ॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।
ॐकारमाद्यं प्रवदन्ति सन्तो वाचः श्रुतिनामपि यं गृणन्ति ॥
गजाननन्देवगणानताङ्घ्रिम्भजेऽहमर्द्धेन्दुकृतावतंसम् ॥

पादारविन्दार्च्चनतत्पराणां संसारदावानलभङ्गदक्षम्।
निरन्तरं निर्गतदानतोयं तन्नौमि विघ्नेश्वरमम्बुदाख्यम् ॥

कृताङ्गरागन्नवकुङ्कुमेन मत्तालिजालम्मदपङ्कलग्नम्।
निवारयन्तन्निजकर्णतालैः को विस्मरेत्पुत्रमनङ्गशत्रोः ॥

ॐ परब्रह्मस्वरूप भगवान् गणपति को नति करते हैं व वक्रतुण्ड का ध्यान करते हैं, वह अखण्ड सत्तात्मक भगवान् दन्ति हमें सद्बुद्धि की प्रेरणा करें। इन्हें श्रेष्ठ पुरुष आद्य ओङ्कार के नाम से कहते हैं, अथ च श्रुतियों (वेदों) की वाणी रूप में भी पुकारते हैं जिनके सामने देवतागण नतमस्तक हो अपनी श्रद्धा का परिचय देते हैं उन अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण किये हुए श्री गणेश का मैं ध्यान करता हूं।

श्री गणेश अपने पादपद्मों की सेवा करने में लगे हुए भक्तों के सम्पूर्ण संसार रूपी दावानल को भङ्ग (नाश) करने में दक्ष हैं। जिनके गण्डस्थल से निरन्तर दान वारि बहता रहता है ऐसे श्री अम्बुदाख्य विघ्नेश्वर को प्रणाम करता हूं।

नये कुङ्कुम लेप से भगवान् गणपति के अङ्गों की अनुपम शोभा हो रही है और वे अपने गण्डस्थल पर मद को सूंघने के लिये आनेवाले भ्रमरों को अपने कानों से उड़ा रहे हैं इन भगवान् शङ्कर के सुपुत्र श्री गणेशजी को कौन भूल सकता है अर्थात् सभी स्मरण कर धन्य होते हैं।

शम्भोर्ज्जटाजूटनिवासिगङ्गाजलं समानीय कराम्बुजेन ।
लीलाभिराराच्छिवमर्चयन्तङ्गजाननम्भक्तियुता भजन्ति ॥
कुमारभुक्तौ पुनरात्महेतोः पयोधरौ पर्व्वतराजपुत्र्याः ।
प्रक्षालयन्तङ्करशीकरेण मौग्ध्येन तन्नागमुखम्भजामि ॥
तया समुद्धृत्य गजस्य हस्तं ये शीकराः पुष्कररन्ध्रमुक्ताः ।
व्योमाङ्गणे ते विचरन्ति तारा कालात्मना मौक्तिकतुल्यभासः ॥
क्रीड़ारतेवारिनिधौ गजस्थे वेलामतिक्रामति वारिपूरे ।
कल्पावसानं परिचिन्त्य देवाः कैलासनाथं स्तुतिभिः स्तुवन्ति ॥
नागानने नागकृतोत्तरीये क्रीड़ारते देवकुमारसङ्घैः ।
त्वयि क्षणं कालगतिम्विहाय तौ प्रापतुः कन्दुकतामिवेन्दुम् ॥

श्री गणेशजी जो शम्भु भगवान् की जटा में स्थित गङ्गाजी के जल को हाथ से लेकर लीला-विलास से उनकी पूजा करते हैं, भक्तजन उन गणपति को भक्ति-पूर्वक पूजन करते हैं।

जब श्री कार्तिकेय ने माता पार्वती के स्तनों से दूध पी लिया तो माता के स्तनों को अपने लिये पान करने के लिये गणेशजी अपने हाथों से मुग्ध होकर जल से उन्हें धोते हैं उन नागमुख श्री गणपति का मैं ध्यान करता हूं।

उनके द्वारा जो जल के छींटे पुष्कर के छेदों में से नीचे छुट गये वे आकाश में अभी तक ताराओं के रूप में काल के प्रतीक मौक्तिक के समान शोभित होते हैं।

जब कल्प का अवसान हो गया तो भगवान् शंकर श्रीगणेश के साथ क्रीड़ा में लग्न हो गये इससे सृष्टि के कामों में विघ्न आता देख देवगण कैलासनाथ की स्तुति करने लगे।

नागों का उत्तरीय धारण किये हुए श्री गजमुख (गणेश) जब देवताओं के बालकों के साथ क्रीड़ा करने लगे तो समय का ध्यान न रख वे गोल-गोल चन्द्र

मन्दोल्लसत्पञ्चमुखैरजस्रमध्यापयन्तं सकलागमार्थम् ।
देवानृषीन्भक्तजनैकमित्रं हेरम्बमर्कारुणमाश्रयामि ॥
पादाम्बुजाभ्यामति वामनाभ्याङ्कृतार्थयन्तङ्कृपया धरित्रीम्।
अकारणं कारणमाप्तवाचां तन्नागवक्त्रन्न जहाति चेतः ॥
येनार्पितं सत्यवतीसुताय पुराणमालिख्य विषाणकोट्या ।
तञ्चन्द्रमौलेस्तनयन्तपोभिराराध्यमानन्दघनम्भजामि ॥
पदं श्रुतीनामपदं स्तुतीनां लीलावतारम्परमात्ममूर्तेः ।
नागात्मकं वा पुरुषात्मकं वा त्वभेदमाद्यम्भज विघ्नराजम् ॥

की ओर गेंद लेने के बहाने चले। जो थोड़े-थोड़े मन्द हास्य करनेवाले अपने पाँ मुख से सदा सम्पूर्ण निगम-आगमों के तत्त्वों को देवता और ऋषियों को पढ़ा र हैं ऐसे अपने भक्तजन के एकमात्र मित्र प्रातःकाल के सूर्य के प्रकाश के समा लालवर्ण रूप भगवान् गणपति की मैं शरण में जाता हूं।

अपने छोटे-छोटे पैरों से कृपा कर पृथिवी को कृतार्थ करते हुए स्वयं अकार परन्तु आप्तवाक्य पुरुषों के कारण रूप, श्री गणेशजी को चित्त नहीं छोड़ता अर्था श्रीगणपति का स्मरण करते-करते चित्त नहीं अघाता।

जिन्होंने सत्यवती पुत्र व्यास को विषाण कोटि से पुराण लिखकर अर्पि किये उन श्री चन्द्रमौलिशंकरजी के पुत्र आराध्यमान आनन्दघन श्री गणे का मैं ध्यान करता हूं।

जो साक्षात् वेदों के स्थान है, स्तुतियों से अगम है, परमात्ममूर्ति के लील वतार हैं, भले ही वे नागात्मक हैं या पुरुषात्मक हैं, परन्तु अभेद रूप हैं औ आद्य हैं, उन श्री विघ्नेश्वर को स्मरण करो।

पाशाङ्कुशाभग्नरदन्त्वभीष्टङ्करैर्दधानङ्कररन्ध्रमुक्तैः ।
मुक्ताफलाभैः पृथुशीकरौघैः सिञ्चन्तमङ्गं शिवयोर्भजामि ॥

अनेकमेकङ्गजमेकदन्तञ्चैतन्यरूपं जगदादिबीजम् ।
ब्रह्मेति यं वेदविदो वदन्ति तं शम्भुसूनुं सततम्भजामि ॥

स्वाङ्कस्थितायाः निजवल्लभाया मुखाम्बुजालोकनलोलनेत्रम् ।
स्मेराननाब्जं मदवैभवेन रुद्धं भजे विश्वविमोहनं तम् ॥

ये पूर्व्वमाराध्य गजाननन्त्वां सर्व्वाणि शास्त्राणि पठन्ति तेषाम् ।
त्वत्तो न चान्यत्प्रतिपाद्यमेतैस्तदस्ति चेत्सर्वमसत्यकल्पम् ॥

श्री गणपति अपने में हाथ पाश और अङ्कुश लिये हुए हैं और अपने हाथ में जल लेकर शिवजी एवं पार्वती के अङ्गों को अभिषिक्त करते हैं ऐसे अभीष्ट देव का मैं निरन्तर ध्यान करता हूं ।

जो नाना रूपों में अवस्थित होने हुए भी एक हैं, श्रीगणमुख हैं, एकदन्त हैं, चैतन्य रूप हैं, संसार के आदि बीज हैं, जिन्हें वेदविद् ब्रह्म नाम से पुकारते हैं ऐसे श्री शङ्कर पुत्र गणेश को मैं सतत भजता हूं ।

अपने गोद में बैठी हुई प्राणप्यारी के मुखकमल को देख चञ्चलनेत्रवाले मद-वैभव से जिनका ईषद्हास्यवाला मुंह सुन्दर लगता है अपने में स्थित विश्व-विमोहन गणपति का मैं स्मरण करता हूं ।

जो व्यक्ति आपकी आराधना कर सम्पूर्ण शास्त्रों को पढ़ते हैं उनके लिये आपको छोड़ कोई भी प्रतिपाद्य नहीं बल्कि आपके विना अन्य सब असत्य कल्प (रूप) है ।

हिरण्यवर्णञ्जगदीशितारं कविम्पुराणं रविमण्डलस्थम् ।
गजाननं यम्प्रविशन्ति सन्तस्तत्कालयोगैस्तमहम्प्रपद्ये ॥
वेदान्तगीतम्पुरुषम्भजेऽहमात्मानमानन्दघनं हृदिस्थम् ।
गजाननं यन्महसा जनानां विघ्नान्धकारो विलयम्प्रयाति ॥
शम्भोस्समालोक्य जटाकलापे शशाङ्कखण्डं निजपुष्करेण ।
सुभग्नदन्तम्प्रविचिन्त्य मौग्ध्यादाक्रष्टुकामः श्रियमातनोतु ॥
विघ्नार्ग्गलानां विनिपातनार्थं यन्नारिकेलैः कदलीफलाद्यैः ।
प्रसारयन्तम्मदवारणास्यं प्रभुं सदाऽभीष्टमहम्भजेयम् ॥
यज्ञैरनेकैर्वहुभिस्तपोभिराराध्यमाद्यङ्गजराजवक्त्रम् ।
स्तुत्याऽनया ये विधिवत्स्तुवन्ति ते सर्व्वलक्ष्मीनिलया भवन्ति ॥

॥ इति श्रीगणेशस्तवराजः समाप्तः ॥

हिरण्यवर्ण, संसार के स्वामी, कवि, पुराणस्वरूप सूर्यमण्डल में स्थित ऐसे गजानन भगवान् का श्रेष्ठ जन कालयोगों की साधना द्वारा ध्यान करते हैं, उन श्री गणपति की मैं शरण में जाता हूं।

वेदान्त में प्रतिपादित, आदिपुरुष, आत्मस्वरूप, आनन्दघन और हृदय में स्थित भगवान् गणपति का ध्यान करता हूं। इनके ध्यान करने से प्रकाश का उदय होता है और विघ्नरूपी अन्धकार झटिति विलीन हो जाता है।

शङ्कर के जटाजूट में चन्द्रमा के खण्ड को अपने पुष्कर से मुग्ध होकर खींचते हुए श्री गणपति देख शङ्कर प्रसन्न हुए ऐसे गणपति हम सबका मङ्गल करें।

विघ्नों की अर्गला (लौह श्रृङ्खला) को नष्ट करने के लिये नारियल और केला के फलादि से जो अपने मत्तगज के मुखको फैला रहे हैं, ऐसे अभीष्ट प्रभु गणपति का मैं ध्यान करता हूं।

अनेक यज्ञों और बहुत तपस्याओं से आराध्य, आदिदेव, गजराज के मुखवाले श्रीगणपति का जो इस स्तुति से विधिपूर्वक पूजन करते हैं वे लक्ष्मीसम्पन्न होते हैं।

॥ अथ कवचम् ॥

ईश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिकरं प्रिये ! ।
पठित्वा पाठयित्वा च मुच्यते सर्व्वसङ्कटात् ॥
अज्ञात्वा कवचन्देवि गणेशस्य मनुञ्जपेत् ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥
आमोदश्च शिरः पातु प्रमोदश्च शिखोपरि ।
सम्मोदो भ्रू युगे पातु भ्रू मध्ये च गणाधिपः ॥
गणक्रीडश्चक्षुर्य्युगन्नासायां गणनायकः ।
गणक्रीडाचितः पातु वदने सर्व्वसिद्धये ॥
जिह्वायां सुमुखः पातु ग्रीवायां दुर्मुखः सदा ।
विघ्नेशो हृदये पातु विघ्ननाशश्च वक्षसि ॥
गणानान्नायकः पातु बाहुयुग्मे सदा मम ।
विघ्नकर्ता च उदरे विघ्नहर्त्ता च लिङ्गके ॥

ईश्वर बोले—हे प्रिये सम्पूर्ण सिद्धियों के करनेवाले कवच को सुनो मैं कहता हूं जिसे पढ़कर और पढ़ाकर सब सङ्कटों से छुटकारा हो जाता है। जो गणेश कवच को जाने बिना गणेश मन्त्र का जप करता है उसे सौ कोटि कल्पों तक भी सिद्धि नहीं मिलती।

आगे शिर से लेकर पादान्त तक प्रत्येक अङ्ग की श्रीगणेश के विविध नामों से रक्षा बताई हैं—अर्थ स्पष्ट है।

गजवक्त्रः कटीदेशे एकदन्तो नितम्बके ।
लम्बोदरः सदा पातु गुह्यदेशे ममारुणः ॥
व्यालयज्ञोपवीती माम्पातु पादयुगे सदा ।
जापकः सर्व्वदा पातु जानुजङ्घे गणाधिपः ॥
हारिद्रः सर्व्वदा पातु सर्वाङ्गे गणनायकः ।
य इदम्प्रपठेन्नित्यङ्गणेशस्य महेश्वरी ॥
कवचं सर्वसिद्धाख्यं सर्वविघ्नविनाशनम् ।
सर्व्वसिद्धिकरं साक्षात्सर्वपापविमोचनम् ॥
सर्वसम्पत्प्रदं साक्षात्सर्व्वशत्रुक्षयङ्करम् ॥
ग्रहपीडा ज्वरा रोगा ये चान्ये गुह्यकादयः ।
पठनाद्धारणादेव नाशमायान्ति तत्क्षणात् ॥
धनधान्यकरन्देवि ! कवचं सुरपूजितम् ।
समो नास्ति महेशानि त्रैलोक्ये कवचस्य च ॥
हारिद्रस्य महेशानि कवचस्य च भूतले ।
किमन्यैरसदालापैर्यत्रायुर्व्ययतामियात् ॥

॥ इति विश्वसारतन्त्रे गणेशकवचं समाप्तम् ॥

फलश्रुति—जो सर्वसिद्धाख्य (नामवाले) इस गणेशजी के कवच को नित्य पाठ करता है उसके ग्रह, पीड़ा, ज्वर, रोग और गुह्यक पिशाचादि से जनित पीड़ा के भय हैं वे उसी क्षण नाश हो जाते हैं। यह सम्पूर्ण विघ्नों का नाश करनेवाला, सर्वसिद्धियों को करनेवाला और साक्षात् सब पापों से छुटकारा देनेवाला है।

श्रीगणेशन्यासः

आचम्य प्राणायामं संकल्पं च कृत्वा। दक्षिणहस्ते वक्रतुण्डाय नमः। वामहस्ते शूर्पकर्णाय नमः। ओष्ठे विघ्नेशाय नमः। अधरोष्ठे चिन्तामणये नमः। सम्पुटे गजाननाय नमः। दक्षिणपादे लम्बोदराय नमः। वामपादे एकदन्ताय नमः। शिरसि एकदन्ताय नमः। चिबुके ब्रह्मणस्पतये नमः। दक्षिणनासिकायां विनायकाय नमः। वामनासिकायां ज्येष्ठराजाय नमः। दक्षिणनेत्रे विकटाय नमः। वामनेत्रे कपिलाय नमः। दक्षिणकर्णे धरणी-धराय नमः। वामकर्णे आशापूरकाय नमः। नाभौ महोदराय नमः। हृदये धूम्रकेतवे नमः। ललाटे मयूरेशाय नमः। दक्षिणबाहौ स्वानन्दवासकारकाय नमः। वामबाहौ सच्चित्सुखधाम्ने नमः।

॥ इति गणेशन्यासः ॥

यह श्रीगणेश न्यास है इसे करने से सद्यः फल मिलता है।

विशेष क्या कहा जाय सम्पूर्ण सम्पत्ति देनेवाला और सब शत्रुओं का नाश करनेवाला यह कवच है। इसके लिये जो कुछ अधिकाधिक कहा जाय, थोड़ा है यह धनधान्यकारी, सुरपूजित कवच है इसके समान दूसरा कवच हे महेशानि! त्रैलोक्य में नहीं है। जहाँ मनुष्य जीवन प्रतिक्षण व्यय (ह्रास) हो रहा हो वहाँ हारिद्र (श्रीगणेश) का यह कवच है इसे धारण करने से रक्षा होती है।

गणेशोपनिषत्

ॐ लं स्वाहा नाववतु स्वाहा नौ भुनक्तु स्वाहा वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ लं नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केव कर्त्ताऽसि। त्वमेव केवलन्धर्त्ताऽसि। त्वमेव केवलं हर्त्ताऽसि। त्वमेव सर्व्वं खल्वि ब्रह्माऽसि। त्वं साक्षादात्माऽसि नित्यम्। ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि। अ त्वं माम्। अव वक्तारम्। अव श्रोतारम्। अव दातारम्। अव धातारम् अवानूचानम्। अव शिष्यम्। अव पश्चात्। अव पुरस्तात्। अवोत्तरात्तात् अव दक्षिणोत्तात्। अव चोर्द्ध्वात्तात्। आवाधरात्तात्। सर्वतो मां पाहि पा समन्तात्। त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः। त्वमानन्दमयः। त्वं सच्चिदानन्द द्वितीयोऽसि। त्वम्प्रत्यक्षम्ब्रह्माऽसि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि।

लं बीज के गणपति को नमस्कार है। आप प्रत्यक्ष तत्त्व हैं। आप ही केव कर्त्ता हैं। आप ही केवल धर्त्ता हैं। आप ही केवल हर्त्ता हैं। आप ही सम चराचर में व्याप्त ब्रह्मत्त्व हैं। आप ही साक्षात् नित्य आत्मा हैं। व्यवहाररूप सत्य के रूप में मैं कहता हूं। सत्य कहता हूं। आप मेरी रक्षा करें। पढ़नेवाले रक्षा करें। सुननेवाले की रक्षा कर। दाता की रक्षा करें। धाता की रक्षा करें उच्च भावनावाले (गुरु) की रक्षा करें। शिष्य की रक्षा करें। पीठ पीछे र करें। आगे रक्षा करें। उत्तर पार्श्व में रक्षा करें। दक्षिण पार्श्व में रक्षा कर ऊपर से रक्षा करें। नीचे से रक्षा करें। सब ओर से रक्षा करें। चारों दिशा से रक्षा करें।

आप वाणीरूप हैं। आप चिद्रूप हैं। आप आनन्दमय हैं। आप ब्रह्ममय सच्चिदानन्द हैं, अद्वितीय हैं। आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। आप ज्ञानस्वरूप हैं (अनेक

सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते । सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति । सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति । त्वम्भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः । त्वं चत्वारि वाक्पदानि । त्वङ्गुणत्रयातीतः । त्वन्देहत्रयातीतः । त्वं मूलाधार स्थिताऽसि नित्यम् । त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ॥

गणादीन्पूर्वमुच्चार्य वर्णादींस्तदनन्तरम् । अनुस्वारः परतरः । अर्द्धेन्दुलसितं तारेण रुद्धम् । एतत्तवमनुस्वरूपम् । गकारः पूर्वरूपम् । अकारो मध्यमरूपम् । अनुस्वारश्चान्त्यरूपम् । बिन्दुरुत्तररूपम् । नादः सन्धानरूपम् । संहिता सन्धिः । सैषा गणेश विद्या । गण ऋषिनिचृद्गायत्री छन्दः ।

एक में प्रत्यक्षीकरण) । आप विज्ञानरूप हैं (एक का विश्लेषणीकरण द्वारा अनेक रूपमें ज्ञान) । यह सम्पूर्ण संसार आप से होता है । यह सारा संसार आप से स्थित हैं । यह सब संसार आप में लीन हो जायगा । आप ही भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश हैं, । आप ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये वाणी के चार रूप हैं । आप तीनों गुणो (सत्त्व, रजः, तमः) से परे हैं । आप स्थूल, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म शरीर से अतीत (परे) हैं ।

आप ही सदा सकल ब्रह्माण्ड के मूलाधार में स्थित हैं । आप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्म, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक प्राण शक्ति ओङ्कार स्वरूप हैं । अनुस्वार परतर हैं, अनुस्वार से युक्त तार से रुद्ध हैं । आकार मध्यमरूप हैं । आपका अनुस्वरूप यह है । गकार पूर्वरूप अकार मध्यमरूप है और अनुस्वार अन्त्यरूप हैं । विन्दु उत्तररूप हैं । नाद सन्धान रूप हैं । संहिता अतिशय से वर्णों की सन्धि हैं । गँ यह गणेश विद्या है । गणऋषि निचृत् । गायत्री छन्द है । गणपति देवता हैं ।

गणपतिर्देवता। ॐ गं गणपतये नमः। एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डा धीमहि। तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।

एकदन्त चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
रदं च वरदैर्हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्त लम्बोदरं शूर्प कर्णकं रक्तवाससम्।
रक्त गन्धानुलिप्ताङ्ग रक्त पुस्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनन्देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतश्च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥
एवन्ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनाम्वरः।

ॐ नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः। प्रमथपतये नमस्ते अस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय वरदमूर्त्तये नमः। एत

ॐ गँ गणपति को प्रणाम है। हम एकदन्त का साक्षात्कार करते हैं। वक्रतुण्ड का ध्यान करते हैं। वह भगवान् दन्ति हमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के उच्चतम स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति के लिये बुद्धि की प्रेरणा करे। एकदन्त, चार हाथवाले, पाश व अङ्कुश को धारण किये हुए, रद को तथा वरदहाथों से मूषकध्वजा को लिये हुए लाल रंगवाले लम्वोदर, शूर्प कर्ण, लाल कपड़े पहने हुए, लाल चन्दन को शरीर पर लेपे हुए, लाल पुष्पों से भलीभाँति पूजित भक्तों पर अनुकम्पा करनेवाले सृष्टि के कारण, पुरुष से परतत्त्व उन भगवान् गणेश को उपरोक्त ध्यान से स्मरण करनेवाला योगियों में श्रेष्ठ योगी है। ॐ व्रातपति को प्रणाम है, गणपति को नमस्कार है, लम्बोदर को नति है। एकदन्त, विघ्नविनाशन, शिवजी के पुत्र वरदमूर्ति को हमारा अभिवादन है।

दथर्वशीर्षं योऽधीते। स ब्रह्म भूयाय कल्पते। स सर्वविघ्नैर्नबाध्यते। स सर्वतः सुखमेधते। स पञ्च महापापात्प्रमुच्यते। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायम्प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। सर्वत्राऽधीयानोऽपविघ्नो भवति। धर्ममर्थं कामं मोक्षञ्च विन्दति। इदमथर्वशीर्षमशिष्याय न देयम्। यो यदि मोहाद्दास्यति। स पापीयान्भवति। सहस्रावर्त्तनाद्यं यं काममधीते। तन्तमनेन साधयेत्। अनेन गणपतिमभिषिञ्चति। स वाग्मी भवति। इत्यथर्वणवाक्यम्। ब्रह्माद्याचरणं विद्यां न बिभेति कदाचनेति। यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति

इस गणेश अथर्वशीर्षको जो पढ़ते हैं उनकी ब्रह्मसायुज्यता हो जाती है। उन्हें कोई भी विघ्न नहीं सताते। सर्वत्र ही उन्हें सुख मिलता है। वह पाँच प्रकार के महापापों से छूट जाते हैं। सायं काल पाठ करनेवाले के दिन में किये हुए सब पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रातःकाल पढ़नेवाले के रात्रि में किये पाप समूल नष्ट हो जाते हैं। सायंकाल और प्रातःकाल पढ़नेवाला निष्पाप होता है। सर्वत्र पढ़नेवाला विघ्नों से रहित हो जाता। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पा जाता है।

इस अथर्वशीर्ष को जो शासन न करने योग्य (अशिष्य) हो उसे मत देना। जो कोई मोह से इसे ऐसे अनधिकारी को देगा वह पापी होगा। इसकी एक हजार बार आवृत्ति करने से जिस-जिस काम की इच्छा होगी वह-वह सिद्ध होगा। इससे जो गणपति का अभिषेक करता है वह वाग्मी (सभापण्डित) होता है। चतुर्थी को अन्न खाये बिना जपता है वह विद्यावान् होता है। यह अथर्वण वाक्य है।

ब्रह्मादि के समान आचरणशील इस विद्या को जानेवाला कहीं भी नहीं डरता है।

स वैश्रवणोपमो भवति। यो लाजैर्यजति स यशोवान्भवति। स मेधावा न्भवति। यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति। य साज्यसमिद्भिर्यजति। स सर्वं लभते। अष्टौ ब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयित्व सूर्य्यवर्चस्वी भवति। सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासन्निधौ जप्त्वा सिद्धमन्त्रं भवति। महाविघ्नात्प्रमुच्यते। महादोषात्प्रमुच्यते। महाप्रत्यवायात्प्रमुच्यते स सर्वविद्भवति। य एवं वेद। इत्युपनिषद्। सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

॥ इति श्रीगणपत्युपनिषत् ॥

जो दूर्वा के अङ्कुरों से इस अथर्वशीर्ष से गणपति का पूजन करता है वा इन्द्र के समान बन जाता है। जो लाज (खीलों) से पूजन करता है, वह यशस्वी होता है एवं जो एक हजार लड्डुओं से यजन करता है वह इच्छित फल पाता है।

जो घृत युक्त समिधा से यज्ञ करता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को पाता है आठ ब्राह्मणों को अच्छी प्रकार इस गणेशाथर्वशीर्ष के लिये लगानेवाला सूर्य के समान तेजस्वी होता है। सूर्यग्रहण में, बड़ी नदियों में, गणेशजी की प्रतिमा के समीप इसको जपने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

बड़े-बड़े विघ्नों से छुटकारा हो जाता है। बड़े भारी दोषों से मुक्ति मिल जाती है। बड़े-बड़े प्रायश्चित्तों से छूट जाता है। वह सर्वज्ञ हो जाता है। जो इसे जानता है। यह उपनिषद् (आध्यात्मिक परमात्म विद्या) है।

उपनिषद् परमात्म विद्या का स्वरूप प्रकट करके हमारी (गुरु शिष्य की) रक्षा करो। विद्या का फल प्रकट कर हमारा पालन करो। हम दोनों एक साथ विद्या सम्बन्धी

श्रीगणेशशतनामस्तोत्रम्

ॐ गणेश्वरो गणक्रीड़ो महागणपतिस्तथा ।
विश्वकर्त्ता विश्वमुखो दुर्ज्जयो धूर्ज्जयो जयः ॥
सुरूपः सर्वनेत्रधिवासो वीरासनाश्रयः ।
योगाधिपस्तारकस्थः पुरुषो गजकर्णकः ॥
चित्राङ्कः श्यामदशनो भालचन्द्रश्चतुर्भुजः ।
शम्भुतेजाः यज्ञकायः सर्वात्मा सामबृंहितः ॥
कुलाचलांसो व्योमनाभिः कल्पद्रुमवनालयः ।
निम्ननाभिः स्थूलकुक्षिः पीनवक्षा बृहद्भुजः ॥

सामर्थ्य प्राप्त करे। हम दोनों का अध्ययन तेजस्वी होवे हम दोनों प्रसाद से अन्यायपूर्ण अध्ययन एवं अध्यापन के दोष के लिये आपस में द्वेष नहीं करेंगे।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

(एक साथ रक्षणीय हो। एक साथ हमारी वृद्धि हो। एक साथ हममें वीर्य-शक्ति की वृद्धि हो तेजस्वी होकर सम्पूर्ण ज्ञानज्योति के अधिकारी हों और हमारी शक्ति किसी भी रागद्वेष पूर्ण कार्य में न लगे, सम्पूर्ण विश्व के साथ हमारे सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हों।) सम्पूर्ण विश्व में आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक शान्ति द्वारा सुख का साम्राज्य विस्तार हो। यह गणपति का उपनिषत् है।

पीनस्कन्धः कम्बुकण्ठो लम्बोष्ठो लम्बनासिकः ।
सर्व्वावयवसम्पूर्णः सर्व्वलक्षणलक्षितः ॥
इक्षुचापधरः शूली कान्तिकन्दलिताश्रयः ।
अक्षमालाधरो ज्ञानमुद्रावान् विजयावहः ॥
कामिनीकामनः काम मालिनी केलिलालितः ।
अमोघसिद्धिराधार आधाराधेयवर्ज्जितः ॥
इन्दीवरदलश्याम इन्दुमण्डलनिर्म्मलः ।
कर्म्मसाक्षी कर्म्मकर्त्ता कर्म्माकर्म्मफलप्रदः ॥
कमण्डलुधरः कल्पः कपर्द्दी कटिसूत्रभृत् ।
कारुण्यदेहः कपिलो गुह्यागमनिरूपितः ॥
गुहाशयो गुहाब्धिस्थो घटकुम्भो घटोदरः ।
पूर्णानन्दः परानन्दो धनदो धरणीधरः ॥
बृहत्तमो ब्रह्मपरो ब्रह्मण्यो ब्रह्मवित्प्रियः ।
भव्यो भूतालयो भोगदाता चैव महामनाः ॥
वरेण्यो वामदेवश्च वन्द्यो वज्रनिवारणः ।
विश्वकर्त्ता विश्वचक्षुर्हवनं हव्यकव्यभुक् ॥
स्वतन्त्रः सत्यसङ्कल्पस्तथा सौभाग्यवर्द्धनः ।
कीर्त्तिदः शोकहारी च त्रिवर्गफलदायकः ॥
चतुर्बाहुश्चतुर्द्दन्तश्चतुर्थीतिथिसम्भवः ।
सहस्रशीर्षापुरुषः पुरुषाक्षस्सहस्रपात् ॥

कामरूपः कामगतिर्द्विरदो द्वीपरक्षकः ।
क्षेत्राधिपः क्षमा भर्त्ता लयस्थो लड्डुकप्रियः ॥
प्रतिवादिमुखस्तम्भो दुष्टचित्तप्रसादनः ।
भगवान्भक्तिसुलभो याज्ञिको याजकप्रियः ॥
इत्येवन्देवदेवस्यगणराजस्य धीमतः ।
शतमष्टोत्तरं नाम्नां सारभूतम्प्रकीर्तितम् ॥
सहस्रनाम्नामाकृष्य मया प्रोक्तम्मनोहरम् ।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय स्मृत्वा देवङ्गणेश्वरम् ॥
पठेत्स्तोत्रमिदम्भक्त्या गणराजः प्रसीदति ॥

॥ इति श्रीगणेशस्याष्टोत्तर शतनाम स्तोत्रं समाप्तम् ॥

उपरोक्त एक सौ आठ नाम श्री गणेश भगवान् के हैं, ये साररूप में बताये गये हैं और एक हजार नामों में से निकाले गये हैं। ब्राह्ममुहूर्त में शय्या त्याग कर भगवान् गणेश्वर को स्मरण करते हुए इस स्तोत्र को जो भक्ति से पढ़ता है भगवान् गणराज उसपर पूर्ण कृपा करते हैं।

भगवान् श्रीगणेश के १०८ नामों का स्तोत्र पूर्ण हुआ।

मत्स्यपुराणोक्त श्रीगणपतिकवचम्

श्री विष्णुरुवाच ।

विनायकस्य कवचं त्रिषुलोकेषु दुर्लभम् ।
सुगोप्यश्च पुराणेषु दुर्लभश्चागमेषु च ॥
उक्तं कौथुमशाखायां सामवेदे मनोहरम् ।
कवचं विघ्ननाथस्य सर्वविघ्नहरं परम् ॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणादेयाश्च सूर्य्यज ! ।
एवम्भूतश्च कवचं न देयं प्राणसङ्कटे ॥
आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छयाऽस्य च मायया ।
नित्योऽयमेकदन्तश्च कवचं चास्य वत्सक ! ॥

श्री विष्णु बोले—विनायक का कवच तीनों लोकों में दुर्लभ है, यह पुराणों में सुगोप्य है और आगमों में दुर्लभ है। सामवेद की कौथुम शाखा में यह मनोहर विघ्ननाथ भगवान् गणपति का कवच है जो सम्पूर्ण विघ्नों को दूर करता है और अद्वितीय है।

हे सूर्यपुत्र ! राज्य भले ही दिया जाय, शिर दे दिया जाय, प्राण तक क्यों न दिये जांय, परन्तु ऐसा विलक्षण कवच प्राणों पर संकट आ पड़नेपर भी योग्य अधिकारी को छोड़ दूसरे किसीको नहीं देना चाहिये।

श्री गणेश की माया से ही स्वेच्छया इसका आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है जैसे गणेश नित्य, शुद्ध और बुद्ध रूप हैं वैसे ही उनका यह कवच भी।

पूजाऽस्य नित्या स्तोत्रञ्च कल्पेकल्पेऽस्ति सन्ततम् ।
अस्याऽस्य जन्मनः पूर्वं मुनयश्च सिषेविरे ॥

यथा मदवतारेषु जन्मविग्रहधारणम् ।
तथा गणेश्वरस्याऽपि जन्म शैलसुतोदरे ॥

यद्धृत्वा मुनयः सर्वे जीवन्मुक्ताश्च भारते ।
निः शङ्काश्च सुराः सर्वे शत्रुपक्षविमर्दकाः ॥

कवचं बिभ्रतां मृत्युर्न याति सन्निधिं भिया ।
नायुर्व्ययो नाशुभञ्च ब्रह्माण्डे न पराजयः ॥

दशलक्षजपेनैव सिद्धञ्च कवचम्भवेत् ।
यो भवेत् सिद्धकवचो मृत्युं जेतुं स च क्षमः ॥

इनकी पूजा नित्य है स्तोत्र भी कल्प-कल्प में सदा रहती है उसको गणपति के जन्म के पूर्व भी मुनिगण ने सेवन किया। जैसे, प्रकृत में मेरे अवतारों में जन्मविग्रह का धारण हुआ वैसे ही माता पार्वती के गर्भ से श्री गणेश का आविर्भाव हुआ।

इस कवच को धारण करने से सभी मुनिगण भारत में जीवन्मुक्त हो गये। अपने शत्रुओं पर विजय पाकर देवगण इसके प्रभाव से निःशङ्क हो गये। इस अतीव सुन्दर कवच को धारण करनेवाले से मृत्यु डरती है पास में नहीं आती।

इसके धारण करनेवाले की आयु क्षीण नहीं होती न अशुभ होता है न ब्रह्माण्ड भर में कहीं पराजय होती है। दश लाख आवृत्ति करने से ही यह कवच सिद्ध हो जाता है। जो इस कवच को सिद्ध कर लेता है वह मृत्यु को भी जीत सकता है।

सुसिद्धकवचो वाग्मी चिरजीवी महीतले ।
सर्वत्र विजयी पूज्यो भवेद्ग्रहणमात्रतः ॥
मालामन्त्रमिमं पुण्यं कवचञ्चेदमेव च ।
बिभ्रतां सर्वपापानि प्रणश्यन्ति सुनिश्चितम् ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः ।
डाकिन्यो योगिन्यश्चैव वेतालादय एव च ॥
बालग्रहा ग्रहाश्चैव क्षेत्रपालादयस्तथा ।
तेषाञ्च शब्दमात्रेण पलायन्ते च भीरवः ॥
आधयो व्याधयश्चैव शोकाश्चैव भयावहाः ।
न यान्ति सन्निधिन्तेषां गरुड़स्य यथोरगाः ॥
ऋजवे गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत् ।
खलाय परशिष्याय दत्तो मृत्युमवाप्नुयात् ॥

सुसिद्धकवचवाला पुरुष वाग्मी और पृथ्वी में चिरजीवी होता है। इसके धार[illegible] करने मात्र से ही सर्वत्र मनुष्य विजयी होता है और उसकी पूजा होती है।

यह ही पुण्यमाला मन्त्र है, यही कवच है, इसको धारण करनेवाले के स[illegible] पाप ताप नाश हो जाते हैं यह सुनिश्चित है।

भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, वेताल, बालग्र[illegible] ग्रह, क्षेत्रपालादि से जो भी भय हैं वे सब इस कवच के शब्दमात्र से डरकर भा[illegible] खड़े होते हैं। सभी मानसिक एवं शारीरिक पीड़ायें, भयदायक शोक, ऐसे दू[illegible] भाग जाते हैं जैसे गरुड़ के डरसे सर्प।

इसे सीधे-सादे निष्कपट गुरुभक्त शिष्य को ही प्रकाश करना चाहिये। दु[illegible] एवं दूसरे के शिष्य को देने से अनिष्ट प्रभाव होता है।

संसारमोहकस्याय कवचस्य प्रजापतिः ।
ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवो लम्बोदरःस्वयम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
सर्वेषां कवचानाञ्च सारभूतमिदं मुने ॥
ओं गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम् ।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गमितिच सन्ततं पातु लोचनम् ।
तालुकं पातु विघ्नेशः सन्ततं धरणीतले ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति च सन्ततं पातु नासिकाम् ।
ओं गौंगं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम ॥
दन्तानि तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः ।
ॐ लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु ॥
ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदाऽवतु च ।
ॐ श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ॥

संसारमोहक इस कवच का प्रजापति ऋषि हैं, बृहती छन्द है, स्वयं भगवान् लम्बोदर देवता हैं, धर्म, अर्थ काम, और मोक्ष की प्राप्ति के लिये इसको विनियोग बतलाया गया है।

कवच में शिर से पाद तक सम्पूर्ण अङ्गों की वीजमन्त्र एवं श्रीगणेश के विविध विज्ञानमय नामों से रक्षा वताई गई है जो मूलमें स्पष्ट है।

ॐ ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ।
ॐ क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातुवक्षःस्थलञ्च ताम् ॥
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत् ।
प्राच्यां लम्बोदरः पातु आग्नेय्यां विघ्ननायकः ॥
दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यान्तु गजाननः ।
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शङ्करात्मजः ॥
कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च ।
ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः ॥
अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः ।
स्वप्ने जागरणेचैव पातु मां योगिनां गुरुः ॥
इति ते कथितं वत्स ! सर्वं मन्त्रौघविग्रहम् ।
संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले ।
वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज ! ॥
मया दत्तञ्च तुभ्यञ्च यस्मै कस्मै न दास्यति ।
परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसङ्कटतारकम् ॥

फलश्रुति—हे वत्स ! यह सम्पूर्ण मन्त्रों का एकत्रित शरीररूप परम अद्‌[भुत] संसारमोहन नामक कवच मैंने तुम्हें बताया है। हे सूर्य पुत्र ! श्रीकृष्ण ने वृन्दा[वन] में, जो उन्होंने रासमण्डल के समय गोलोक में प्रकट किया था, उसीको विन[य]वनत मुझे दिया मैंने अब प्रकाशित किया है। इसे अयोग्य को मत देना। [य]ह विलक्षण सर्वपूज्य, और सब सङ्कटों को बचानेवाला कवच है।

गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
ग्रहेन्द्र! कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छङ्करात्मजम् ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥
(श्लोकाः ६२ तः ६५ पर्यन्ताः)

॥ इति श्रीगणपतिखण्डे त्रयोदशेऽध्याये गणेशकवचं सम्पूर्णम् ॥

इसे गुरु की श्रद्धा-भक्ति से पूजा कर विधिवत् धारण करे। जो इसे कण्ठ में या दहिने बाहू (बाजू) में बांधता है वह भी विष्णु तुल्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं। हे ग्रहों के अधिपते! हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ भी इसकी सोलहवीं कला की समानता नहीं कर सकते।

जो इस कवच को जाने बिना भगवान् गणपति का ध्यान व पूजन करते हैं, उनके उस मन्त्र को करोड़ों बार जपने पर भी कोई सिद्धि नहीं मिल सकती।

गणपतिखण्ड में १३ वें अध्याय में गणेशकवच सम्पूर्ण।

सङ्कष्टहरणश्रीगणेशाष्टकस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्री सङ्कष्टहरणस्तोत्रमन्त्रस्य श्री महागणपतिर्देवता सङ्क्ष्ट-हरणार्थे जपे विनियोगः ।

ॐ ॐ ॐकार रूपं त्र्यहमिति च परं यत्स्वरूपं तुरीयम् ।
त्रैगुण्यातीतनीलं कलयति मनसस्तेजसिन्दूरमूर्तिम् ॥
योगीन्द्रैर्ब्रह्मरन्ध्रैः सकलगुणमयं श्रीहरेन्द्रेण सङ्गम् ।
गं गं गं गणेशं गजमुखमभितो व्यापकं चिन्तयन्ति ॥
वं वं वं विघ्नराजं भजति निजभुजे दक्षिणे न्यस्तशुण्डम् ।
क्रं क्रं क्रं क्रोधमुद्रादलितरिपुवलं कल्पवृक्षस्य मूले ॥

इस सङ्कष्टहरण स्तोत्र मन्त्र का श्री महागणपति देवता हैं। सङ्कष्टहरण के लिए जप का विनियोग है।

ॐ ॐ ॐकार रूप त्रिगुणात्मक से परतत्त्व जो तुरीय स्वरूप है, त्रैगुण्य अतीत स्वच्छ नीलवर्ण ऐसे भगवान् गणपति की तेजोयुक्त सिन्दूरमयी मूर्ति मन को मोहती है।

योगीन्द्र और ब्रह्मरन्ध्रोंवाले सम्पूर्ण गुणों से सेवित श्रीहरेन्द्र के साथ गणप का ध्यान करते हैं। और गं गं गं गणेश गजमुख को, जो व्यापक तत्त्व है, चिन्त करते हैं।

वं वं वं विघ्नराज को, जो अपने दक्षिण हाथ में सूण्ड को रक्खे हुए हैं क्रं क्रं क्रं क्रोधमुद्रा से रिपुवल को दलित कर दिया है कल्पवृक्ष के मूल में स्थित उन्हें ध्यान में स्थित सभी भजते हैं।

दं दं दं दन्तमेकं दधति मुनिमुखं कामधेन्वा निषेव्यम् ।
धं धं धं धारयन्तं धनदमतिमयं सिद्धिबुद्धिद्वितीयम् ॥
तुं तुं तुं तुङ्गरूपं गगनपथिगतं व्याप्नुवन्तं दिगन्तान् ।
क्लीं क्लीं क्लींकारनाथं गलितमदमिलल्लोलमत्तालिमालम् ॥
ह्रीं ह्रीं ह्रींकारपिङ्गं सकलमुनिवरध्येयमुण्डं च शुण्डम् ।
श्रीं श्रीं श्रीं श्रींश्रयन्तं निखिलनिधिकुलं नौमि हेरम्बबिम्बम् ॥
लौं लौं लौंकारमाद्यं प्रणवमिव मयं मन्त्रमुक्तावलीनाम् ।
शुद्धं विघ्नेशबीजं शशिकरसदृशं योगिनां ध्यानगम्यम् ॥

दं दं दं श्रीगणपति एकदन्त को धारण करते हैं, ये सभी मुनियों में श्रेष्ठ हैं कामधेनु से सेवित हैं।

धं धं धं धन देनेवाले सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धिरूप सिद्धि-बुद्धि जिनके पार्श्व में हैं, ऐसे गणपति का ध्यान करते हैं।

तुं तुं तुं तुङ्गरूप हैं आकाशमार्ग में तेजः स्वरूप से दिगन्त को व्याप्त किये हैं।

क्लीं क्लीं क्लींकार के अधिपति और अपने गण्डस्थल से निकलते हुए जिनके मद को पान करने के लिये मदोन्मत्त भंवरों की पङ्क्ति एकत्रित हो रही है। उन्हें स्मरण करते हैं।

ह्रीं ह्रीं ह्रींकार पिङ्गल (पीले वर्णवाले) है, उनके मुख और सूण्ड को सम्पूर्ण मुनिवर ध्यान करते हैं।

श्रीं श्रीं श्रीं को धारण किये हुए सम्पूर्ण निधियों का समूह हेरम्ब की मूर्ति को प्रणाम करते हैं।

लौं लौं लौंकार आद्य स्वरूप है और प्रणव रूप में मन्त्रों के मोतियों की माला है। शुद्ध स्वरूप विघ्नों के स्वामी के आधार भूत, चन्द्रकिरणों के सदृश सुशीतल और योगीजन के ध्यानगम्य हैं।

डं डं डं डामरूपं दलितभवभयं सूर्यकोटिप्रकाशम् ।
यं यं यं यज्ञनाथं जपति मुनिवरो बाह्यमभ्यन्तरश्च ॥
हुं हुं हुं हेमवर्णं श्रुतिगणितगुणं शूर्पकर्णं कृपालुम् ।
ध्येयं सूर्यस्यबिम्बं ह्युरसि च विलसत्सर्पयज्ञोपवीतम् ॥
स्वाहा हुं फट् नमोऽन्तैः (ठ)फठठठठ सहितैः पल्लवैः सेव्यमानं ।
मन्त्राणां सप्तकोटिं प्रगुणितमहिमाधारमीशम्प्रपद्ये ॥
पूर्वं पीठं त्रिकोणं तदुपरि रुचिरं षट्क पत्रं पवित्रं ।
तस्योर्द्ध्वं शुद्धरेखा वसुदलकमलं वा स्वतेजश्चतुस्रम् ॥
मध्ये हुङ्कारबीजं तदनु भगवतः स्वाङ्ग षट्कं षडस्रे ।
अष्टौ शक्तीश्चसिद्धीर्बहुलगणपतिर्विष्टरश्चाष्टकश्च ॥

डं डं डं डामरूप संसार के भय को समूल नष्ट करनेवाले सूर्यकोटि प्रक[illegible] है। यं यं यं यज्ञ नाथ श्री गणेश को मुनिजन बाहर भीतर अहर्निश भजते हैं।

हुं हुं हुं हेमवर्णवाले श्रुतियों में प्रतिपादित गुणयुक्त, शूर्प (छज्जों के सम[illegible] कर्णवाले, दयालु, सूर्य के बिम्बरूप ध्येय तत्त्व इनके हृदयपर सर्प का यज्ञोप[illegible] शोभित होता है।

स्वाहा हुं फट् नमोऽन्तक के साथ फ ठ ठ ठ ठ बीजों के पल्लवों से सेव्य[illegible] और सात करोड़ मन्त्रों की अत्यधिक महिमा के आधार भूत श्री गणेशजी[illegible] शरण में जाते हैं।

पूव पीठ त्रिकोणाकार उसके ऊपर सुन्दर पवित्र षड्दल पत्र उसके उपरि[illegible] भाग पर शुद्ध रेखा या अष्टदलकमल और चारों ओर अपना तेजः पुञ्ज शोभित[illegible]

बीज में हुंकार बीज फिर भगवान् का अङ्ग षट् क षड्दल में आठों शक्ति[illegible] एवं सिद्धियां भगवान् गणपति अष्टदल के विष्टर (आसन) पर विराजमान हैं

धर्माद्यष्टौ प्रसिद्धा दशदिशविदिता वाध्वजाल्यः कपालं ।
तस्य क्षेत्रादिनाथं मुनिकुलमखिलं मन्त्रमुद्रामहेशं ॥
एवं यो भक्तियुक्तो जपति गणपतिं पुष्पधूपाक्षताद्यै- ।
र्नैवेद्यैर्मोदकानां स्तुतियुतविलसद्गीतवादित्रनादैः ॥
राजानस्तस्य भृत्या इव युवतिकुलं दासवत्सर्वदाऽऽस्ते ।
लक्ष्मीः सर्वाङ्गयुक्ता जयति च सदनं किङ्कराः सर्वलोकाः ॥
पुत्राः पुत्र्यः पवित्राः रणभुवि विजयी द्यूतवादेऽपि वीरो ।
यस्येशो विघ्नराजो निवसति हृदये भक्तिभाग्यस्य रुद्रः ॥

॥ इति सङ्कष्टहरणं श्रीगणेशाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

आठ धर्मादि प्रसिद्ध दशों दिशाओं में फैली हुई रश्मियां और कपाल ऐसे क्षेत्रादि नाथ सम्पूर्ण मुनिगणों के मन्त्रमुद्रास्वरूप महेश्वर रूप में सेव्य है। इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक गणपति का पुष्प, धूप, अक्षत आदि और मोदकों के नैवेद्य से स्तुति युक्त सुन्दर गीत वादित्रों से ध्यान करता है तो उसके राजा लोग नौकर के समान हो जाते हैं और युवतियां दास के समान पराधीन हो जाती हैं। उसके घर में सम्पूर्ण अङ्गों समेत लक्ष्मी निवास करती है, सम्पूर्ण लोक उसके सेवक हो जाते हैं, पवित्र कुल में सत्कुलीन सुन्दर आज्ञाकारी पुत्र और पुत्रियां होती है। युद्धक्षेत्र में विजयी होता है तथा वैसे किसी भी स्थान में जाय तो भक्ति-भाव से हृदय में गणपति का ध्यान करनेवालों के जीवन में सदा ही अभ्युदय होता है।

श्रीगणेशाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

अर्थ स्पष्ट है—

यम उवाच ।

गणेश हेरम्ब गजाननेति महोदर स्वानुभवप्रकाशिन् ।
वरिष्ठ सिद्धिप्रियबुद्धिनाथ वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥
अनेकविघ्नान्तक वक्रतुण्ड स्वसंज्ञवासिंश्च चतुर्भुजेति ।
कवीश देवान्तकनाशकारिन् वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥
महेशसूनो गजदैत्यशत्रो वरेण्यसूनो विकट त्रिनेत्र ।
परेश पृथ्वीधर एकदन्त वदन्तमेवं० ॥
प्रमोद मोदेति नरान्तकारे षडूर्मिहन्तर्गजकर्ण ढुण्ढे ।
द्वन्द्वारिसिन्धो स्थिरभावकारिन् वदन्त० ॥
विनायक ज्ञानविघातशत्रो पराशरस्यात्मज विष्णुपुत्र ।
अनादिपूज्याखुग सर्वपूज्य वदन्तमेवं० ॥
वैरिञ्च्य(विधेर्ज)लम्बोदर धूम्रवर्ण मयूरपालेति मयूरवाहिन् ।
सुरासुरैः सेवितपादपद्म वदन्तमेवं० ॥
वैरिन्महाखुध्वज शूर्पकर्ण शिवाज सिंहस्थ अनन्तवाह ।
दितौज विघ्नेश्वर शेषनाभे वदन्तमेवं० ॥
अणोरणीयो महतो महीयो रवेर्ज योगेशज ज्येष्ठराज ।
निधीश मन्त्रेश च शेषपुत्र वदन्तमेवं० ॥

वरप्रदातरदितेश्च सूनो परात्पर ज्ञानद तारवक्त्र ।
गुहाग्रज ब्रह्मप पार्श्वपुत्र वदन्त मेवं० ॥

सिन्धोश्च शत्रो परशुप्रयाणे शमीशपुष्पप्रिय विघ्नहारिन् ॥
दूर्वाभरैरर्चित देवदेव वदन्त० ॥

धियः प्रदातश्च शमीप्रियेति सुसिद्धिदातश्च सुशान्तिदातः ।
अमेयमायामितविक्रमेति वदन्तमेवं० ॥

द्विधा चतुर्थीप्रिय कश्यपाच्च धनप्रद ज्ञानपदप्रकाशिन्(श) ।
चिन्तामणे चित्तविहारकारिन् वदन्त० ॥

यमस्य शत्रो ह्यभिमान शत्रो विधेर्ज हन्तः कपिलस्य सूनो ।
विदेह स्वानन्द अयोगयोग वदन्त० ॥

गणस्य शत्रो कमलस्य शत्रो समस्तभावज्ञ च भालचन्द्रा ! ।
अनादिमध्यान्तमय प्रचारिन् वदन्त० ॥

विभो ! जगद्रूप गणेश भूमन् पुष्टेःपते आखुगतेति बोधः ।
कर्तुश्चपातुश्च तु संहरेति वदन्त० ॥

इदमष्टोत्तरशतं नाम्नां तस्य पठन्ति ये ।
शृण्वन्ति तेषु वै भीताः कुरुध्वं मा प्रवेशनम् ॥

भुक्तिमुक्तिप्रदं ढुण्ढेर्धनधान्यप्रवर्धनम् ।
ब्रह्मभूतकरं स्तोत्रं जपन्तं नित्यमादरात् ॥

यत्र कुत्र गणेशस्य चिह्नयुक्तानि वै भटाः ।
धामानि तत्र सम्भीताः कुरुध्वं मा प्रवेशनम् ॥

॥ इति यमदूतसंवादे गणेशाष्टोत्तर शतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

संकष्टनाशनं गणेशस्तोत्रम्

नारद उवाच ।

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकं ।
भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुः कामार्थसिद्धये ॥
प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम् ।
तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम् ॥
लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च ।
सप्तमं विघ्नराजं च धूम्रवर्णं तथाष्टमम् ॥

फलश्रुति—इस १०८ नामों के स्तोत्र को जो पढ़ते हैं या सुनते हैं, उनसे डरकर रहना और उन्हें किसी प्रकार भी अत्यधिक कष्ट न देना। यह स्तोत्र युक्ति को वढ़ानेवाला और उसके धनधान्य की वृद्धि करनेवाला है, यह ब्रह्मभूत स्तोत्र है इसे नित्य आदर से पाठ करनेवाले को सद्यः सिद्धि मिलती है।

जहाँ-जहाँ श्रीगणेश के नाम से अङ्कित चिह्न या स्थान विशेष हो वहाँ प्रवेश मत करना और डरते रहना।

नारदजी ने कहा—गौरी पुत्र विनायक को शिर से प्रणाम करता हूं। भक्तों के हृदय में विराजते हैं और इसका स्मरण का ध्येय है, आयुः काम अर्थ की सिद्धि हो। आगे गणेशजी के बारह नामों का पाठ है :—

नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम् ।
एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम् ॥
द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं प्रभो ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्मोक्षार्थी लभते गतिम् ॥
जपेद्गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत् ।
संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नाऽत्र संशयः ॥
अष्टाभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च लिखित्वा यः समर्पयेत् ।
तस्य विद्या भवेत्सर्वा गणेशस्य प्रसादतः ॥

॥ इति श्री नारदपुराणे संकष्टनाशनं गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

इन बारह नामों को जो तीनों सन्ध्याकाल में पढ़ते हैं, उन्हें विघ्नों का डर नहीं रहता, क्योंकि यह अत्यन्त सिद्धिकर हैं। विद्यार्थी को विद्या, धनार्थी को धन, पुत्र की कामनावाले को पुत्रसिद्धि और मोक्षार्थी को गति मिलते हैं।

इस गणपति स्तोत्र का पाठ करने से छै ही मास में सिद्धि मिल जाती है, एक वर्ष में निरन्तर करने से तो कोई सन्देह ही नहीं। आठ ब्राह्मणों को जो लिखकर इस स्तोत्र को देते हैं उन्हें भगवान् गणपति सिद्धि निष्फला नहीं हो इसका वर देते हैं।

श्रीमयूरेश्वरस्तोत्रम्

सर्वे उचुः ।

परब्रह्मरूपं चिदानन्दरूपं परेशं सुरेशं गुणाब्धिं गुणेशम् ।
गुणातीतमीशं मयूरेशवन्द्यं गणेशं नताःस्मो नताःस्मो नताःस्मः ॥
जगद्वन्द्यमेकं पराकारमेकं गुणानाम्परं कारणं निर्विकल्पम् ।
जगत्पालकं हारकं तारकन्तं मयूरेशवन्द्यं नताःस्मो० ॥
महादेवसुनुं महादैत्यनाशं नताः पूरुषं सर्वदा विघ्ननाशम् ।
सदा भक्तपोषं परं ज्ञानकोषम् मयूरेशवन्द्यं नताःस्मो० ॥
अनादिं गुणादिं सुरादिं शिवायाः महात्तोषदं सर्वदा सर्ववन्द्यम् ।
सुरार्यन्तकं भुक्तिमुक्तिप्रदन्तं मयूरेशवन्द्यं नताःस्तो नताःस्मः ॥

सभी बोले—परब्रह्मरूप चिदानन्दरूप, परेश, सुरेश, गुणों के समुद्र, गुणों के अधिपति, गुणातीत, ईश मयूरेशवन्द्य श्रीगणेश को हम विनयावनत हो प्रणाम करते हैं।

जगद्वन्द्य ; एक अद्वितीय, पराकार, अपूर्व (सबसे आदि) सम्पूर्ण त्रिगुणों के सूक्ष्मकारण, निर्विकल्प, सृष्टि के पालक, हारक और तारक भगवान् वन्दनीय मयूरेश को हम प्रणति करते हैं।

महादेवजी के पुत्र, महादैत्य का नाश करनेवाले सदा जिन महापुरुष विघ्न-नाश को सभी प्रणाम करते हैं, उन भक्तों पर सदा अकारण कृपा करनेवाले अतीव ज्ञान के खजाने वन्दनीय चरण मयूरेश को हम प्रणाम करते हैं।

अनादि, गुणादि, सुरादि, माता पार्वती को पूर्ण आनन्द देनेवाले सर्वदा सब के वन्दनीय, दैत्यों का नाश करनेवाले, भुक्ति और मुक्ति देनेवाले मयूरेशवन्द्य को नति करते हैं।

परं मायिनं मायिनामप्यगम्यं मुनिध्येयमाकाशकल्पं जनेशं ।
असंख्यावतारं निजाज्ञाननाशं मयूरेशवन्द्यं नताःस्मो नताःस्मः ॥
अनेकक्रियाकारकं श्रुत्यगम्यं त्रयीबोधितानेककर्मादिबीजम् ।
क्रियासिद्धिहेतुं सुरेन्द्रादिसेव्यं मयूरेशवन्द्यं नताःस्मो नताःस्मः ॥
महाकालरूपं निमेषादिरूपं कलाकल्परूपं सदागम्यरूपं ।
जलज्ञानहेतुं नृणां सिद्धिदं तं मयूरेशवन्द्यं नताःस्मो नताःस्मः ॥
महेशादिदेवैः सदाध्येयपादं सदा रक्षकं तत्पदानां हतारिम् ।
मुदा कामरूपं कृपावारिधिं तं मयूरेशवन्द्यं नताःस्मो नताःस्मः ॥

अद्वितीय, माया के अधिपति, परन्तु मायावी लोगों के द्वारा नहीं जाने गये, ऋषि-मुनियों के ध्यान करने योग्य, आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त, जनेश, असंख्य अवतारवाले, सभी के अज्ञान को तत्काल मिटानेवाले, मयूरेश पादकमल को हम प्रणाम करते हैं ।

अनेक क्रियाओं के कारक (करनेवाले), वेदों के भी अगम्य (न जाने गये) फिर भी त्रयी से बताये गये, जितने भी कर्म, अकर्म विकर्मादि हैं उनके आदि मूलकारण, क्रियासिद्धि के हेतु, सुरेन्द्रादि से वन्दित मयूरेशवन्द्य को प्रणाम है, प्रणाम है, प्रणाम है ।

भगवान् महाकाल के साक्षात् रूप, निमेषादि स्वरूप, कलाओं के समूहरूप सदा अगम्य ही बने हुए, जलमय विष्णुतत्त्व के ज्ञान के कारण, मनुष्यों को सिद्धि देनेवाले श्री मयूरेश्वर को प्रणाम है ।

महेशादि त्रिमूर्तियां जिन्हें सदा ध्यानमग्न हो स्मरण करते हैं उनके चरणों में भक्ति करनेवालों के सारे शत्रुओं का नाश करनेवाले, अत्यन्त प्रसन्न हो, कामरूप हो सर्व कामना पूर्ण करनेवाले, कृपा के विशाल समुद्र उन मयूरेशवन्द्य गणपति को प्रणाम है।

सदा भक्तिं नाथे प्रणयपरमानन्द सुखदो,
यतस्त्वं लोकानां परमकरुणामाशु तनुषे।
षडूर्मीणां वेगं सुरवरा! विनाशं नय विभो!
ततो भक्तिः श्लाघ्या तव भजनतोऽनन्यसुखदात्॥
किमस्माभिःस्तोत्रं सकलसुरतापालक विभो!
विधेयं विश्वात्मन्नगणितगुणानामधिप ते।
न सङ्ख्याता भूमिस्तव गुणगणानां त्रिभुवने,
न रूपाणां देव! प्रकटय कृपां नोऽसुरहते!॥
मयूरेशं नमस्कृत्य ततो देवोऽब्रवीच्च तान्।
य इदं पठते स्तोत्रं स कामाँल्लभतेऽखिलान्॥

हे भगवान्! आप प्रेमस्वरूप परम आनन्द सुख को देनेवाले हैं, सभी लो पर आप शीघ्र ही परम करुणा करते हैं। मन, शरीर और आत्मा के कषाय छः ऊर्मियों के (वेग को) हे सुरश्रेष्ठ! आप विनाश करें तब अनन्य सुख देने आपके भजन से श्लाघ्या (महनीय) भक्ति का उदय होने से परम कल्याण हो

हे सम्पूर्ण देवगण के गुण एवं धर्मों के रक्षक प्रभो! विश्वात्मन्! अग गुणों के अधिपते! हमारे स्तोत्र से क्या अर्थात् आपकी स्तुति एवं आपके गुण इन स्तोत्रों से शक्य नहीं। सम्पूर्ण त्रिभुवन में आपके गुणगणों का एवं रूपों इदमित्थं प्रकार से वर्णन करने योग्य कोई भूमिका नहीं है। अतः दैत्यों को न करनेवाले आप हमपर कृपा कीजिये।

मयूरेश की स्तुति जब देवगण ने नतमस्तक होकर की तो प्रसन्न होकर भगव गणेश ने कहा कि जो कोई व्यक्ति इस स्तोत्र को पढ़ेगा उसे सम्पूर्ण कामना मिले

सर्वत्र जयमाप्नोति मानमायुः श्रियम्पराम् ।
पुत्रवान् धनसम्पन्नो वश्यतामखिलं नयेत् ॥
सहस्रावर्तनात्कारागृहस्थं मोचयेज्जनम् ।
नियुतावर्तनान्मर्त्यो साध्यं यत् साधयेत्क्षणात् ॥
॥ इति श्री गणेशपुराणे उत्तरखण्डे मयूरेश्वर स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

एकदन्तस्तोत्रम्

मदासुरं सुशांतं वै दृष्ट्वा विष्णुमुखाः सुराः ।
भृग्वादयश्चमुनय एकदन्तं समाययुः ॥
प्रणम्य तं प्रपूज्याऽऽदौ पुनस्तन्नेमुरादरात् ।
तुष्टुवुर्हर्षसंयुक्ता एकदन्तं गणेश्वरम् ॥

सब स्थानों में उसकी जय होगी तथा सम्मान, दीर्घायु और अतुल सम्पत्ति का वह अधिकारी होगा । वह पुत्रवान्, धनवान् और सम्पूर्ण जगत् को वश में कर लेगा ।

एक हजार बार पाठ करने से मनुष्य को जेल से छुटकारा हो जायगा । दश हजार तक आवृत्ति करने से जो साध्य है उसे क्षण भर में पूरा कर लेगा ।

गणेशपुराण के उत्तर खण्ड में मयूरेश स्तोत्र समाप्त ।

एकदन्तस्तोत्र

महादेवाधिदेव गणेश को शान्ति से बैठे देख विष्णु भगवान् को नेता बनाकर देवगण और भृगु आदि मुनिवृन्द एकदन्त की सेवा में उपस्थित हुए । उन्हें सर्वप्रथम प्रणाम कर विधिविधान से विशेषतया पूजा आदि से सन्तुष्ट कर बड़े आदर से विनयावनत दण्डवत् किया और भगवान् एकदन्त की हर्ष से विभोर हो स्तुति करने लगे ।

देवर्षय ऊचुः ।

सदाऽऽत्मरूपं सकलाधिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम् ।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥
अनन्तचिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादिविहीनमाद्यम् ।
विधिप्रकाशस्य धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥
विश्वादिभूतं हृदि योगिनाम्वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम् ।
सदा निरालम्बसमाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥
स्वबिम्बभावेन विलासयुक्तं बिन्दुस्वरूपा रचिता स्वमाया ।
तस्यां स्ववीर्यं प्रददाति यो वै तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥

देवगण और ऋषियों ने कहा—

सदा आत्मरूप सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त अमायी सोऽहं स्वरूप अचिन्त्य बो[illegible] अनादि, मध्य और अन्तहीन अद्वितीय एकदन्त गणेश की हम शरण में जाते हैं।

अनन्त चिद्रूपमय गणेश, अभेद और भेद से रहित, आद्यदेव, विधिप्रकाश[illegible] धारण करनेवाले सम्पूर्ण विश्व के अपने ही बुद्धि के स्थान उन गणेश एकदन्त[illegible] शरण में जाते हैं।

विश्वादि भूत, योगियों के हृदय में प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होनेवाले, एक (जि[illegible] ऊँचा और नहीं) सदा निरालम्ब समाधि से जानने योग्य भगवान् गणपति[illegible] हम शरण में होते हैं।

अपनी मूर्तिमात्र से शोभायुक्त अपनी माया को विन्दुस्वरूपा बनानेवा[illegible] जिससे सृष्टि का निर्माण स्थिति और लय क्रमिक रूप से चलता है उसमें अप[illegible] वीर्य का आप ही आधान कर सर्वशक्तिसम्पन्न बनानेवाले, उन श्रीगणेश एकद[illegible] की शरण में जाते हैं।

त्वदीयवीर्येण समर्थभूता माया तया संरचितं च विश्वम् ।
नादात्मकं ह्यात्मतया प्रतीतं तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥
त्वदीयसत्ताधरमेकदन्तं गणेशमेकं त्रयबोधितारम् ।
सेवन्त आपुस्तमजं त्रिसंस्थास्तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥
ततस्त्वया प्रेरित एव नादस्तेनेदमेवं रचितं जगद्वै ।
आनन्दरूपं समभावसंस्थं तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥
तदेव विश्वं कृपया तवैव सम्भूतमाद्यं तमसा विभान्तम् ।
अनेकरूपं ह्यजमेकभूतं तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥

आपकी शक्ति से समर्थ हुई माया से सम्पूर्ण संसार रचा गया है, नादात्मक होनेपर विवर्तरूप (अतत्त्व से अन्यथा मालूम होना ; जैसे सीपी में चाँदी का आभास होता है) से आत्मतया मालूम होनेवाले एकदन्त गणपति की शरण में हम जाते हैं ।

आपकी सत्ता को धारण करनेवाले एकदन्त, गणेश, एवं एक में ही त्रिमूर्ति को बोध करानेवाले उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली शक्तियां आपको भजती हुईं आपके ही स्वरूप को प्राप्त हो जाती हैं, अतः आप एकदन्त की हम शरणमें जाते हैं ।

आप ही के द्वारा प्रेरित नादब्रह्म से शब्द के नामरूप व्यवहारों की सृष्टि रचना हुई है, आप आनन्दरूप एवं समभाव में स्थित हैं हम एकदन्त आपकी शरण में जाते हैं ।

यह विश्व आप ही के कृपाकटाक्ष से उत्पन्न हुआ और तमोभूत होकर भी प्रकाशित होता है । आप अनेक रूप, अज और एक भूत हैं हम उन सब आपकी शरण में जाते हैं ।

ततस्त्वया प्रेरितमेव तेन सृष्टं सुसूक्ष्मं जगदेकसंस्थम्।
सत्त्वात्मकं श्वेतमनन्तमाद्यं तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥
तदेव स्वप्नं तपसा गणेश ! संसिद्धिरूपं विविधं बभूव।
सदैकरूपं कृपया तवाऽपि तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥
सम्प्रेरितं तच्च त्वया हृदिस्थं यथा सुसृष्टं जगदंशरूपम्।
तेनैव जाग्रन्मयमप्रमेयं तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥
जाग्रत्स्वरूपं रजसा विभातं विलोकितं तत्कृपया यदैव।
तदा विभिन्नं भवत्येकरूपम् तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥

फिर आपसे प्रेरित नादब्रह्म की मातृकाओं से सुसूक्ष्मतत्त्व जिसकी स[illegible] जगत् में परिलक्षित होती है इस विश्व का प्रपञ्च हुआ। आप सृष्टि के पाल[illegible] सत्त्वात्मक अतः श्वेत और अनन्तस्वरूप से व्यापक और आद्य हैं हम एक[illegible] आपकी शरण में जाते हैं।

'एकोऽहं बहुस्याम्' का स्वप्न ही तपस्या से गणेश सिद्धियों सहित विविध[illegible] में आविर्भूत हुआ परन्तु यह सब कुछ आपकी कृपाकटाक्ष से ही शक्य हु[illegible] अतः आप एकदन्त की हम शरण में जाते हैं।

आप ही ने जगत की उत्पत्ति के लिये विष्णु के कमलनाल स्थित ब्रह्मा[illegible] प्रेरणा दी जिसने आपके अंशरूप जगत् को बनाया, उसीसे जाग्रन्मय अतः अप्र[illegible] श्री गणेश एकदन्त की हम शरण में जाते हैं।

जाग्रत्स्वरूप ही रजोगुण से प्रकाशित हो नानारूपों में विभक्त हो[illegible] हुआ आपके रूप में लीन हो गया ऐसे अविनाशी एकदन्त की हम शरण[illegible] जाते हैं।

एवञ्च सृष्ट्वा प्रकृतिस्वभावात्तदन्तरे त्वञ्च विभासि नित्यम् ।
बुद्धिप्रदाता गणनाथ एकस्तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥

त्वदाऽऽज्ञया भान्ति ग्रहाश्च सर्वे नक्षत्ररूपाणि विभान्ति खे वै ।
आधारहीनानि त्वया धृतानि तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥

त्वदाऽऽज्ञया सृष्टिकरो विधाता त्वदाऽऽज्ञया पालक एव विष्णुः ।
त्वदाऽऽज्ञया संहरको हरोऽपि तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥

यदाऽऽज्ञयाभूर्जलमध्यसंस्था यदाऽऽज्ञयाऽऽपः प्रवहन्ति नद्यः ।
सीमां सदा रक्षति वै समुद्रं तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥

इस प्रकार प्रकृतिगत स्वभाव द्वारा सृष्टि की रचना होनेपर भी सदैव आप उसमें व्याप्त दीखते हैं आप ही सम्पूर्ण प्राणिमात्र को सत्कर्म करने की प्रेरणा के लिये बुद्धि देते हैं, आपकी हम शरण में जाते हैं ।

आकाश में आपकी आज्ञा से ग्रह और नक्षत्र प्रकाशित व शोभित होते हैं ये गुरुत्वाकर्षण द्वारा आधारहीन होनेपर भी आपके द्वारा धारण किये हुए हैं आप एकदन्त की हम शरण में जाते हैं ।

आपकी आज्ञा से ब्रह्मा सृष्टि को रचनेवाले बने, आपकी आज्ञा से ही विष्णु पालक हैं, आपकी आज्ञा से शंकर संहारलीला करते हैं, आपके गुण-वैभवसम्पन्न एकदन्त रूप की हम शरण में जाते हैं ।

जिनकी आज्ञा से अपने चारों ओर जल होनेपर भी पृथ्वी निरापद स्थित है जनकी आज्ञा से नदियां समुद्र में बहती है एवं समुद्र जिनकी आज्ञा से सीमा (मर्यादा) को बांधे हुए हैं उन गणपति एकदन्त की हम शरण में हैं ।

यदाऽऽज्ञया देवगणो दिविस्थो ददाति वै कर्मफलानि नित्यं।
यदाऽऽज्ञया शैलगणोऽचलो वै तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः॥

यदाऽऽज्ञया शेष इलाधरो वै यदाऽऽज्ञया मोहप्रदश्च कामः।
यदाऽऽज्ञया कालधरोऽर्यमा च तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः॥

यदाऽऽज्ञया वाति विभाति वायुर्यदाज्ञयाऽग्निर्जठरादिसंस्थः।
यदाऽऽज्ञया वै सचराचरं च तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः॥

सर्वान्तरे संस्थितमेकगूढं यदाऽऽज्ञया सर्वमिदं विभाति।
अनन्तरूपं हृदिबोधकम्वै तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः॥

जिनकी आज्ञा से स्वर्ग स्थित देवगण अपने-अपने कर्मफलों को नित्यदे एवं पर्वत अचल हैं, उन गणेश एकदन्त की हम शरण में जाते हैं।

जिनकी आज्ञा से शेषनाग पृथ्वी को धारण करते हैं, कामदेव संसा अपनी मोहक शक्ति का प्रसार करता है और सूर्य कालधर हैं, उन एकदन्त शरण में जाते हैं।

जिनकी आज्ञा से हवा बहती है और जठरादि अग्नि रहकर शरीर के चालन में पूर्ण सहायता देती है। जिनकी आज्ञामात्र से यह दीखनेवाला स्थ जङ्गम संसार है, उन भगवान् एकदन्त की हम शरण में जाते हैं।

सभी के अन्तरात्मा में स्थित, एक गूढ़ और जिसकी आज्ञा से यह स जगत् प्रकाशित होता है, उन अनन्तरूपधारी, हृदय में बोध करानेवाले, श्री एक की हम शरण में जाते हैं।

यं योगिनो योगबलेन साध्यं कुर्वन्ति तं कः स्तवनेन स्तौति ।
अतः प्रणामेन सुसिद्धिदोऽस्तु तमेकदन्तं शरणम्व्रजामः ॥

गृत्समद उवाच ।

एवं स्तुत्वा तु प्रह्लाद ! देवाश्च मुनयश्च वै ।
तूष्णीम्भावं प्रपद्यैव ननृतुर्हर्षसंयुताः ॥
स तानुवाच प्रीतात्मा ह्येकदन्तः स्तवेन वै ।
जगाद तान् महाभागान्देवर्षीन्भक्तवत्सलः ॥

एकदन्त उवाच ।

प्रसन्नोऽस्मि च स्तोत्रेण सुराः सर्षिगणाःकिल ।
वृणुध्वं वरदोऽहं वो दास्यामि मनसीप्सितम् ॥

जो भगवान् योगीजनों द्वारा योगबल से अन्तश्चक्षुओं से साध्य होते हैं उनकी इन बन्धे हुए अक्षरों के स्तवन से कौन स्तुति कर सकता है अर्थात् कोई नहीं। अतः आप प्रणाम करने से ही सब सिद्धियों को देनेवाले हैं, हम आपकी शरण में आये हैं।

गृत्समद बोले—हे प्रह्लाद ! देवता और मुनिगण इस प्रकार गणेशजी की स्तुति कर शान्त होकर मौन हो गये तथा आनन्द पुलकित हर्षविभोर होकर नाचने लगे।

भक्तवत्सल भगवान् एकदन्त ने इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर देवता और ऋषियों को इस प्रकार कहा।

हे ऋषिगण समेत देवतावृन्द ! मैं निश्चय ही आपके स्तोत्र से प्रसन्न हूं, आप वर मांगिये आपको मनोवाञ्छित दूंगा।

भवत्कृतं मदीयंवै स्तोत्रम्प्रीतिप्रदम्मम ।
भविष्यति न सन्देहः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥
यं यमिच्छति तं तं वै दास्यामि स्तोत्रपाठतः ।
पुत्रपौत्रादिकं सर्वं लभते धनधान्यकम् ॥
गजाश्वादिकमत्यन्तं राज्यभोगं लभेद्ध्रुवम् ।
भुक्तिं मुक्तिञ्च योगम्वै लभते शान्तिदायकम् ॥
मारणोच्चाटनादीनि राज्यबन्धादिकं च यत् ।
पठतां शृण्वतां नृणां भवेच्च बन्धहीनता ॥
एकविंशतिवारञ्च श्लोकांश्चैवैकविंशतिम् ।
पठते नित्यमेवञ्च दिनानि त्वेकविंशतिम् ॥

आपके द्वारा किया गया यह स्तोत्र मेरे लिये प्रीतिकारक है अतः इसमें सन्देह नहीं कि यह अवश्य ही सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाला होगा।

जिस-जिस वस्तु की जो मनुष्य स्तोत्र के पाठ से कामना करेगा उसे वस्तु मैं दूंगा। पुत्र पौत्र आदि धनधान्य सभी कुछ वह प्राप्त करेगा।

हाथी, घोड़े आदि प्रभूत मात्रा में एवं राज्य का भोग सब उसे मिलेगा, मुक्ति और शान्तिदायक योग का उसे लाभ मिलेगा।

यदि किसी को मारण, मोहन स्तम्भन उच्चाटन आदि और राज्य बन्ध (जेल जाना, कष्ट में पड़ना आदि) कोई भी सङ्कट आवे तो इसके पाठ और सुननेवालों को अवश्य ही छुटकारा मिलेगा।

जो इन २१ श्लोकों का २१ दिन तक प्रतिदिन इक्कीस बार पाठ करे तो सभी दुर्लभ वस्तुएं तीनों लोकों में सुलभ हो जायगी।

न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु वै भवेत् ।
असाध्यं साधयेन्मर्त्यः सर्वत्र विजयी भवेत् ॥

नित्यं यः पठते स्तोत्रं ब्रह्मभूतः स वै नरः ।
तस्य दर्शनतः सर्वे देवाः पूता भवन्ति वै ॥

एवं तस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टा देवतर्षयः ।
ऊचुः करपुटाः सर्वे भक्तियुक्ता गजाननम् ॥

मनुष्य आसाध्य कार्यों को भी साध लेगा और सर्वत्र विजयी होगा ।
जो पुरुष नित्य इस स्तोत्र का पाठ करता है वह ब्रह्मभूत है उसके दर्शन से ही सभी मनुष्य-देवगण पवित्र हो जाते हैं ।

इस प्रकार श्रीगणेश के अभय वचनों को सुनकर देवता तथा ऋषिगण बहुत प्रसन्न हुए और अपने हाथों को जोड़कर भक्तिभाव से नतमस्तक होकर श्रीगजानन से बोले ।

श्रीमहागणपतिस्तोत्रम्

योगं योगविदां विधूतविविधव्यासङ्गशुद्धाशय-
प्रादूर्भूतसुधारसप्रसृमरध्यानास्पदाध्यासिनाम् ।
आनन्दप्लवमानबोधमधुरामोदच्छटामेदुरं
तं भूमानमुपास्महे परिणतं दन्तावलस्यात्मना ॥
तारश्रीपरशक्तिकामवसुधारूपानुगं यं विदु-
स्तस्मै स्तात्प्रणतिर्गणाधिपतये यो रागिणाऽभ्यर्थ्यते ।
आमन्त्र्य प्रथमं वरेति वरदेत्यार्तेन सर्वं जनं
स्वामिन्मे वशमानयेति सततं स्वाहादिभिः पूजितः ॥
कल्लोलाञ्चलचुम्बिताम्बुदतताविक्षुद्रवाम्भोनिधौ
द्वीपे रत्नमये सुरद्रुमवनामोदैकमेदस्विनि ।

वे योगी लोग जिनके सतत अभ्यास से सारे व्यासङ्ग धुल-मिल गये हैं अन्तःकरणशुद्ध होने से उसमें से निकलनेवाले सुधारस के प्रसृत होने से नि ध्यानमग्न रहते हैं उनके योग स्वरूप साध्य आनन्द के अजस्र प्रवाह से ज्ञा विकास की मधुर आमोद की शोभा से जो शोभित हैं उन ब्रह्म के प्रत्यक्ष स्वरूप गजानन के रूप में परिणत महादेव गणपतिं को हम साक्षात्कार उनकी उपासना करते हैं।

सम्पूर्ण पृथ्वी की तारश्री परकशक्तिमय कामरूप सुधारूप के आकार को ध्यानी ध्यान करते हैं, जो रागियों द्वारा गणाधिपति रूप में पूजित हैं और प्रथम वर और वरद नाम से आर्तजन द्वारा सब को वश में करने के लिये स्व स्वधादि से पूजे जाते हैं उन गणेश का ध्यान करते हैं।

भगवान् गणपति ईख के रसवाले समुद्र जहां चञ्चल जल की लहरें ट खाती हैं उसके बीच में रत्नमय द्वीप में जहां कल्पद्रुम की सुगन्ध फैली हुई है औ

मूले कल्पतरोर्महामणिमये पीठऽक्षराम्भोरुहे
 षट्कोणाकलितत्रिकोणरचनासत्कीर्णकेऽमुं भजे ॥
चक्रप्रासरसालकार्मुकगदासद्बीज पूरद्विज-
 व्रीह्यग्रोत्पलपाशपङ्कजकरं शुण्डाग्रजाग्रद्घटम् ।
आश्लिष्टं प्रियया सरोजकरया रत्नस्फुरद्भूषया
 माणिक्यप्रतिमं महागणपतिं विश्वेशमाशास्महे ॥
दानाम्भःपरिमेदुरप्रसृमरव्यालम्बिरोलम्बभृत्
 सिन्दूरारुणगण्डमण्डलयुगव्याजात्प्रशस्तिद्वयम् ।
त्रैलोक्येष्टविधानर्णसुभगं यः पद्मरागोपमं
 धत्ते स श्रियमातनोतु सततं देवो गणानाम्पतिः ॥

[म]हामणियों से खचित ज़ो अक्षराम्भोरुह षट्कोण के मध्य त्रिकोण से युक्त कल्पतरु [के] मूल में बिराजे हुए हैं उन गणपति का हम ध्यान करते हैं।

चक्र, प्रास, रसाल, कार्मुक, गदा, बिजौरा, व्रीहि, अग्रोत्पल और पाश हाथ में [ध]ारण किये हुए हैं सूण्ड के अग्रभाग में घट लिये हैं। हाथ में कमल लिये हुए [स]ुन्दर रत्नों से सुसज्जित ऋद्धि-सिद्धि के साथ महागणपति जो शोभा में माणिक्य [क]ो भी तिरस्कृत करते हैं उन विश्वेश का हम स्मरण करते हैं।

उनके कपोलों से जो मद का जल टपकता है उससे लम्बी रेखा-सी खिंच गई [है] और दोनों गण्डस्थल में सिन्दूर का लाल रंग अत्यन्त शोभा देता है। त्रैलोक्य [क]ी इष्टसिद्धि के विधान के लिये सुन्दर आकृति और पद्मराग के समान कान्ति-[व]ाले भगवान् गणेश सतत लक्ष्मी की वृद्धि करें।

भ्राम्यन्मन्दरघूर्णनापरवशक्षीराब्धिवीचिच्छटा-
सच्छायाश्चलचामरव्यतिकरश्रीगर्वसर्वङ्कषाः ।
दिक्कान्ताघनसारचन्दनरसासाराश्रयन्तां मनः
स्वच्छन्दप्रसरप्रलिप्तवियतो हेरम्बदन्तत्त्विषः ॥

मुक्ताजालकरम्बितप्रविकसन्माणिक्यपुञ्जच्छटा
कान्ताः कम्बुकदम्बचुम्बितवनाभोगप्रवालोपमाः ।
ज्योत्स्नापूरतरङ्गमन्थरतरत्सन्ध्यावयस्याश्चिरं
हेरम्बस्य जयन्ति दन्तकिरणाकीर्णाःशरीरत्विषः ॥

देवताओं और दैत्यों ने जब मन्दराचल से समुद्र-मन्थन किया तो पर्वत के हि से समुद्र की प्रचण्ड लहरें एक के ऊपर एक चलने लगी और बहुत सुन्दर दी लगी और आपके दोनों ओर जो चँवर डुल रहे हैं उसके वातावरण से श्रीग भी उन्होंने सर्वङ्कष (तुच्छ) बना दिया। दिशारूपी कान्ताओं ने आपके श घनसार चन्दन इसके सार को लगाकर अपनी तरफ सब का मन खींच लि आपकी स्वच्छन्द सर्वत्र प्रसृत दन्तों की शोभा सदा शुभमङ्गल करे।

भगवान् गणेशजी के शरीर की शोभा सर्वोत्कर्षेण जगत्कल्याणकारिणी वह मोतियों के जाल से गुंथे हुए विकसित माणिक्य समूहों की छटा को धा किये हुए हैं। कम्बुप्रदेश में फैली हुई होने से वनप्रदेश में प्रवाल (मूंगा) की स शोभावाली बनी हैं अपनी प्रकाशकौमुदी से सम्पूर्ण सन्ध्या के मन्थरगति (धीरे फैलनेवाले अन्धकार को इससे हटा दिया है ऐसे भगवान् गणेश के दन्तों किरण से आकीर्ण सुन्दर शरीर की शोभा उत्कर्षेण विजयी हो।

शुण्डाग्राकलितेन हेमकलशेनावर्जितेन क्षर-
　　न्नानारत्नचयेन साधकजनान् सम्भावयन्कोटिशः ।
दानामोदविनोदलुब्धमधुपप्रोत्सारणाविर्भव-
　　त्कर्णान्दोलनखेलनो विजयते देवो गणग्रामणीः ॥
हेरम्बं प्रणमामि यस्य पुरतः शाण्डिल्यमूले श्रिया
　　बिभ्रत्याम्बुरुहे समं मधुरिपुस्ते शङ्खचक्रे वहन् ।
न्यग्रोधस्य तले सहाद्रिसुतया शम्भुस्तथा दक्षिणे
　　बिभ्राणः परशुं त्रिशूलमितया देव्या धरण्या सह ॥
पश्चात्पिप्पलमाश्रितो रतिपतिर्देवस्य रत्योत्पले
　　बिभ्रत्या सममैक्षवं धनुरिषून्पौष्पान् वहन्पञ्च च ।
वामे चक्रगदाधरः स भगवान्क्रोडः प्रियङ्गोस्तले
　　हस्तोद्यच्छुकशालिमञ्जरिकया देव्या धरण्या सह ॥

अपनी सूण्ड के अग्रभाग में हेम सुवर्ण कलश से जो नाना प्रकार के रत्न नीचे बिखर रहे हैं उनसे कोटिशः साधकजनों पर कृपा करते हुए अपने गण्डस्थल की सुगन्ध की विनोद से लोभी मधुप (भौरों को) अपने बड़े-बड़े कानों से हटाने का कौतुक करनेवाले गणों के अग्रणी भगवान् गणेश विजयी हों ।

भगवान् गणेश के सामने शाण्डिल्य के मूल में भगवती लक्ष्मी के साथ शंख, चक्र धारण किये हुए अम्बुमूल में विष्णु, भगवती पार्वतीजी के साथ भगवान् शंकर बड़ के वृक्ष के नीचे त्रिशूल धारण किये हुए हैं, उनके पीछे पीपल में बैठे हुए रतिपति कामदेव अपने आयुध धनुष व पञ्चबाण लिये वाम भाग में चक्र गदाधारी भगवान् वाराह प्रियङ्गु (वृक्ष) के नीचे हाथ में शुकशालि मञ्जरी से पूर्ण धरणीदेवी के साथ हैं ।

षट्कोणाश्रिषु षट्सु षट्गजमुखाः पाशाङ्कुशाभीवरा-
न्बिभ्राणाः प्रमदासखाःपृथुमहाशोणाश्मपुञ्जत्विषः ।
आमोदः पुरतः प्रमोदसुमुखौ तं चाभितो दुर्मुखः
पश्चात्पार्श्वगतोऽस्य विघ्न इति यो यो विघ्नकर्तेति च ॥

आमोदादिगणेश्वरप्रियतमास्तत्रैव नित्यं स्थिताः
कान्ताश्लेषरसज्ञमन्थरदृशः सिद्धिः समृद्धिस्ततः ।
कान्तिर्यामदनावतीत्यपि तथा कल्पेषु या गीयते
सान्या याऽपि मदद्रवा तदपरा द्राविण्यमूः पूजिताः ॥

आश्लिष्टौ वसुधेत्यथो वसुमती ताभ्यां सितालोहितौ
वर्षन्तौ वसुपार्श्वयोर्विलसतस्तौ शंखपद्मौ निधी ।

षट्कोणों में छै गजमुखोंवाले पाश अङ्कुश अभी और वर को धारण किये स्त्रियां साथ में हैं। खूब पुष्ट महाशोण अश्म जो स्फटिक है उसके समान कान्ति धारी आमोद नामक गण सामने है दोनों ओर प्रमोद एवं सुमुख आस-पास और दुर्मुख पीछे की तरफ और पार्श्व में साक्षात् विघ्न है जो विघ्नकर्ता हैं।

आमोदादि की पंक्तियां भी नित्य वहाँ स्थित हैं। अपने-अपने प्रियतम के सा आश्लेष रस को जानने के कारण उनकी आँखे लज्जावनत हो गई हैं, फिर सि समृद्धि है, मदनावती कान्ति जो कल्पों में प्रसिद्ध है और भी जो मदद्रवा-द्रावि शक्तियां हैं ये सभी पूज्य हैं।

श्वेत और लोहित वर्ण के शंख और पद्म अपनी ओर से वसु(धन)की वर्षा कर र हैं और वसुधा और वसुमती नाम को चरितार्थ कर रहे हैं उनके बाद सारे अ

अङ्गान्यन्वथ मातरश्च परितः शक्रादयोऽब्जाश्रया-
स्ताद्बाह्ये कुलिशादयः परिपतत्कालानलज्योतिषः ॥
इत्थं विष्णु शिवादितत्त्वतनवे श्रीवक्रतुण्डाय
हुंकाराक्षिप्तसमस्तदैत्यपृतनाव्राताय दीप्तत्विषे ।
आनन्दैकरसावबोधलहरीविध्वस्तसर्वोर्मये
सर्वत्र प्रथमानमुग्धमहसे तस्मै परस्मै नमः ॥
सेवाहेवाकिदेवासुरनरनिकरस्फारकोटीरकोटि-
काटिव्याटीकमान द्युमणि सममणिश्रेणिभावेणिकानाम् ।
राजन्नीराजनश्रीसुखचरणनखद्योतविद्योतमानः
श्रेयः स्थेयः स देयान्मम विमलदृशो वन्धुरं वन्धुरास्यः ॥

समेत मातायें देवतागण ब्रह्मा और बाहर कुलिशादि जिनकी कालानल के समान ज्योति हैं वे शोभायमान है।

इस प्रकार विष्णु शिवादि देवों के तत्त्व शरीररूप श्रीवक्रतुण्ड गणेश जो हुंकार से ही समस्त दैत्यों को भगा देते और पूतनादि से रक्षा करते हैं उज्ज्वल आभा-वाले आपके साक्षात्कार से आनन्द एक रस का ही ज्ञान होता है जिससे अन्य सब विक्षेपों का सर्वान्तर्लय होता है सर्वत्र ही जिनका महत्तेज प्रकाशित है उन श्री गणेश के परतत्त्वरूप को हम नमस्कार करते हैं।

सेवा की इच्छा करनेवाले देव, असुर एवं मनुष्य के समूह से विकसित बालों की कान्ति से राजाओं के द्वारा नीराजन करने से शोभित उनके चरणनख की कान्ति अधिकाधिक शोभित हो रही है, ऐसे भगवान् गजानन की विमल दृष्टि में स्थायी श्रेय प्रदान करे।

एतेन प्रकट रहस्यमन्त्रमालागर्भेण स्फुटतरसंविदा स्तवेन ।
यः स्तौति प्रचुरतरं महागणेशं तस्येयं भवति वशंवदा त्रिलोकी॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य श्रीराघवचैतन्यविरचितं महागणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

छन्दोबोधकं गणेशस्तोत्रम्

आर्या—जयति गणेशो देवो हर्ता विघ्नस्य सकलभक्तानाम् ।
अनुरक्तानां लोके सिद्धिप्रद एष विख्यातः ॥

गीतिः—अमलकमलदलनेत्रं शुण्डादण्डेन कमलपुष्पं यः ।
विनिवेशयन्तमास्ये नौमि गणेशं तथाऽनिशं वन्दे ॥

इस भगवान् गणपति के प्रकट रहस्य के मन्त्रमालागर्भित स्फुटभाववाले स्तोत्र से जो महागणेश की स्तुति करता है उसके वश में त्रिलोकी हो जाती है ।

छन्दों का ज्ञान करानेवाला गणेशस्तोत्र

भगवान् गणेशदेव अपने सम्पूर्ण भक्तों के विघ्नों को हरनेवाले हैं और विशेष श्रद्धायुक्त भक्ति करनेवालों के लिये सिद्धि देनेवाले विख्यात हैं आपकी जय हो ।

विमलकमल के दल की शोभावाले नेत्रोंवाले अपनी शुण्डादण्ड से कमल पुष्प को अपने मुँह में रखते हुए श्री भगवान् गणेश को नमस्कार करता हूं सतत उनका वन्दना करता हूं ।

उपगीतिः-देवासुरनरवृन्दैर्वन्दितपादाम्बुजः शीघ्रम् ।
सन्तनुते योऽभीष्टं तेन समः कोऽन्यदेवोऽस्ति ।।

अक्षर पंक्तिः—मूषिकपत्रं सिन्धुरवक्त्रम् । भक्तजनानामभीष्टदमीडे ।।

शशिवदना—गणपतिमीशं प्रणतजनानाम् । अभिलषितानि प्रददतमीडे ।।

मदलेखा—प्रश्च्योतन्मदलेखं तं स्तम्बेरमवक्त्रम् ।
पूज्यं सर्वजनानां सम्पत्त्यायभिवन्दे (?) ।।

पद्यम्— महागणपतिर्गौरी गिरीशकुलनायकः ।
सर्वैः सर्वत्र सम्पूज्यः सदा विजयतेतराम् ।।

माणवकाक्रीडनकम्—यच्चरणाम्भोजरजो मूर्ध्नि निधाय त्रिदशाः ।
सिद्धमनोऽभीष्टवरास्तं शिरसाऽहं विनमे ।।

जिनके पादपद्मों में देव, असुर और मनुष्य सभी शीघ्र विनयावनत होते हैं जो अभीष्टकामनाओं की पूर्ति करते हैं उनके समान औढरदानी (खुले मन से देने वाले) अन्य देव नहीं हैं ।

मूषिक वाहनवाले हाथी के मुखवाले भक्तजनों को अभीष्ट देनेवाले भगवान् गणराज को मैं नति करता हूं ।

अपने सामने प्रणतजनों का सब हित करनेवाले गणपति भगवान् हैं और अभिलषित कामनाओं की पूर्ति करते हैं उन्हें प्रणाम है ।

जिनके कपोलों से दानवारि (मद) टपकता है हाथी के मुखवाले हैं सब जनों के पूज्य हैं उन्हें मैं सकल सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये अभिवादन करता हूं ।

श्रीमहागणपति, गौरी और शंकर के कुल के नायक हैं सर्वत्र सभी के द्वारा पूजा के योग्य वह भगवान् गणपति सदा उत्कृष्टता से विजय करते हैं ।

जिनके चरणों की रज (धूलि) को लेकर अपने सिर में धारण करने से देवता लोग सिद्ध मनोरथ होते हैं उन गणेशदेव को मैं शिर से नमस्कार करता हूं ।

नगस्वरूपिणी—
नमद्विभूतिदायकं समस्तविघ्नदायकं स्वरक्तभक्तपायकं नमाम्यहं विनायकम्
विद्युन्माला—उद्यद्भानूद्गच्छद्भाभिस्तुल्याभा यद्गोधेर्भासः १।
विघ्नध्वान्तक्षोदे दक्षा हेरम्बोऽसौ पातात्पातात् ॥
चम्पकमाला—देवगणालीमूर्ध्निगतोद्यन्मणिमध्याभाभिरलम् ।
योऽविरतं नीराजनया भाति स नाथो मे गण्यः ॥
मणिमध्या—चम्पकमाला श्रीयुतभाभिर्यस्य शरीरं भाति जरांसः १।
विघ्नतमोघ्नोऽसौ मम भूयाच्छ्रीगणनाथो मूषिकयानः ॥
हंसी—विभ्राजद्भिश्चरणकुसुमैः पूर्णर्क्षेशैर्दशभिरमलैः ।
संस्मर्तॄणां दिशति नियतं ध्वान्तध्वंसं जयति गणपः ॥

अपने भक्तों को विभूति देनेवाले, विघ्नों को उपस्थित करनेवाले, अपने भक्तों पर कृपा करनेवाले विनायक को मैं प्रणाम करता हूं।

उदित सूर्य की किरणों के समान कान्ति से सूर्य सदृश विघ्नों को नष्ट करने में समर्थ श्री हेरम्ब हमें पतन से बचावे।

जिनको देवतागण अपने-अपने नीराजन आरार्तिक्य से नतमस्तक हो अपने शिर की मणियों की शोभा से भूषित करते हैं उन भगवान् गणनाथ का मैं ध्यान करता हूं। चम्पक पुष्पों की माला जिनके शरीर पर श्रीयुत शोभावाली होती है, विघ्नों के अन्धकार को तत्काल हटाते हैं, ऐसे मूषकवाहन श्रीगणेश मेरे लिये मङ्गलमय शुभोदर्क का विधान करें।

दशों दिशाओं में प्रथित चन्द्रमाओं की विमल कान्ति की समता से अपने चरणकुसुमों से दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए और अपने भक्तों के अज्ञानान्धकार को नियत ध्वंस (हरण) करनेवाले गणपति सर्वोत्कर्षेण विराजमान हैं।

शालिनी—

विद्वद्वृन्दैर्गीयमानाच्छकीर्तिः शुण्डादण्डभ्राजदाश्चर्यमूर्तिः ।
विच्छिन्नोद्यद्विघ्नसन्तानजूर्तिर्मान्यातस्मात्सर्वकामस्य पूर्तिः ॥

दोधकम्—

मूषकवाहनमीश्वरपुत्रं मोदकशोभितसुन्दरवक्त्रम् ।
भालगतामलवर्णविचित्रं नौम्यनिशं ननु विघ्नलवित्रम् ॥

इन्द्रवज्रा—

सिन्दूरपूरारुणभालदेशो नागोपवीताद्भुतभातवेशः ।
तुन्दोल्लसच्चारुपिचण्डदेशः शूर्पाभकर्णोड्डयिताघकेशः ॥

उपजातिः—

विलाससन्तुष्यदुमामहेशो नागोपवीताद्भुतभातवेशः ।
तुन्दोल्लसच्चारुपिचण्डदेशः शूर्पाभकर्णोड्डयिताघकेशः ॥

विद्वानों ने जिनकी विमलकीर्ति को गाया है, जिनकी मूर्ति सूण्ड के दण्ड से अद्भुत शोभित होती है। अपने तेज से उठनेवाले विघ्नों को तत्काल नष्ट करनेवाले, इसीलिये सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करनेवाले श्रीगणेशजी हम सब के मान्य हैं।

जिनके मूषकवाहन हैं, भगवान् शंकर के जो पुत्र हैं, मुँह में मोदक शोभित है, उनके मस्तक पर विशुद्ध रङ्ग से विचित्र शोभा हो गई है, ऐसे विघ्नों को दलनेवाले श्रीगणेश को रात-दिन प्रणाम करता हूं।

सिन्दूर से भालदेश जिनका लाल है, नागों की जनेऊ धारण करने से अद्भुत शोभापूर्ण शरीरवाले, बढ़ी हुई तुन्द से विचण्डदेश (पेट से नीचे जङ्घा का भाग) शोभित है शूर्प (छज्जे) के समान कानों से पापों को जिन्होंने उड़ा दिया है ऐसे अपूर्व भगवान् श्रीगणेशजी हैं। अपनी बाललीलाओं से जिनने भगवती पार्वती और शंकर भगवान् को प्रसन्न कर दिया है। आगे स्पष्ट है—

सिन्दूरपूरारुणभालदेशो नागोपवीताद्भुतभातवेशः ।
मनुष्ययक्षोरगदेवतेशः शूर्पाभकर्णोड्डयिताघकेशः ।।
विलाससन्तुष्यदुमामहेशो नागोपवीताद्भुतभातवेशः ।
मनुष्ययक्षोरगदेवतेशः शूर्पाभकर्णोड्डयिताघकेशः ।।
सिन्दूरपूरारुणभालदेशो विधूतविघ्नावलिसन्निवेशः ।
मनुष्ययक्षोरगदेवतेशः शूर्पाभकर्णोड्डयिताघकेशः ।।
विलाससन्तुष्यदुमामहेशो विधूतविघ्नावलिसन्निवेशः ।
मनुष्ययक्षोरगदेवतेशः शूर्पाभकर्णोड्डयिताघकेशः ।।
विलाससन्तुष्यदुमामहेशो नागोपवीताद्भुतभातवेशः ।
तुन्दोल्लसच्चारुपिचण्डदेशः श्रुतौ श्रुतो यो हि परावरेशः ।।
विलाससन्तुष्यदुमामहेशो नागोपवीताद्भुतभातवेशः ।
तुन्दोल्लसच्चारुपिचण्डदेशः श्रुतौ श्रुतो यो हि परावरेशः ।।
सिन्दूरपूरारुणभालदेशो विधूतविघ्नावलिसन्निवेशः । तुन्दो०।।
विलाससन्तुष्यदुमामहेशो विधूतविघ्नावलिसन्निवेशः । तुन्दो०।।

मनुष्य, यक्ष, रक्ष, साँप, और देवताओं के स्वामी भगवान् गणपति हैं। अर्थ स्पष्ट है।

उपजाति छन्द के संस्कृत भाषा में कई भेद होने से कवि ने इसे विभिन्न के स्थानान्तरण से प्रशस्त किया है।

श्लोक १७ से श्लोक २६ तक एक-सा ही अर्थ है केवल शब्दों को छन्दभेद आगे-पीछे रक्खा गया है।

वेदों में जिन्हें परावरेश नाम से गाया गया है ऐसे श्रीगणेश हैं।

सिन्दूरपूरारुणभालदेशो नागोपवीताद्भुतभातवेशः ।
मनुष्ययक्षोरगदेवतेशः श्रुतौ श्रुतो यो हि परावरेशः ॥
विलाससन्तुष्यदुमामहेशो नागोपवीताद्भुत भातवेशः ।
मनुष्ययक्षोरगदेवतेशः श्रुतौ श्रुतो यो हि परावरेशः ॥
सिन्दूरपूरारुणभालदेशो विधूतविघ्नावलिसन्निदेशः ।
मनुष्यरक्षोरगदेवतेशः श्रुतौ श्रुतो यो हि परावरेशः ॥

उपेन्द्रवज्रा—

विलाससन्तुष्यदुमामहेशो विधूतविघ्नावलिसन्निवेशः ।
मनुष्ययक्षोरगदेवतेशः श्रुतौ श्रुतो यो हि परावरेशः ॥

रथोद्धता—

पर्शुपाणिरखिलेष्टदायको विघ्नवारणहरो विनायकः ।
वज्रदन्तगतिरेकदन्तको मां प्रसीदतु सदापदन्तकः ॥

स्वागता—

विघ्नवृन्दतमसां दिननाथः पापपावकशमेऽम्बरपाथः ।
सर्वालनकहितसद्गुणनाथः सर्वदा विजयते गणनाथः ॥

हाथ में परशु धारण किये हुए सम्पूर्ण इष्टकामनाओं को पूर्ण करनेवाले विघ्नों के समूह को नष्ट करनेवाले विनायक भगवान् वज्रदन्त गति एकदन्तधारी मेरे ऊपर कृपा करें जो सभी आपत्तियों को तुरन्त नष्ट कर देते हैं ।

विघ्नों के समूहरूपी अन्धकार के लिये साक्षात् सूर्यस्वरूप, पापरूपी पावक के शमन करने के लिये मेघरूप, एवं सम्पूर्ण संसार के हित करने के लिये सद्गुणों के अधिपति श्रीगणनाथ सर्वदा विजयी हैं ।

वैश्वदेवी—

विश्वैर्देवैर्यो वन्दिताङ्घ्र्यब्ज युग्मः शुण्डादण्डाग्रे मोदकं चारुगृह्णन्
श्च्योतद्दानालीनगुञ्जद्द्विरेफो रेफारेफाणां सोऽस्ति गुण्यः शरण्यः।

तोटकम्— न वयं गिरिजां न गिरीशपदं विनमे गणये न सुरेन्द्रपदम्।
मद्युक्तगजाननसेवनतः कलये किल सर्वविधं स्वशिवम् ॥

भुजङ्ग प्रयातम्—

यजामो गणेशं भजामो गणेशं जयामो गणेशं वदामो गणेशम्।
सरामो गणेशं स्मरामो गणेशं नमामो गणेशं नमामो गणेशम् ॥

प्रमिताक्षरा—

यदि पद्मिवक्त्रपदपद्मयुगं हृदि चिन्तयेय रुचियुक्तमनाः।
न मनाक्कदान्यविबुधाभजनादकुतोभयस्य मम भीर्भवति ॥

जिनके दोनों चरणकमलों को विश्वेदेव सेवन करते हैं अपनी सूण्ड में सु
मोदक लिये हुए जिनके कपोलों पर मदवारि को लेने के लिये भौरों की पं
गुञ्जार करती है और रेफ-रेफ ही जहाँ शिरस्थानीय है, उन शरण में आये हुए
पालन करनेवाले श्रीगणेशजी से अन्य कौन गुणों के पुञ्ज एवं आश्रय देनेवाले है

न तो हम पार्वती को न भगवान् शंकरजी के चरणों को विशेष महत्त्व देते है
इन्द्र के स्वर्ग को विशेषता देते हैं। मदयुक्त भगवान् गणेशजी के सेवन द्वारा अ
सर्व प्रकार का कल्याण मङ्गल मिले; यही हमारी एकमात्र इच्छा है।

भगवान् गणेश को हम आहुतियों से तृप्त करते हैं, उनका ध्यान करते हैं, उन
जय मनाते हैं, उनके यश का विस्तार करते हैं तथा गुणगान द्वारा उनकी शरण
जाते हैं, उनका स्मरण करते हैं, भगवान् गणेश को बारम्बार नमस्कार है।

यदि हाथी के मुँहवाले श्रीगणेश के चरणकमलों को मैं हृदय में भक्तिपू

द्रुतविलम्बितम्—

गणपतेश्चरणौ करणौ मुदः सुजनताशरणे सततं श्रये ।
स्वभरणौ हरणौ तमसां हृदः प्रणमतां वरणौ सुखसम्पदाम् ॥

हरिणप्लुता—विमलैक्षवभक्षण तोषितोऽभिनवकोमलदौर्विकपूजितः ।
सदयः सततं सदयः सतां विजयते सुरराड्ढि गणाधिपः ॥

इन्द्रवंशा—

प्रत्यूहतूलालिकृशानुसन्निभः श्रेयस्तरुव्याप्तुवदम्बुदप्रभः ।
विश्वेष्टपद्माकरतिग्मदीधितिर्दुष्टौघविध्वंसनकालसंस्थितिः ॥

स्मरण करूं तो मुझे अन्य देवताओं का ध्यान न करते हुए भी किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा अर्थात् भगवान् श्रीगणेश मेरे एकमात्र सेव्य हैं ।

सम्पूर्ण विश्व के आनन्द को करनेवाले श्रीगणपति के दोनों चरणों की सुजनता के आश्रय होने से शरण में जाता हूं। वे मेरे पोषक, अन्धकारों को हटानेवाले और हृदय में भक्तिपूर्वक ध्यान करनेवालों के सुख-सम्पत्ति को देनेवाले हैं ।

विमल इक्षु (ईख) के रस को लेने से सन्तुष्ट, सुन्दर-सुन्दर नई-नई दूब के अङ्कुरों से पूजित, सदैव दया के अवतार और सज्जन पुरुषों पर बिना कारण अपार कृपा करनेवाले देवताओं के अधिपति भगवान् गणाधिराज हैं ।

विघ्नरूपी रूई के ढेर के लिये अग्नि के समान, लोकमङ्गल के लिये कल्पवृक्ष और सभी दिशाओं में मेघों के समान व्याप्त, विश्व के इष्टकामों की पूर्ति के लिये सभी जनों की कामनारूपी कमलों के लिये सूर्य के समान विकसित करनेवाले और दुष्टों के विनाश के लिये कालरूप भगवान् गणेश हैं ।

वंशस्थम्—सदा समस्तैरमरैर्निषेवितो मनोरथास्यैः श्रुतिसूक्तिदेवितः।
क्ररैश्चतुर्भिश्चतुरिष्टदायको विभाति सोऽयं गणराड् विनायकः

प्रभावती—

यस्याङ्घ्रियंजनपरायणा जनाः कुर्वन्ति नैव विबुधान्तराश्रयम्।
सोऽयं मम प्रमथपतेरपत्यकं श्रोता सदा भवतु भवाब्धिपारदः॥

प्रहर्षिणी—

यत्तेजः सकलजगन्निदानभूतं निर्दिष्टं मुनिभिरतिश्रुतिप्रमाणैः।
तल्लीलामनुविदधन्महेशसद्मन्यन्यत्र प्रचरति देहिनामिभास्यः॥

वसन्ततिलका—

ब्रह्माण्डखण्डयुगलानुकृतौ पटीयः कुम्भद्वयं यदयमीशसुतो बिभर्ति
मन्ये सुखस्य जगतः कृतये विपत्तेर्नाशाय चामृतविषैः परिपूरितं तत्

अपने-अपने अभीष्ट मनोरथों की पूर्ति के लिये देवताओं द्वारा श्रद्धाभक्ति
पूजे गये साक्षात् वेद की ऋचाओं से पूजित, अपने चारों भुजाओं से धर्म,
काम और मोक्ष को देनेवाले, ऐसे गणराज विनायक भगवान् शोभित होते हैं

जिनकी स्तुति में परायण होकर लोग दूसरे देवता की शरण में नहीं
ऐसे श्री शंकरजी के पुत्र गणेशजी मेरे लिये इस संसाररूपी समुद्र को पार
वाले सिद्ध हों।

जिनका तेज समस्त जगत् का आदि कारण है इसे अतिपुष्ट श्रुति प्रमाण
मुनिगण ने बताया है, उनकी लीलाओं का भगवान् श्रीमहेश के यहां वि
होता है वही सांसारिक प्राणियों के लिये अनुकरणीय हैं।

ब्रह्माण्ड के दो खण्ड के घड़ों की अनुकृति में विशेषदक्ष जो भगवान् गणेश
कुम्भों (घटों) को लिये हुए हैं, मेरी ऐसी मान्यता है कि संसार के सुख के
और विपत्तियों के नाश के लिये ये अमृत व विष से भरे हैं।

मालिनी—

मदनकदनकर्तुः सूनुरुद्भिन्नपद्मायतदलनयनोऽयं लोककल्याणकर्ता।
जगति न तदृतेऽस्ति ध्यायतः साध्यसिद्ध्यै
प्रमथनपटुरीशः कोटिविघ्नव्रजानाम् ॥

शिखरिणी—

समुज्जृम्भज्जृम्भाप्रकटविकटस्फारलपनो-
च्चलद्गण्डग्रावोद्गतमदनदीनिर्जररवः ।
समन्ताद्गुञ्जद्भिर्मधुकरचयैरावृततनु-
र्गणेशश्चीत्कारैर्विदलितविपत्को विजयते ॥

हरिणी—

विदलितमदासारासक्तभ्रमद्भ्रमरावली
विलुलितलसच्छुण्डादण्डः प्रसन्नमना मनाक् ।

मदन को भस्म करनेवाले भगवान् शंकरजी के पुत्र विकसित कमलदल के समान नेत्रवाले श्रीगणेश लोक-कल्याणकर्ता हैं। संसार में उन्हें छोड़कर दूसरा कोई नहीं जो स्मरण करनेवाले भक्तजनों की इष्टसिद्धि के लिये करोड़ों विघ्नों को भी तत्काल नष्ट करने में समर्थ हो।

अपने से जम्हाई लेते हुए जिनके विशाल मुँह हैं और गण्डस्थल से बराबर बहनेवाला मद विना शब्द किये नदी का रूप प्रकट करता है उसको सूंघने के लिये गण्डस्थल के चारों ओर भौंरे उन्हें घेरे हुए हैं, अपनी चीत्कारों से विपत्तियों को समूल नष्ट करनेवाले भगवान् गणराज की जय हो।

आपके गण्डस्थल के मदवारि को पीने के लिये भ्रमरों की पंक्ति से विलुलित इसीलिये शोभितशुण्डादण्डवाले, सदा प्रसन्नमन, लालनेत्रवाले, सिन्दूर और

अरुणनयनः सिन्दूरेन्दुश्रियोर्जितविश्वसृड्
वितथपरिहरत्सन्ध्याशोभां जयद्द्विरदाननः ॥

पृथ्वी—अपारविषयाम्बुधिप्रमथनोत्थसूक्ष्मक्षण-
प्रणश्वरसुखावलीविलुभितं मनो मेऽधुना ।
विसारि कुसुमस्त्रजे विहितसैवदेवव्रजे (?)
गणेशपदपङ्कजेऽनिशमिदं मिलिन्दायताम् ॥

मन्दाक्रान्ता—
मन्दं मन्दं धरति चरणौ मागमद्भूतलेखे
बुद्ध्वा बुद्ध्वा त्यजति न मितिं माच्युतत्वं स्वभावात् ।
स्मृत्वा स्मृत्वा श्रुतिषु कथितामात्मनः कीर्तिमग्र्यां
पोषं पोषं श्रितजगदयं कुञ्जरास्यो विभाति ॥

इन्दु (चन्द्रमा) की शोभा से सन्ध्याकालीन श्यामायमान हरितिमा शोभा भी फीका करनेवाले श्री गजानन विजयी हों ।

अनगिनत विषयों से पूर्ण संसाररूपी समुद्र के मथन करने से जो सूक्ष्मक्षणस्थ सुख के लिये मेरा मन लोभित हो रहा था आज श्रीगणनायक की शरण में को आकुल हो उठा है । गणेश भगवान् के चरणकमलों में यह भक्तिरूपी कुसुमों माला से छुटा हुआ मन पुष्परूप में अर्पित हो उन्हीं के शरण हो यह मेरी हा इच्छा है ।

धीरे-धीरे गणेश चरण रखते हैं कि कहीं भूतलेखा (विश्वप्रणाली) को व्याघा हो जाय । स्वभाव से अच्युत (कभी न छोड़े जानेवाले अवन्ध्य) वचनों को बर जान-जानकर छोड़ते हैं, श्रुतियों में अपनी अपूर्व कीर्ति को सुन-सु भगवान् श्रीगणेश संसार का कल्याण करते हुए शोभित होते हैं ।

शार्दूलविक्रीड़ितम्—

ब्रह्माण्डाखिलखण्डयुग्मसहजप्रोद्भासि कुम्भद्वयं
ताक्ष्यांक्षामसुपक्षपक्षदलनप्रोल्लासिकर्णद्वयम्(?)।
बिभ्रद्बाहुचतुष्टयं शशिकलाकारं रदं चैकतस्तं
वृन्दारकवृन्दवन्दितपदं श्रीमद्गणेशं भजे ॥

स्रग्धरा—प्रोद्यत्तिग्मांशुरश्मिच्छुरितसरसिजव्रातसुप्रात-
गुञ्जद्रालेम्बैर्विशमान प्रकटकटघटोद्धातभृच्चण्डगण्डः।
शुण्डादण्डप्रसारप्रशमितसृमरस्वीयपक्षान्तरायो
रायो विभ्राजदाया जनयतु जगतामीश्वरः कुञ्जरास्यः॥

चण्डवृष्टिप्रपातोदण्डकः—

वसुशरभुजगेन्दुभिः १९५८ सम्मिते वैक्रमे वत्सरे माघमासे दले श्यामले।
सरसिजतिथौ बुधे वासरे छन्दसां बोधनायात्मभूछन्दसा॥

अखिल ब्रह्माण्ड के अर्धव्यास ही दो खण्ड हुए जो दो घटों के समान शोभित हैं। गरुड़ के अक्षाम सुपक्ष पक्ष को दलन करने के लिये दो कर्णवाले, चारों भुजा-वाले, चन्द्रमा की कला से युक्त दन्तपंक्ति को एक ओर धारण किये हुए देवतावृन्द से वन्दित चरणकमलवाले श्रीगणेशजी का मैं भजन करता हूं।

उदय होनेवाले सूर्य की किरणों से कमलों के खिलने पर प्रातः भ्रमर पंक्ति के गुञ्जार से जिनके प्रचण्ड गण्डस्थल पर विशेष लोभ से शोभा अधिक आई हुई है, अपनी सूण्ड के फैलाने से सम्पूर्ण विघ्नों को प्रशमित (मिटा) कर दिया है ऐसे प्रसिद्ध शोभावाले भगवान् श्रीगणेश संसार का कल्याण करें।

सं० १९५८ विक्रम सम्वत्सर के माघ मास में कृष्णपक्ष की प्रतिपत्तिथि में बुधवार को छन्दों के ज्ञान के लिये अपने ही बनाये छन्दों से अन्य देवगण के

अकृत विबुधमौलिमध्यस्थचण्डांशुरश्मिप्रभाभानुनीराजना ।
महितगणपतेः स्तुति माथुरस्तत्कृपा चण्डवृष्टिप्रयातेन वृद्धिमियात्(?) ॥

॥ इति श्री महागणपतिप्रेरितधिया मालवशुक्लमथुरानाथकृतं
छन्दोबोधकं गणेशस्तोत्रं समाप्तम् ॥

श्रीगजाननस्तोत्रम्

देवर्षय ऊचुः ।

नमस्ते गजवक्त्राय गजाननसुरूपिणे ।
पराशरसुतायैव वत्सलासूनवे नमः ॥
व्यासभ्रात्रे शुकस्यैव पितृव्याय नमो नमः ।
अनादिगणनाथाय स्वानन्दावासिने नमः ॥

मौलिके शिर के मध्य में स्थित प्रचण्ड सूर्य की प्रभा के समान प्रार्थनारूप श्रीग भगवान् की स्तुति श्रीमाथुर ने बनाई। भगवान् अमित महिमाशाली गण इससे प्रसन्न हो कृपारूपी प्रचण्ड वृष्टि के द्वारा प्राणिमात्र की बुद्धि को बढ़ावें।

देवर्षिगण बोले—हे गजमुखवाले गजानन, सुन्दररूपधारी आपको प्रणाम पराशरजी के पुत्र वत्सला के पुत्र आपको नमस्कार है।

व्यास के भाई शुकदेव के चाचा आपको नमोनमः है, अनादिगण के स्वा आप अपने आनन्द में पूर्ण हैं, आपको प्रणाम है।

रजसा सृष्टिकर्त्रे ते सत्त्वतः पालकाय वै।
तमसा सर्वसंहर्त्रे गणेशाय नमो नमः॥

सुकृतेः पुरुषस्याऽपि रूपिणे परमात्मने।
बोधाकाराय वै तुभ्यं केवलाय नमो नमः॥

स्वसंवेद्याय देवाय योगाय गणपाय च।
शान्तिरूपाय तुभ्यं वै नमस्ते ब्रह्मनायक!॥

विनायकाय वीराय गजदैत्यस्यशत्रवे।
मुनिमानसनिष्ठाय मुनीनां पालकाय च॥

देवरक्षाकरायैव विघ्नेशाय नमो नमः।
वक्रतुण्डाय धीराय चैकदन्ताय ते नमः॥

आप रजोगुण से सृष्टि करनेवाले, सत्त्वगुण से पालन करनेवाले, तमोगुण से संहार करनेवाले हैं अतः त्रिमूर्तिरूप गणेश को मैं प्रणाम करता हूं।

धर्मात्मा पुरुष के आप साक्षात् स्वरूप हैं, परमात्मा हैं और बोधाकार केवल स्वरूप आप को प्रणाम है।

स्वसंवेद्य (जिनकी अनुभूति दूसरे को नहीं होती) योगस्वरूप, गणप, शान्ति रूप, ब्रह्मनायक आपको प्रणाम है।

विनायक, वीर, गजदैत्य के शत्रु, मुनियों के मन में स्थित और मुनियों के पालक आपको नमस्कार है।

देवताओं की रक्षा करनेवाले, विघ्नों के स्वामी आपको नमस्कार है। वक्रतुण्ड, धीर, एकदन्त आपको प्रणाम है।

त्वयाऽयं निहतो दैत्यो गजनामा महाबलः ।
ब्रह्माण्डे मृत्युसंहीनो महाश्चर्यं कृतं विभो ॥
हते दैत्येऽधुना कृत्स्नं जगत्सन्तोषमेष्यति ।
स्वाहास्वधायुतं पूर्णं स्वधर्मस्थं भविष्यति ॥
एवमुक्त्वा गणाधीशं सर्वे देवर्षयस्ततः ।
प्रणम्य तूष्णीं भावं ते सम्प्राप्ता विगतज्वराः ।
कर्णौ सम्पीड्य गणपचरणे शिरसो ध्वनिः ।
मधुरः प्रकृतस्तैस्तु तेन तु तुष्टो गजाननः ॥
तानुवाच मदीया ये भक्ताः परमभाविताः ।
तैश्चनित्यं प्रकर्तव्यं भवद्भिर्नमनं यथा ॥

आपने यह गजनायक दैत्य मार दिया ब्रह्माण्ड में आपने इसको मृत्युसं (मारकर) हे विभो बहुत आश्चर्य का काम किया है ।

इस दैत्य के मार दिये जानेपर अब संसार में सन्तोष, सुख और शान्ति लहर बहेगी और सम्पूर्ण लोग स्वाहा-स्वधा से देव-पितरों को तृप्त करेंगे, जनता पूर्ण धर्म में स्थित होगी ।

सभी देवता ऋषिगण इस प्रकार स्तुति कर प्रणाम करते हुए कष्टों से छुटका पाकर शान्त खड़े हो गये ।

सब ने अपने कानों को पकड़ भगवान् गणेश के चरणों में नमन कर म ध्वनि की जिनसे भगवान् गणेश प्रसन्न हुए ।

उनको श्रीगणेश बोले कि जैसे आपने मेरी स्तुति कर नमन किया; इसी प्र मेरे भक्तों को नित्य नमन करना चाहिये ।

तेभ्योऽहं परमप्रीतो दास्यामि मनसीप्सितम् ।
एतादृशं प्रियं मे च नमनं नात्र संशयः ॥
एवमुक्त्वा स तान्सर्वान् सिद्धिबुद्ध्यादिसंयुतः ।
अन्तर्दधे ततो देवा मुनयः स्वस्थलं ययुः ॥

॥ इति श्रीमदान्त्ये मौद्गले द्वितीयखण्डे गजासुरवधे श्रीगजाननस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराणे गणपति खण्डे—अ० १३

श्रीविष्णुकृतं गणपतिस्तोत्रम्

श्री विष्णुरुवाच ।

ईश ! त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
निरूपितुमशक्तोऽहं मनुरूपमनीहकम् ॥

उनको मैं प्रसन्न होकर सभी इच्छित कामनायें प्रदान करता हूं, ऐसा नमन मुझे सदा प्रिय है, इसमें कोई संशय नहीं ।

इस प्रकार उन सबको आश्वासन व वर देकर सिद्धि-बुद्धि समेत भगवान् गणेश अन्तर्धान कर गये और मुनि लोग अपने-अपने स्थानों पर चले गये ।

श्री विष्णु बोले—हे ईश ब्रह्मज्योति सनातन आपकी मैं स्तुति करना चाहता हूं, आपका इदमित्थं प्रतिपादन करने में मैं असमर्थ हूं, क्योंकि आप अनुरूप (अपने स्वरूपगत) और इच्छारहित हैं ।

प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम् ।
सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम् ॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम् ।
वायुतुल्यातिनिर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम् ॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे ।
कर्णधारस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहकारकम् ॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम् ।
सिद्धं सिद्धिस्वरूपञ्च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम् ॥
ध्यानातिरिक्तं ध्येयञ्च ध्यानासाध्यञ्च धार्मिकम् ।
धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्रदम् ॥

आप सब देवों में श्रेष्ठ, सिद्ध और योगियों के गुरु, सर्वस्वरूप, सर्वेश ज्ञानराशि के साक्षात् स्वरूप हैं।

आप अव्यक्त, अक्षर, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायु के समान अति नि अक्षत और सर्वसाक्षी हैं।

संसाररूपी महासमुद्र में जो सुदुर्लभ मायारूपी पोत (जहाज) है, उसके क कर्णधारस्वरूप भक्तों पर दया करनेवाले हैं।

श्रेष्ठ, वरेण्य, वर देनेवाले और वरदानियों में आप उच्चतम हैं। सि सिद्धिस्वरूप, सिद्धि देनेवाले, सिद्धि के साधन हैं। ध्यानातिरिक्त, ध्येय, ध्यान असाध्य, धार्मिक, धर्मस्वरूप, धर्मज्ञ, (जाननेवाले) धर्म एवं अधर्म का देनेवाले हैं।

वीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरश्च तदाश्रयम् ।
स्त्रीपुंनपुंससकानाञ्च रूपमेतदतीन्द्रियम् ॥
सर्वाद्यमग्रपूज्यश्च · सर्वपूज्यं गुणार्णवम् ।
स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणश्चापि स्वेच्छया ॥
स्वयं प्रकृतिरूपश्च प्राकृतं प्रकृतेः परम् ।
त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ॥
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः ।
सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ ।
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥

संसाररूपी वृक्ष के अङ्कुर एवं बीज तथा उनके आश्रय आप ही हैं। सबमें स्त्री, पुरुष और नपुंसक के रूप आप हैं फिर भी इन्द्रियों से अतीत हैं।

सबसे आदि में हैं, अग्रपूज्य हैं, सबके पूज्य और गुणों के समुद्र हैं। आप अपनी इच्छा से सगुण ब्रह्म एवं स्वच्छा से ही निर्गुण ब्रह्म हैं।

स्वयं प्रकृति स्वरूप हैं, प्राकृत हैं फिर भी प्रकृति से परे हैं। अनन्त शेषनाग भी अपने हजारों मुखों से आपकी स्तुति करने में असमर्थ हैं।

न पाँचों मुखों से शंकर और न चारों मुखों से ब्रह्मा आपकी स्तुति कर सकते हैं। वाणी की अधिष्ठात्री देवी साक्षात् सरस्वती भी इसमें समर्थ नहीं तो फिर मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूं।

आपकी स्तुति न तो चारों वेद कर सकते हैं, फिर उनको पढ़नेवाले वेदवादी लोगों कीतो बात ही क्या है।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा सुरेशं सुरसंसदि ।
सुरेशश्च सुरैः सार्द्धं विरराम रमापतिः ॥

इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत् ।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः ॥

तद्विघ्ननिघ्नं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने ।
वर्द्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकः सदा ॥

यात्राकाले पठित्वा तु यो याति भक्तिपूर्वकम् ।
तस्य सर्वाभीष्टसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥

तेन दृष्टश्च दुःस्वप्नं सुस्वप्नमुपजायते ।
कदापि न भवेत्तस्य ग्रहपीड़ा च दारुणा ॥

इस प्रकार देवताओं की सभा में श्रीगणेश का स्तवन कर भगवान् रमा विष्णु सब देवताओं के साथ शान्त खड़े हो गये ।

श्रीगणेशजी के विष्णुकृत स्तोत्र को जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक प्रातःकाल, सायं और मध्याह्न में पढ़ता है, हे मुने, उसके विघ्नों को भगवान् विघ्नेश दूर देते हैं। उसका सर्वकल्याण बढ़ता है और गणपति सदा मङ्गल करते हैं।

जो भक्तिपूर्वक यात्रा के समय इसे पढ़ता है उसकी इष्टसिद्धि होती है इ कोई सन्देह नहीं ।

जिसने दुःस्वप्न देखा है उसका इसी पाठ के प्रभाव से सुस्वप्न हो जाता उसको कभी भी दारुण ग्रह-पीड़ा नहीं सताती ।

भवेद्विनाशः शत्रूणां वन्धूनाञ्च विवर्द्धनम् ।
शश्वद्विघ्नविनाशश्च शश्वत् सम्पद्विवर्द्धनम् ॥
स्थिरा भवेद्गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्द्धनी ।
सर्वैश्वर्यमिह प्राप्य ह्यन्ते विष्णुपदं लभेत् ॥
फलञ्चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्भवेद् ध्रुवम् ।
महतां सर्वदानानां श्रीगणेशप्रसादतः ॥

॥ श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रं समाप्तम् ॥

इस स्तोत्र के पाठ करनेवाले के शत्रुओं का नाश होता है और परिवार के भाई-वन्धुओं की वृद्धि होती है। सदा ही विघ्नों का नाश और सदा ही सम्पत्ति की वृद्धि होती है, घर में लक्ष्मी स्थिर होती है और साथ में पुत्र-पौत्रों की वृद्धि होती है।

उसे इस जन्म में सम्पूर्ण ऐश्वर्यादि को भोग कर अन्त में भगवान् का वैकुण्ठ पद मिलता है। तीर्थों और यज्ञों का सम्पूर्ण फल निश्चय ही उसे मिलता है और क्या सम्पूर्ण दानों का फल भी अनायास ही भगवान् श्रीगणेश के प्रसाद से मिलता है।

॥ ब्रह्मवैवर्त के गणपतिखण्ड की १३ वीं अध्याय में जो गणेशस्तोत्र
विष्णुकृत है वह समाप्त हुआ ॥

श्रीगणेशाय नमः

स्कन्दपुराणोक्त षडाननस्तोत्रम्

नमोऽस्तु वृन्दारकवृन्दवन्द्य पादारविन्दाय सुधाकराय ।
षडाननायामितविक्रमाय गौरीहृदानन्दसमुद्भवाय ॥
नमोऽस्तु तुभ्यं प्रणतार्तिहन्त्रे कर्त्रे समस्तस्य मनोरथानाम् ।
दात्रे रथानां परतारकस्य हन्त्रे प्रचण्डासुर तारकस्य ॥
अमूर्तमूर्ताय सहस्रमूर्तये गुणाय गुण्याय परात्पराय ।
अपारपाराय परापराय नमोऽस्तु तुभ्यं शिखिवाहनाय ॥
नमोऽस्तु ते ब्रह्मविदां वराय दिगम्बरायाम्बरसंस्थिताय ।
हिरण्यवर्णाय हिरण्यबाहवे नमो हिरण्याय हिरण्यरेतसे ॥

सम्पूर्ण देवी-देवता जिनके चरणकमलों में प्रणाम करते हैं, माता पार्वती के हृ को आनन्द देनेवाले और परम-पराक्रमी उन स्कन्द स्वामी को मैं प्रणाम करता

भक्तों के कष्टहारी सम्पूर्ण मनोवाञ्छित काम पूर्ण करनेवाले तथा तारका का संहार करनेवाले कार्तिकेय देव को प्रणाम है।

हे स्वामिन् ! आप अव्यक्त स्वरूप होते हुए भी अनन्त रूप हैं, आप अ गुणयुक्त तथा स्वयं गुण रूप हैं। आप ही परात् पर परम पुरुष हैं। आप कृपा से अपार संसार समुद्र को पार किया जा सकता है। हे मयूरवाहन आप शतशः प्रणाम।

हे षडानन ! आप ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं। व्योम विहारी दिगम्बर आप ही रूप है। हिरण्यगर्भ, हिरण्यबाहु, हिरण्यरेता और हिरण्य स्वरूप आप हैं आपको प्रणाम है।

तपः स्वरूपाय तपोधनाय तपः फलानां प्रतिपादकाय ।
सदा कुमाराय हि मारमारिणे तृणीकृतैश्वर्यविरागिणे नमः ॥
नमोऽस्तु तुभ्यं शरजन्मने विभो ! प्रभातसूर्यारुणदन्तपङ्क्तये ।
बालाय चाबालपराक्रमाय षाण्मातुरायालमनातुराय ॥
मीढुष्टमायोत्तरमीढुषे नमो नमो गणानां पतये गणाय ।
नमोऽस्तु ते जन्मजरातिगाय नमो विशाखाय सुशक्तिपाणये ॥
पूर्वस्य नाथस्य कुमारकाय क्रौञ्चारये तारकमारकाय ।
स्वाहेय गांगेय च कार्तिकेय शैवेय तुभ्यं सततं नमोऽस्तु ॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणोक्तषडाननस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

हे कार्तिकेय ! आप तपः स्वरूप तथा तपोधन हैं । तपस्वियों को तप का फल आप ही देते हैं । कामदेव को मारनेवाले तथा समस्त ऐश्वर्य को तिनके की तरह त्यागनेवाले नित्य कुमारावस्था में रहकर आप विरक्त शिरोमणि हैं। आपको प्रणाम ।

हे स्कन्दस्वामिन् ! आप शरजन्मा हैं सूर्य किरणों के सदृश प्रकाशमान् आपकी दंत पंक्ति है । स्वरूप आपका बालकका-सा है किन्तु पराक्रम में आप बालक नहीं हैं । नित्य प्रमुदित रहनेवाले आपके इस रूप को प्रणाम है ।

प्रभो ! आप भक्तों लिये सुखद और सुख स्वरूप हैं । आप ही गणपति और गण स्वरूप हैं । हे शक्तिपाणे ! विशाख देव आप जन्म-मृत्यु से परे हैं। आपको प्रणाम ।

स्वामिन् ! आप देवाधिदेव महादेव के पुत्र हैं । स्वाहा गंगा तथा कृत्तिका आपकी मातायें हैं । हे शैवेय ! आपको पुनः-पुनः प्रणाम है ।

कार्तिकेय स्तोत्रम्

स्कन्द उवाच ।

योगीश्वरो महासेनः कार्तिकेयोऽग्निनन्दनः ।
स्कन्दः कुमारः सेनानी स्वामी शङ्करसम्भवः ॥
गाङ्गेयस्ताम्रचूड़श्च ब्रह्मचारी शिखिध्वजः ।
तारकारिरुमापुत्रः क्रौञ्चारिश्च षडाननः ॥
शब्दब्रह्मसमुद्रश्च सिद्धः सारस्वतो गुहः ।
सनत्कुमारो भगवान् भोगमोक्षफलप्रदः ॥
शरजन्मगणाधीशः पूर्वजो मुक्तिमार्गकृत् ।
सर्वागमप्रणेता च वाञ्छितार्थप्रदर्शनः ॥
अष्टाविंशति नामानि मदीयानीति यः पठेत् ।
प्रत्यूषे श्रद्धया युक्तो मूको वाचस्पतिर्भवेत् ॥
महामन्त्रमयानीति मम नामानुकीर्तनम् ।
महाप्रज्ञामवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले प्रज्ञाविवर्धनाख्यं श्रीमत्कार्तिकेयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

फलश्रुतिः—जो प्रातःकाल श्रद्धाभक्ति से इन अट्ठाइस नामों को पढ़ता है मूक भी वाचस्पति हो जाता है। इसका पाठ करना महामन्त्र के सदृश है, इसे करनेवाला बहुत बड़ा मेधावी एवं बुद्धिमान् होता है इसमें सन्देह नहीं।

मत्स्यपुराणोक्तं षण्मुखस्तोत्रम्

एवं सुरास्तु ते सर्वे परिवारमनुत्तमम् ।
ददुर्मुदितचेतस्काः स्कन्दायाऽऽदित्यवर्चसे ॥
जानुभ्यामवनौ स्थित्वा सुरसङ्घास्तमस्तुवन् ।
स्तोत्रेणाऽनेन वरदं षण्मुखं मुख्यशः सुराः ॥

देवा ऊचुः ।

नमः कुमाराय महाप्रभाय स्कन्दाय च स्कन्दितदानवाय ।
नवार्क विद्युद्द्युतये नमोऽस्तु नमोऽस्तु ते षण्मुख! कामरूप! ॥
पिनद्धनानाभरणाय भर्त्रे नमो रणे दारुणदारुणाय ।
नमोऽस्तु तेऽर्कप्रतिमप्रभाय नमोऽस्तु गुह्याय गुहाय तुभ्यम् ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण देवगण ने प्रसन्न मन से सूर्य के समान तेजस्वी कार्तिकेय को अपने-अपने दिव्य उपकरण दिये और पृथ्वी पर घुटने टेककर सब ने इस स्तोत्र से वर देनेवाले स्वामी स्कन्द की स्तुति की ।

महती शोभा धारण करनेवाले कुमार, और दानवों को दलनेवाले स्कन्द स्वामी को प्रणाम है । बाल (प्रातःकाल में उदित) सूर्य की प्रखर कान्ति के समान वीर्य-वाले आपको प्रणाम है । हे छै मुखोंवाले कामरूप आपको वारम्वार नमस्कार है ।

नाना प्रकार के आभूषण पहने हुए, संसार के पोषक और युद्धक्षेत्र में दारुणरूप से विभीषणरूपधारी आपको हमारा प्रणाम है । हम सूर्य के समान तेजस्वी आपको प्रणाम करते हैं । आप परम रहस्यमय हैं, गुहनामवाले आपको प्रणाम है ।

नमोऽस्तु त्रैलोक्यभयापहाय नमोऽस्तु ते बालकृपापराय।
नमो विशालामललोचनाय नमो विशाखाय महाव्रताय॥
नमो नमस्तेऽस्तु मनोहराय नमो नमस्तेऽस्तु रणोत्कटाय।
नमो मयूरोज्ज्वलवाहनाय नमोऽस्तु केयूरवराय तुभ्यम्॥
नमो धृतोदग्रपिनाकिने नमो नमः प्रभावप्रणताय तेऽस्तु।
नमो नमस्ते वरवीर्यशालिने क्रियापराणां भवभव्यमूर्तये॥
क्रियापरा यज्ञपतिश्च स्तुत्वा विरेमुरेवं त्वमराधिपाद्याः।
एवं तदा षड्वदनन्तु सेन्द्रा मुदा सुतुष्टश्च गुहस्ततस्तान्।
निरीक्ष्य नेत्रैरमरैः सुरेशान् शत्रून् हनिष्यामि गतज्वराःस्थ॥

॥ इति श्रीमत्स्यपुराणे देवकृतं षण्मुखस्तोत्रं संपूर्णम्॥

तीनों लोकों के भय को दूर करनेवाले आपको प्रणाम, बालकों पर करनेवाले आपको प्रणाम, विशाल अमलनेत्रवाले आपको प्रणाम है और वि एवं महाव्रतधारी आपको प्रणाम है।

मनोहर, आपको प्रणाम है, रणोत्कर आपको बार-बार नमस्कार है। जैसे उज्ज्वल वाहनवाले, आपको प्रणाम और श्रेष्ठ केयूर (अङ्गद) धारण करने आपको प्रणाम है।

प्रचण्ड धनुष को धारण करनेवाले और अपने प्रभाव से सब को नत करनेवाले आपको प्रणाम है। हे श्रेष्ठबल के अधिपति, क्रिया में निपुण व्यक्ति (देवगणों) के लिये कृपा पूर्ण सुन्दर मूर्ति धारण करनेवाले आपको प्रणाम है।

इस प्रकार यज्ञपति भगवान् कार्तिकेय की देवताओं ने स्तुति की शान्त हो गये। तब कार्तिकेय ने अपने अमरनेत्रों से कृपाभरी दृष्टि से उनको और उन्हें आश्वासन दिया कि आप लोग बिलकुल निश्चित हो जाइये मैं आ शत्रुओं को अवश्य मारूंगा।

स्कन्दपुराणोक्तं शंकरस्तोत्रम्

जय शङ्कर ! शान्त ! शशांकरुचे रुचिरार्थद ! सर्वद सर्वरुचे ।
शुचिदत्तगृहीतमहोपहृते हृतभक्तजनोद्धततापतते ॥

ततसर्वहृदं वरवरदनते नतवृजिन महावनदाहकृते ।
कृतविविध-चरित्रतनो सुतनो तनुविशिखविशोषणधैर्यनिधे ॥

निधनादिविवर्जित ! कृतनतिकृत् ! कृति विहितमनोरथ पन्नगभृत् ।
नगभर्तृ सुतार्पितवामवपुः स्ववपुः परिपूरितसर्वजगत् ॥

हे कल्याणकारी, चन्द्रमा के समान कान्तिवाले, भक्त मनोवाञ्छित प्रदातः शान्तस्वरूप शम्भो ! आपकी जय हो। हे प्रभो ! आप भक्तों द्वारा समर्पित उपहारों को प्रसन्न हो ग्रहण करते हैं और उनके आपत्तियों के समूह को दूर करते हैं।

भक्तजनों के पापों के वन को जलानेवाले तथा सदा वर देने को आप तैयार हैं। प्रभो ! आप सेवक-समूह के रक्षणार्थ अनेक अवतार धारण कर विचित्र लीला करते हैं आप चिन्ताग्रस्त प्राणियों पर धैर्यामृत सिंचन करते हैं। आपकी जय हो।

हे नाग के यज्ञोपवीतवाले ! आप जन्म-मृत्यु से परे हैं। आपके पाद-पद्म में प्रणाम करनेवालों के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। माता पार्वती आपके वामांग में विराजती हैं। आपकी अष्टमूर्तियों से सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है। आपकी जय हो।

चिन्मयरूप विरूप सुदृक् दृगुदञ्चनकुञ्चन कृतहुतभुक् ।
भव ! भूतपते ! प्रमथैकपते ! पतितेष्वपि दत्तकरप्रसृते ! ॥
प्रसृताखिलभूतलसंवरणप्रणवध्वनिसौधसुधांशुधर !
धरराज ! कुमारिकया परया परितः परितुष्ट ! नतोऽस्मि शिव ! ॥
शिव देव गिरीश महेश विभो ! विभवप्रद गिरिश शिवेश मृड ।
मृडयोडुपतिध्रजगत्त्रितयं कृतयन्त्रणभक्ति विघातकृताम् ॥
न कृतान्तत एव बिभेमि हर अहराशुसमाघममोघमते !
न मतान्तरमन्यदवैमि शिवं शिव पादनतेः प्रणतोऽस्मि ततः ॥

हे भूतपते ! हे भव ! आप चैतन्य स्वरूप हैं। आप सुन्दर तीन नेत्र ध करते हैं आपके तृतीय नेत्र के निमेषोन्मेष (खुलने और बन्द होने) से अ उत्पत्ति होती है। आप प्रमथादिगणों के अधिपति हैं। हे आशुतोष ! पतितों को हाथ का सहारा देकर उठानेवाले दयानिधि हैं।

समस्त भूमण्डल पर हे शिव ! आपने प्रणव (ओंकार) ध्वनि का वितान(चन्द विस्तृत कर रक्खा है इसी प्रणव प्रासाद में आप विराजते हैं। हे शशिशे भूधर राजपुत्री आपकी सर्व प्रकार से स्तुति करती रहती हैं। हे प्रभो ! आ प्रणाम है।

हे देव ! शिव गिरीश, महेश, गिरिश और शिवेश आदि आपके अनेक हैं। हे चन्द्रशेखर ! भक्ति के विघातक (बाधा देनेवाले) जनों पर आप नि करते हैं। हे विभो ! आप तीनों लोकों को सुखी रखिये यही प्रार्थना है।

हे अमोघमते ! मेरे पापों को शीघ्र नष्ट कर दें। मैं यमराज से नहीं हूं। शिव को प्रणाम करने के अतिरिक्त मैं और कोई मतमतान्तर स्वीकार करता, अतएव मैं आपको प्रणाम करता हूं।

विततेऽत्र जगत्यखिलेऽघहरं हर ! तोषणमेव परं गुणवत् ।
गुणहीनमहीनमहावलयं प्रलयन्तकमीश नतोऽस्मि ततः ॥

इति स्तुत्वा महादेवं विररामांगिरःसुतः ।
व्यतरच्च महादेवः स्तुत्या तुष्टो वरान् बहून् ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तं शिवस्तोत्रम् ॥

॥ ब्रह्मोक्तसोमनाथस्तोत्रम् ॥

काष्टेषु वह्निः कुसुमेषु गन्धो वीजेषु वृक्षादि दृषत्सु हेम ।
भूतेषु सर्वेषु तथा स्त्रियो वै सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥

इस असार संसार में शिव को सन्तुष्ट करना ही सर्वपापप्रणाशन है। हे महेश ! आप निर्गुण हैं। आप ब्रह्माण्ड भर में सर्वोच्च हैं। आप प्रलय की प्रलय करने में समर्थ हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं।

इस प्रकार अङ्गिरा के पुत्र ने देवदेव महादेव की स्तुति की तो भगवान् भूत-भावन भवानीपति ने उन्हें वहुत से वर दिये।

जिस प्रकार काठ में अग्नि, पुष्पों में गन्ध और बीज में वृक्ष तथा पत्थरों में सुवर्ण अदृश्य रूप से व्याप्त है, उसी प्रकार जो प्रभु चराचर प्राणियों में व्यापक हैं, उनकी मैं शरण में जाता हूं।

यो विश्वरूपः सदसत्परो यः धाता विधाता भुवनत्रयस्य।
यो लीलया विश्वमिदं चकार सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामः॥
यं स्मृत्य दारिद्र्यमहाभिशापरोगाधि(दि)भिर्न स्पृशते शरीरी।
यमाश्रिताश्चेप्सितमाप्नुवन्ति सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामः॥
येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं ब्रह्मादयस्तत्र समीहिताश्च।
एवं द्विधा येन कृतं शरीरं सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामः॥
यस्मै नमो गच्छति मन्त्रपूतं हुतं हविर्या च कृता च पूजा।
दत्तं हविर्येन सुरा भजन्ते सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामः॥

जो प्रभु अपने विराट् रूप से ब्रह्माण्डमय हैं तथा सत्-असत् से परे हैं, जो तीनों भुवनों के कर्त्ता धर्ता हैं एवं संसार की रचना जिनका खेल मात्र है, सोमेश्वर प्रभु की मैं शरण में जाता हूं।

जिन सोमनाथ प्रभु का स्मरण करने से यह शरीरधारी दरिद्र, दुःख एवं आदि उपद्रवों से आक्रान्त नहीं होते तथा जिनके आश्रय से सब मनोरथ होते हैं, उन सोमेश्वर प्रभु की मैं शरण में हूं।

जिन सोमेश्वर प्रभु ने सृष्टि सर्जन और रक्षण रूप वैदिक धर्म का निरीक्षण ब्रह्मादिक देवताओं को तत्तत् कार्यों में नियुक्त किया तथा सृष्टि-वृद्धि के लिये अपने आधे अङ्ग से नर और आधे अङ्ग से नारी बन गये, उन सोमेश्वर प्रभु मैं शरण में हूं।

सम्पूर्ण देवताओं को किया नमस्कार, हे सोमेश्वर! आपको ही प्राप्त है। मन्त्रों द्वारा पवित्र हुई हविः जो यज्ञों में दी जाती है, वह आपकी कृपा से सब देवताओं को मिलती है। आपकी पूजा सब की पूजा है। हे सर्वमय सोमे मैं आपकी शरण में जाता हूं।

यस्मात्परं नान्यदस्ति प्रशस्तं यस्मात्परं नैव सुसूक्ष्ममन्यत् ।
यस्मात्परं नो महतां महच्च सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामः ॥
यस्याऽऽज्ञया विश्वमिदं विचित्रमचिन्त्यरूपं विविधं महच्च ।
एकक्रियं यद्वदनुप्रयाति सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामः ॥
यस्मिन् विभूतिः सकलाधिपत्यं कर्तृत्वदातृत्वमहत्वमेव ।
प्रीतिर्यशः सौख्यमनादिधर्मः सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामः ॥
नित्यं शरण्यः सकलस्य पूज्यो नित्यं प्रियो यः शरणागतस्य ।
नित्यं शिवो यः सकलस्य रूपं सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामः ॥
सर्वस्य जीवस्य सदा प्रियस्य फलस्य दृष्टस्य तथा श्रुतस्य ।
स्वर्गस्य मोक्षस्य जगन्निवास ! सोपानपंक्तिस्तव भक्तिरेषा ॥

जिन प्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई प्रशंसनीय नहीं। जो सूक्ष्म से सूक्ष्म हैं तथा जो महान् से भी महान् हैं, उन सोमेश्वर की मैं शरण होता हूं।

जिन प्रभु की आज्ञा से यह विचित्र विश्व एक निश्चित क्रिया का अनुसरण करता जा रहा है (कैसा है यह विश्व? जिसका रूप विचार में ही नहीं आ सकता एवं जो अनेक प्रकार का है और जो महान् है) उन सोमनाथ की मैं शरण में हूं।

जिन भगवान् में ऐश्वर्य तथा सर्वस्वामित्व है, जो अखिल ब्रह्माण्ड के कर्त्ता और सर्व सम्पत् प्रदाता तथा महान् हैं। जिनमें प्रसन्नता, कीर्ति, सुख और सनातनधर्म प्रतिष्ठित हैं, उन सोमेश्वर की मैं शरण हूं।

जो शिव शरणागत वत्सल हैं अथवा जो शरणागत के प्रिय तथा सब के पूज्य हैं और नित्य कल्याणकारी जिनका स्वरूप हैं, उन सोमेश्वर प्रभु की मैं शरण हूं।

हे शंकर! जगन्निवास! सम्पूर्ण देहधारियों के स्वर्ग तथा मोक्षपद प्राप्ति के

त्वत्पादसंप्राप्तिफलाप्तये तु सोपानपंक्तिं न वदन्ति धीराः।
तस्माद्दयालो ! मम भक्तिरस्तु नैवास्त्युपायस्तव रूपसेवा।
आत्मीयमालोक्य महत्त्वमीश पापेषु चाऽस्मासु कुरु प्रसादम्॥
स्थूलं च सूक्ष्मं त्वमनादि नित्यं पिता च माता यदसच्च सच्च।
एवं स्तुतो यः श्रुतिभिः पुराणैर्नमामि सोमेश्वरमीशितारम्॥
सूक्ष्मं परं ज्योतिरनंतरूप ! ओंकारमात्रं प्रकृतेः परं यत्।
चिद्रूपमानन्दमयं समस्तमेवं वदन्तीश ! मुमुक्षवस्त्वाम्॥
आराधयन्त्यत्र भवन्तमीशं महामखैः पञ्चभिरप्यकामाः।
संसारसिन्धोः परमात्मकामा विशंति दिव्यं भवनं वपुस्ते॥

लिये और मनोभिलषित श्रुत इष्ट फल की प्राप्ति के लिये आपकी भक्ति, सो परम्परा है अर्थात् सीढ़ियाँ हैं।

हे ईश ! आपके चरणकमलों की प्राप्ति के लिये बुद्धिमान् लोग भक्ति के अ रिक्त तथा रूप सेवा के अतिरिक्त कोई प्रयत्न नहीं करते। अतः हे प्रभो! पापों पर क्षमा करके मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिये। आप महान् हैं।

हे सोमेश्वर ! आप स्थूल, सूक्ष्म, अनादि, नित्य हैं तथा पिता-माता आ हैं और सत् असत् स्वरूप भी आप ही हैं। पुराणों में तथा वेदों में आपकी इसी प्रकार की गयी है। आपको प्रणाम है।

हे अनन्तरूप ! आप परम सूक्ष्म स्वरूप तथा प्रकाश रूप हैं। प्रणव आपका वाचक है। आप प्रकृति से परे हैं। हे ईश ! मुमुक्षु लोग आपको ही चित् आनन्दमय ब्रह्म कहते हैं।

हे भवानीपते ! स्वर्गादि की कामनावाले भक्त पंचमहायज्ञों से आपकी उपासना करते हैं। वे ही यदि निष्काम भाव से आराधना करते हैं तो इस अ संसार-सिन्धु को पार कर आपके दिव्य धाम को प्राप्त होते हैं।

सर्वेषु सत्त्वेषु समत्त्वबुद्ध्या संवीक्ष्य षट्सूर्मिषु शान्तभावाः ।
ज्ञानेन ते कर्मफलानि हित्वा ध्यानेन ते त्वां प्रविशन्ति शम्भो ! ॥
न जातिधर्मा न च वेदशास्त्रं न ध्यानयोगो न समाधिधर्मः ।
रुद्रं शिवं शकरं शान्तचित्तं भक्त्या देवं सोममहं नमस्ये ।
मूर्खोऽपि शम्भो ! तव पादभक्त्या समाप्नुयान्मुक्तिमयीं तनुं ते ॥
ज्ञानेषु यज्ञेषु तपःसु चैव ध्यानेषु होमेषु महाफलेषु ।
सम्पन्नमेतत्फलमुत्तमं यत् सोमेश्वरे भक्तिरहर्निशं यत् ॥
॥ इति श्रीब्रह्मपुराणोक्तं सोमनाथस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

हे शम्भो ! जो मनुष्य सब प्राणियों के प्रति समत्व बुद्धि रखते हैं तथा जिनके मानस समुद्र में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और द्वेषरूपी तरंगें शान्त हो चुकी है एवं जो ज्ञान द्वारा सर्व कर्मफल त्यागी होगये हैं, वे ही ध्यानावस्थित होकर आपके परमात्मस्वरूप में लीन होने के अधिकारी हैं।

हे देव ! जिसकी जाति भी उत्तम न हो अथवा जो वेदशास्त्र से भी अनभिज्ञ हो तथा योग के यम-नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान-धारणा, समाधि आदि भी नहीं जानते हैं, ऐसे निरे-अबोध मानव भी यदि प्रेम से "रुद्राय नमः शिवाय नमः, शंकराय नमः, शान्तचित्ताय नमः इत्यादि उच्चारण करते हुए आपके चरणकमलों की आराधना करें तो अवश्य मुक्त हो सकते हैं।

हे प्रभो ! सम्पूर्ण ध्यान, ज्ञान और यज्ञ और तप तभी सफल होते हैं, जब सोमेश्वर भगवान् में अहर्निश भक्ति प्राप्त हो जाय।

॥ कूर्मपुराणोक्तो महादेवस्तवः ॥

जयाशेषदुःखौघनाशैकहेतो ! जयानन्तमाहात्म्ययागाभियुक्त ! ।
जयानादिमध्यान्त ! विज्ञानमूर्ते ! जयाकाशकल्पामलानन्दरूप ! ॥

नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं नमो नारसिंहाय शेषाय तुभ्यम् ।
नमः कालरुद्राय संहारकर्त्रे नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते ॥

नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम्
नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं नमस्ते वरिष्ठाय (वराहाय) भूयो नमस्ते

नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्ते ! नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य ! ।
नमो भूधरायाप्रमेयाय तुभ्यम् प्रभो ! विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते ॥

सम्पूर्ण दुःख समूह को नाश करनेवाले, हे शंकर ! आपकी जय हो । हे अ महिमाशालिन् ! हे यज्ञेश्वर ! आपकी जय हो । हे ज्ञानमयमूर्ते ! हे अ अनादि ! आपकी जय हो । हे आनन्दघन ! हे आकाशवत् सर्वव्यापक सूक्ष्म आपकी जय हो ।

हे रुद्रदेव ! सृष्टिरक्षक जो विष्णुस्वरूप आपका है, उसको प्रणाम ; जो आ असुरसंहारकारी नृसिंह स्वरूप है, उसको प्रणाम; प्रलय के अनन्तर भी शेष रहनेवाले आपके शेषस्वरूप को प्रणाम; सृष्टिसंहारकारी आपके काल रुद्र प्रणाम तथा वासुदेव स्वरूप को प्रणाम है ।

हे शंकर ! आप माहेश्वरी माया द्वारा इस विश्व की रचना करते हैं । स निष्ठ योगीजन आपका ही साक्षात्कार करते हैं । सत्यस्वरूप आप ही हैं । धर्म तथा ज्ञान-विज्ञान निष्ठ आप ही हैं । पृथ्वी को जलराशि पर स्थापित करने आदि-वराह आप हैं, आपको बार-बार प्रणाम है ।

हे जगत्कारण प्रभो ! अनन्त सूर्यों का-सा आपका प्रकाश है । आपकी चन्द्रमा के समान सौम्य है । निखिल वेद-वेदान्त और धर्मशास्त्र आपका ही

नमः शम्भवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यम् नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम्।
नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यम् शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते ॥

॥ इति श्रीकूर्मपुराणोक्तो महादेवस्तवः समाप्तः ॥

॥ मत्स्यपुराणोक्तं शांभवस्तोत्रम् ॥

नमामि शम्भुं पुरुषं पुराणं नमामि सर्वज्ञमपारभावम्।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षयं तं नमामि सर्वं शिरसा नमामि ॥
नमामि देवं परमव्ययं तमुमापतिं लोकगुरुं नमामि।
नमामि दारिद्र्यविदारणं तं नमामि रोगापहरं नमामि ॥

करते हैं। आप धरा (पृथ्वी) के धारण करनेवाले हैं। आप प्रमाणातीत हैं, आपको बार-बार प्रणाम है।

हे सत्यनिष्ठ! हे शंभो! आप समस्त ब्रह्माण्ड के कारणरूप हैं, आप विश्वरूप हैं। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध योगपीठों पर आप ही स्थित हैं। हे एकरूप! सदाशिव! आपको पुनः पुनः प्रणाम है।

हे पुराण पुरुष शंभो! आपको प्रणाम। हे सर्वज्ञ! हे अपारमहिम! आपको प्रणाम। हे अक्षय प्रभो रुद्र! हे शर्व! आपको प्रणाम।

हे उमापते! आप परमदेव हैं। आप लोक गुरु हैं। आप दरिद्र को दूर करनेवाले तथा समग्र रोगों का अपहरण करनेवाले मृत्युञ्जय हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं।

नमामि कल्याणमचिन्त्यरूपं नमामि विश्वोद्भवबीजरूपम् ।
नमामि विश्वस्थितिकारणं तं नमामि संहारकरं नमामि ॥
नमामि गौरिप्रियमव्ययं तं नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम् ।
नमामि चिद्रूपममेयभावं त्रिलोचनं तं शिरसा नमामि ॥
नमामि कारुण्यकरं भवस्य भयं करं वापि सदा नमामि ।
नमामि दातारमभीप्सितानां नमामि सोमेशमुमेशमादौ ॥
नमामि वेदत्रयलोचनं तं नमामि मूर्तित्रयवर्जितम् तम् ।
नमामि पुण्यं सदसद् व्यतीतं नमामि तं पापहरं नमामि ॥
नमामि विश्वस्य हिते रतं तं नमामि रूपाणि बहूनि धत्ते ।
यो विश्वगोप्ता सदसत्प्रणेता नमामि तं विश्वपतिं नमामि ॥

हे कल्याणकारी देव ! आपका रूप अचिन्त्य है । आप इस ब्रह्माण्ड वृक्ष के बीजरूप हैं । आप ही इस विश्व की स्थिति के कारण हैं, अथ च आप ही संहार-कर्त्ता रुद्र हैं । आपको मैं प्रणाम करता हूं ।

मैं उन पार्वती के प्रिय पति, नित्य, अव्यय (विकार रहित) क्षर-अक्षररूप और चैतन्यमूर्ति त्रिलोचन के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करता हूं ।

मैं जगत् पर कृपा करनेवाले तथा भयंकर और इच्छित फलदाता त्रिगुणातीत महादेव को प्रणाम करता हूं ।

हे प्रभो ! वेदत्रयी ही आपके तीन नेत्र हैं । आप त्रयीमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) से परे हैं । आप परम पवित्र तथा सत्-असत् से परे हैं । हे सर्वपाप-हर ! मैं आपको प्रणाम करता हूं ।

हे शंभो ! आप समस्त भूत प्राणियों के हित में रत हैं । आप अनेक रूप धारण करते हैं । आप संसार के रक्षक हैं, आप भाव और अभाव दोनों का प्रणयन करते हैं । हे विश्वपते ! मैं आपको प्रणाम करता हूं ।

यज्ञेश्वरं सम्प्रति हव्यकव्यं तथा गतिं लोकसदाशिवो यः ।
आराधितो यश्च ददाति सर्वं नमामि दानप्रियमिष्टदेवम् ॥

नमामि सोमेश्वरमस्वतन्त्रमुमापतिं तं विजयं नमामि ।
नमामि विघ्नेश्वरनन्दिनाथं पुत्रप्रियं तं शिरसा नमामि ॥

नमामि देवं भवदुःखशोकविनाशनं चन्द्रधरं नमामि ।
नमामि गंगाधरमीशमीड्यमुमाधवं देववरं नमामि ॥

नमाम्यजादीशपुरंदरादिसुरासुरैरर्चिपादपद्मम् ।
नमामिदेवीमुखवादनानामीक्षार्थमक्षित्रितयं य ऐच्छत् ॥

हे यज्ञेश्वर ! हे हव्य तथा कव्य के ग्रहण करनेवाले ! हे सदाशिव ! आप आराधक को सर्व संपत् प्रदान करते हैं। हे दानप्रिय ! आपको मैं प्रणाम करता हूं।

हे सोमेश्वर ! आप भक्तों के अधीन हैं। हे उमापते ! हे विजय ! आप विघ्न-विनायक तथा नन्दीश्वरादि गणों के स्वामी हैं। हे सुतवत्सल ! मैं आपको फिर प्रणाम करता हूं।

हे चन्द्रशेखर स्वामिन् ! आप सासारिक कष्टों के दूर करनेवाले हैं। हे देवाधि-देव ! गंगाधर आप निग्रहानुग्रह समर्थ हैं। हे वन्दनीय उमापते ! मैं आपको पुनः प्रणाम करता हूं।

हे सदाशिव ! ब्रह्मा, विष्णु महेश तथा इन्द्रादि समस्त देव एवं राक्षस आपके चरणकमलों की निरन्तर सेवा करते हैं। हे देव ! भगवती पार्वती के मुख-सौन्दर्य समीक्षार्थ (देखने के लिये) ही तीन नेत्र धारण करनेवाले, सौन्दर्यप्रिय शम्भो ! मैं आपको प्रणाम करता हूं।

पञ्चामृतैर्गन्धसुधूपदीपैर्विचित्रपुष्पैर्विविधैश्च मंत्रैः ।
अन्नप्रकारैः सकलोपचारैः संपूजितं सोममहं नमामि ॥

॥ इति श्रीमत्स्यपुराणोक्तं शांभवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ ब्राह्मे कश्यपकृता शिवस्तुतिः ॥

पाहि शंकर देवेश ! पाहि लोकनमस्कृत ! ।
पाहि पावनवागीश ! पाहि पन्नगभूषण ! ॥
पाहि धर्मवृषारूढ़ ! पाहि वेदत्रयेक्षण ! ।
पाहि गोधर ! लक्ष्मीश ! पाहि शर्व ! गजाम्बर ! ॥
पाहि त्रिपुरहन्नाथ ! पाहि मंगलदायक ! ।
पाहि कारुण्यनिलय ! पाहि सोमार्धभूषण ! ॥

हे शंकर ! वेद मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक पंचामृत गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवे आदि समग्र सामग्रियों द्वारा पूजित आपके शिवस्वरूप को मैं बारंबार प्रणा करता हूं।

हे देवाधिदेव ! हे कल्याणकारिन् ! हे जगद्वन्द्य ! व्याल-मालाधारि पार्वतीपते ! मेरी रक्षा कीजिये। हे धर्मरूप वृषभ पर अधिष्ठित ! तीन वेदरूप ने त्रय धारिन् ! हे गजचर्माम्बर ! लक्ष्मीपते ! हे इन्द्रियाधिष्ठातृदेव ! शर्व ! मे रक्षा कीजिये। हे त्रिपुरासुर संहारकर्त्ता सर्वमंगल प्रदाता दयासिन्धो चन्द्रशेखर मेरी रक्षा कीजिये।

पाहि पुंभव ! सर्वस्य पाहि पालक वासव ! ।
पाहि भास्कर ! वित्तेश ! पाहि ब्रह्मनमस्कृत ! ।।

पाहि विश्वेश ! सिद्धेश ! पाहि पूर्ण ! नमोऽस्तु ते ।
पाहि यज्ञेश ! सोमेश ! पाह्यभीष्टप्रदायक ! ।।

घोरसंसारकान्तारसंचारोद्विग्नचेतसाम् ।
शरीरिणां कृपासिन्धो ! त्वमेव शरणं भव ! ।।

।। इति श्रीब्रह्मपुराणे कश्यपकृता शिवस्तुतिः समाप्ता: ।।

हे समस्त जीवसमूह के जन्मदातः ! हे सुरेन्द्र ! हे ब्रह्मादि देवताओं के वन्दनीय ! कोटि-कोटि सूर्यों के समान कान्तिवाले प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये ।

हे सर्वशक्तिमान् पूर्ण ब्रह्म ! हे विश्वनाथ ! सिद्ध योगीश्वर ! हे मनोवाछित फलदाता यज्ञपते ! सोमेश्वर ! मेरी रक्षा कीजिये ।

हे भव ! संसाररूपी भयंकर वन में भटकने से भयभीत चित्तवाले प्राणियों के हे दयानिधे ! आप ही एकमात्र शरणदाता हैं ।

मत्स्यपुराणोक्तं शिवस्तोत्रम्

नमः शिवायाऽस्तु निरामयाय नमः शिवायाऽस्तु मनोमयाय।
नमः शिवायाऽस्तु सुरार्चिताय तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय॥
नमो भवायाऽस्तु भवोद्भवाय नमोऽस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय।
नमोऽस्तु ते गूढ़महाव्रताय नमोऽस्तु मायागहनाश्रयाय॥
नमोऽस्तु शर्वाय नमः शिवाय नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय।
नमोऽस्तु कालाय नमः कलायः नमोऽस्तु ते ज्ञानवरप्रदाय॥
नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय नमो निसर्गामलभूषणाय।
नमोऽस्तु मेयान्धकमर्दकाय नमः शरण्याय नमोऽगुणाय॥
नमोऽस्तु ते भीमगणानुगाय नमोऽस्तु नानाभुवनादिकर्त्रे।
नमोऽस्तु नानाजगतां विधात्रे नमोऽस्तु ते चित्रफलप्रयोक्त्रे॥

हे सर्वव्याधिविनाशक! मृत्युञ्जय! हे देवताओं से अर्थित शिव! भक्तों पर कृपा करनेवाले प्रभो! आपको प्रणाम है।

हे आशुतोष! आप इस सृष्टि के उद्भव स्थल हैं। आप विश्वविजयी काम को भस्म करनेवाले हैं। हे प्रभो! आप मायारचित प्रपंच के आश्रय हैं। नियमादि कष्ट साध्य व्रत आपकी दया से ही ज्ञात हो सकते हैं। हे शर्व! शिव! आप पुराण योगीश्वर हैं। हे ज्ञान-विज्ञानदातः! निमेष से लेकर पर्यन्त काल के स्वरूप आप ही हैं आपको प्रणाम है।

हे शरणागतवत्सल! आप काल के प्रभाव से परे हैं। हे अप्रमेय! आप स्वभाव शुद्ध गुणातीत हैं। हे अन्धक दैत्य के संहारकारिन्! आपको प्रणाम है।

हे भवानीपते! भीमकाय प्रमथादिगण आपके अनुगामी हैं। भुवन-विधा आप ही हैं। अनेक प्रकार के स्थावर जंगम जीवों का सर्जन आप ही करते हे देव! भक्तों को अतर्कित ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले! आपको प्रणाम है।

सर्वावसाने ह्यविनाशनेत्रे नमोऽस्तु चित्राध्वरभागभोक्त्रे ।
नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदात्रे नमः सदा ते भवसर्गहर्त्रे ॥
अनन्तरूपाय सदैव तुभ्यम् असह्यकोपाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ।
शशांकचिह्नाय सदैव तुभ्यम् अमेयमानाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥
वृषेन्द्रयानाय पुरान्तकाय नमः प्रसिद्धाय महौषधाय ।
नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदाय नमोऽस्तु सर्वार्तिहराय तुभ्यम् ॥
चराचराचारविचार्चवर्यमाचारमुत्प्रेक्षितभूतसर्गम् ।
त्वामिन्दुमौलिं शरणं प्रपन्नाः प्रियाप्रमेयं महतां महेशम् ॥

॥ इति श्रीमत्स्यपुराणोक्तं शिवस्तोत्रं समाप्तम् ॥

हे प्रभो ! प्रलयकाल में इस परमाणुमयी प्रकृति का आप ही नेतृत्व करते हैं । व्याघ्राम्बरधारिन् ! आप ही यज्ञ भाग के भोक्ता हैं । भक्तजनों को अभीष्ट फल देनेवाले तथा भवबन्धन से मुक्त करनेवाले, हे महेश ! आपको प्रणाम है ।

हे अनन्तरूप ! आपके कोप को कोई सहन नहीं कर सकता है । हे चन्द्रशेखर ! हे अप्रमेय ! आपको सदा प्रणाम है ।

हे वृषभवाहन ! त्रिपुरासुरसंहारकारिन् ! संसार रोग की प्रसिद्ध महौषध ! शंभो ! आपको प्रणाम है ।

हे महेश्वर ! आप महान् से महान् हैं । ये चराचर प्राणी अहर्निश आप ही के श्रेष्ठस्वरूप का चिन्तन करते हैं । आप आत्मस्वरूप होने से सब के प्रिय हैं । हे प्रभो ! हम आपके शरण में हैं ।

मात्स्ये शिवस्तवः

नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे।
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्रचक्षुषे॥
ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विश्वरूपिणे।
ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे॥
सांख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते।
मन्मथांगविनाशाय नमः कालक्षयंकर !॥
रहंसे देवदेवाय नमस्ते च सुरोत्तम !।
एकवीराय सर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने॥
उमाभर्त्रे नमस्तुभ्यं यज्ञत्रिपुरघातिने।
शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे॥

हे त्रिलोकीनाथ ! ब्रह्माण्डवर्त्ती समस्त भूतग्राम आपका शरीर है, हे किरने असुरहन्ता! सोम, सूर्य अग्नि आप के नेत्र हैं, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आप ही हैं। वेआप आप ही के निःश्वास प्रश्वास हैं, हे देव देव ! आपको प्रणाम है।

मैं आपके सांख्य, योगप्रवर्तक स्वरूप को प्रणाम करता हूं। हे भक्त-कल कारिन् ! आप कामदेव को अनंग करनेवाले हैं। हे मृत्युञ्जय देवं आपको प्रणा

हे देवाधिदेव ! आप ही वेग (बल) रूप हैं। हे पीत जटाधारिन् ! एक आपको प्रणाम है।

हे शुद्ध-बुद्ध स्वरूप ! ज्ञानमय मूर्त्ते ! आप ही मुमुक्षुजनों के गन्तव्य स्थान आपको प्रणाम है।

हे उमापते ! त्रिपुरसंहारक ! आप दक्ष सदृश अश्रद्धालुओं का यज्ञ वि

लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ।
ऋग्यजुःसामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ॥
अग्र्याय चैव चोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुपे ।
रजसे चैव सत्त्वाय नमस्ते स्तिमितात्मने ॥
अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ।
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः ॥
भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च ।
उमाप्रियाय सर्वाय नन्दिवक्त्राञ्चिताय च ॥
ऋतुमन्वन्तकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ।
नानारूपाय मुंडाय वरूथपृथुदण्डिने ।
नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥

करनेवाले हैं। हे प्रभो आप ही इन्द्र, अग्नि, वरुण हैं अथ च ऋक्, साम, यजुर्वेद आप ही हैं। हे पुरुषोत्तम ! हे ईश्वर ! आपको प्रणाम है।

हे शम्भो ! अग्र्य अर्थात् नेतृत्वकर्त्ता हैं। उग्र नाम आप ही का है तथा वेद-वेत् ब्राह्मण आप ही का रूप है, आपको प्रणाम है। रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुण आप ही के रूपान्तर हैं। नित्य-अनित्य व्यक्त-अव्यक्त आप ही हैं। प्रभो ! आप भक्तार्तिनाशक हैं, आप विष्णु के प्रिय सुहृद हैं। हे शर्व ! आप उमासहित नन्दीश्वरादिगणों से अर्चित होते हैं आपको प्रणाम है।

हे नाना रूपधर ! आप दिन, मास, पक्ष, ऋतु, मन्वन्तर और कल्पान्तव्यापी काल रूप हैं। स्थूल दंडधारी सेनानायक आप हैं। हे दिगम्बर ! जटाजूटधारिन् ! कमलप्रिय ! आपको प्रणाम है।

धन्विने रथिने चैव यतये ब्रह्मचारिणे ।
इत्येवमादिचरितैः स्तुतं तुभ्यं नमो नमः ॥

॥ इति श्रीमात्स्ये शिवस्तवः सम्पूर्णः ॥

कूर्मपुराणोक्तः शिवस्तवः

अन्धक उवाच ।

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेकं समाहिता यं विदुरीशतत्त्वम् ।
पुरातनं पुण्यमनन्तरूपं कालं कविं योगवियोगहेतुम् ॥
दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम् ।
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तम् भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम् ॥

हे प्रभो ! आप धनुषधारी, रथचारी एवं ब्रह्मचारी तथा यतीश्वर हैं, मैं इन उपरोक्त समस्त स्वरूपों को पुनः पुनः प्रणाम करता हूं ।

हे भगवन् ! आप समाधिस्थ योगियों द्वारा प्रत्यक्षीकृत ब्रह्मतत्त्व हैं। परमपवित्र अनन्त अवतार धारण करनेवाले पुराण पुरुष हैं। हे ईश! जन्म-मरण के कारण ! अतः कालरूप ! आपको मैं प्रणाम करता हूं ।

हे विराट् ! प्रदोषकाल में जब आप ताण्डव नृत्य करते हैं, तो आप से अग्नि की ज्वालायें निकलती हैं एवं मध्याह्न के सूर्य के समान आपकी मूर्ति मान हो जाती है । उस अनन्त नेत्र, मुख, भुजा और चरणधारी रुद्ररूप प्रणाम करता हूं ।

जयादिदेवामरपूजितांघ्रे ! विभागहीनामलतत्त्वरूप ! ।
त्वमग्निरेको बहुधाऽभिपूज्यो बाह्यादिभेदैरखिलात्मरूप ! ॥

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
त्वं पश्यसीदं परिपास्यजस्रं त्वमन्तको योगिगणाभिजुष्टः ॥

एकोऽन्तरात्मा बहुधा निविष्टो देहेषु देहादिविशेषहीनः ।
त्वामात्मतत्त्वं परमात्मशब्दं भवन्तमाहुः शिवमेव तत्त्वम् ॥

त्वमक्षरं ब्रह्मपरं पवित्रमानन्दरूपं प्रणवाभिधानम् ।
त्वमीश्वरो वेदविदां प्रसिद्धः स्वायंभुवोऽशेषविशेषहीनः ॥

हे सुरासुर पूजित आदिदेव ! अखंड अमलरूप ! आपकी जय हो । हे प्रभो ! आप इस ब्रह्माण्ड में बाहर-भीतर व्यापक रहनेवाली अग्नि के स्वरूप हैं । आप ही की याजक लोग अनेक प्रकार से पूजा करते हैं ।

प्रभो ! आप ही को प्राचीन ऋषि-महर्षि पुराण पुरुष कहते हैं, आप अन्धकार से परे हैं । आप सूर्य के सदृश प्रकाशमान् हैं । योगीवृन्द आप ही का ध्यान करते हैं । हे देव ! आप ही निरन्तर इस सृष्टि का सर्जन, रक्षण तथा संहार करते रहते हैं ।

हे प्रभो ! अन्तरात्मरूप से आप समस्त देहधारियों की देह में नाना रूप से विराजमान हैं तथापि आप विदेह हैं, शरीर संग से मुक्त हैं । हे सदा शिव ! वेदान्तविज्ञजन आत्मतत्त्व या परमात्मतत्त्व नाम से आप ही का वर्णन करते हैं ।

हे भवानीपते ! परम पवित्र प्रणव आप ही का वाचक है । अक्षर आनन्द आप ही हैं । वेदज्ञ श्रेष्ठ ब्रह्मा (स्वयंभू) आप ही के रूप हैं ।

त्वमिन्द्ररूपो वरुणोऽग्निरूपो हंसः प्राणो मृत्युरन्तोऽसि यज्ञः ।
प्रजापतिर्भगवानेकरूपो नीलग्रीवःस्तूयसे वेदविद्भिः ॥

नारायणस्त्वं जगतामनादिः पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च ।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः सदा शिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥

नमः परस्मै तमसःपरस्तात् परमात्मने पंचनवान्तराय ।
त्रिशक्त्यतीताय निरंजनाय सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ॥

त्रिमूर्त्तयेऽनन्तपदात्ममूर्तये जगन्निवासाय जगन्मयाय ।
नमो जनानां हृदि संस्थिताय फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यम् ।

हे आशुतोष ! इन्द्र, अग्नि, वरुण और सोऽहं-सोऽहं का जापक प्राणस्वरूप ... ही के रूप हैं । वेदों के विद्वान् आपकी नीलग्रीव, प्रजापति और एकरूपादि ... से स्तुति करते हैं ।

हे सदाशिव ! इस जगत् के पिता, पितामह, प्रपितामह आप हैं । समस्त ... और उपनिषत् आप ही के गुप्त रहस्यों का गुणानुवाद करते हैं ।

हे प्रभो ! आप परात्पर हैं । आप प्रकाशस्वरूप हैं । इन चतुर्दश भुव... आप ही सर्वतोभावेन व्याप्त हैं । सत्व, रज, तमरूप तीन शक्तियों से आ... हैं । अतः आप त्रिगुणातीत कहलाते हैं । हे निरंजन ! सहस्र शक्तिरूप ... सहस्रफणों पर शयन करनेवाले नारायण आप ही हैं । आपको प्रणाम है ।

हे ब्रह्मविष्णुमहेशात्मक जगन्निवास ! नागहारधारिन् ! शंभो ! यह ... आप ही की रचना है, इसमें निवास करनेवाले प्रत्येक प्राणी के हृदय में ... विराजमान हैं आपको अनन्त प्रणाम है ।

मुनीन्द्रसिद्धार्थितपादपद्म ! ऐश्वर्यधर्मासनसंस्थिताय ।
नमः परान्ताय भवोद्भवाय सहस्रचन्द्रार्कसहस्रमूर्तये ॥

नमोऽस्तु सोमाय सुमध्यमाय नमोऽस्तु देवाय हिरण्यबाहवे ।
नमोऽस्तु गुह्याय गुहान्तराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय ॥

त्रिकालहीनानलधामधाम्ने नमो महेशाय नमः शिवाय ।
नमोऽग्निचन्द्रार्कत्रिलोचनाय नमोऽम्बिकायाः पतये मृडाय ॥

॥ इति श्रीकूर्मपुराणोक्तः शिवस्तवः समाप्तः ॥

हे देव ! सिद्ध ऋषि-मुनि आप ही के चरणकमलों की सेवा करते हैं। धर्म और ऐश्वर्य के अधिष्ठाता आपको प्रणाम है । हे प्रभो ! आप हजारों चन्द्र सूर्य के समान सुन्दर तथा प्रकाशमान हैं । हे सोमेश्वर ! हे हिरण्यबाहो ! वेदान्ती लोग जिन गूढ़ रहस्यों के विचार-विमर्श में लीन रहते हैं वह गुह्यातिगुह्य तत्व आप ही हैं ।

हे महेश ! हे शिव ! भूत, भविष्यत् और वर्तमानरूप, कालत्रयी से अनवच्छिन्न अग्निरूप त्रिलोचन ! हे भवानीपते ! मृड ! आपको पुनः-पुनः प्रणाम है ।

कूर्मपुराणे कृष्णकृता रुद्रस्तुतिः

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोग ब्रह्मादयस्त्वामृषयो वदन्ति।
तमश्च सत्वं च रजस्त्रयं च त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः॥
त्वं ब्रह्मा हरिरथ विश्वकर्त्ता संहर्त्ता दिनकरमंडलाधिवासः।
सांख्यास्त्वामगुणमथाहुरेकरूपं योगस्थाःसततमुपासते हृदिस्थम्।
वेदास्त्वामभिदधतीह रुद्रमीड्यम् त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीड्यम्।
प्राणस्त्वं हुतवहवासवादिभेदः त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीड्यम्॥
त्वत्पादे कुसुममथापि पत्रमेकं दत्वाऽसौ भवति विमुक्तविश्वबन्धः
सर्वाघं प्रणुदति सिद्धयोगजुष्टम् स्मृत्वा ते पद युगलं भवत्प्रसादात्॥

हे शाश्वत (सनातन) देव ! ब्रह्मादिक देव तथा ऋषि आपको समस्त च चर सृष्टि से सम्बद्ध कहते हैं। रज, सत्व, तम नामक तीनों गुण आप ही बतलाते है। अधिक क्या ? बड़े-बड़े सन्त लोग सब (कण-कण) में आप ही दर्शन करते हैं।

हे वन्दनीय विश्वम्भर ! ब्रह्मा, हरि, विश्वकर्त्ता, संहारकारी रुद्र तथा मंडल में तपनेवाले देव आप हैं। सांख्य शास्त्रानुयायी आपको निर्गुण अ एक रूप मानकर भजते हैं और योगी हृदयकमल में आपका ध्यान करते हैं।

हे शरण्य ! वेद अपने रुद्रसूक्तों द्वारा आपकी वन्दना करते हैं। हे प्र आपके प्राण,(वायु) अग्नि तथा इन्द्ररूप की मैं शरण में जाता हूं।

हे देव ! आपके चरणों में केवल एक पत्र तथा पुष्प अर्पण करने से म भवबन्धन से मुक्ति प्राप्त करता है। हे सदाशिव ! आपके सिद्ध चरणसेवित यु चरण का स्मरण करने से मनुष्य के समस्त पाप क्षय हो जाते हैं।

यस्याशेषविभागहीनममलं हृद्यन्तरावस्थितं ।
ते त्वां योनिमनन्तमेकममलं सत्यं परं सर्वगम् ।।
स्थानं प्राहुरनादिमध्यनिधनं यस्मादिदं जायते ।
नित्यं त्वामहमुपैमि सत्य विभवं विश्वेश्वरं तं शिवम् ।।

ओ३म् नमो नीलकंठाय त्रिनेत्राय च रंहसे ।
महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः ।।
नमः पिनाकिने तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने ।
नमस्ते वज्रहस्ताय दिग्वासाय कपर्दिने ।।
नमो भैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे ।
नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः ।।

दर्शनशास्त्र-विचक्षण, जिसको विभागरहित (अखंड), निर्मलहृत्कमल स्थित, अनन्त, परम सत्य, सर्वव्यापक, आदि, मध्य और अन्त से रहित, तथा सत्य संकल्प एवं विश्वेश्वर कहते हैं, उन सदाशिव की मैं शरण में हूं ।

हे नीलकंठ ! त्रिनेत्र ! आपको प्रणाम है । हे महादेव ! ईशान ! आपको प्रणाम है ।

हे पिनाकिन्! (धनुष धारण करनेवाले) तथा मुण्डमालाधारी आपको प्रणाम । हे दिगम्बर ! जटाधारी वज्रहस्त, भूतनाथ ! आपको प्रणाम है ।

हे गिरीश ! भयङ्कर नाद करनेवाले बड़ी-बड़ी दाढोंवाले आपके रुद्ररूप को प्रणाम है ।

नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमो नमः ।
नमस्ते कालनाशाय नमः कालप्रमाथिने ।।
नमो भैरववेषाय हराय च निषंगिणे ।
नमोऽस्तु ते त्र्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवाससे ।।
नमोऽम्बिकाधिपतये पशूनां पतये नमः ।
नरनारीशरीराय सांख्ययोगप्रवर्तिने ।।
नमो भैरवनाथाय देवानुगतलिंगिने ।
कुमारगुरवे तुभ्यं देवदेवाय ते नमः ।।
नमो यज्ञाधिपतये नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नमः ।।

हे भयंकर अट्टहास करनेवाले भीमेश्वर ! आप काल के भी काल हैं अतः महाकाल ! आपको प्रणाम है ।

हे हर ! आपकी वेषभूषा बड़ी भयंकर है । आप गज चर्माम्बरधारी हैं । अ हे त्र्यम्बक ! आपको प्रणाम है ।

हे त्रिलोचन ! आप पशु अर्थात् जीवमात्र के स्वामी हैं । आपके अर्धाङ्ग नर और अर्धाङ्ग में नारीरूप विराजमान हैं अतः हे अर्ध नारीश्वर आप प्रणाम है । हे प्रभो ! सांख्य, योग प्रवर्तक मुनि (कपिल तथा दत्तात्रेय) अ ही हैं, आपको प्रणाम है ।

हे भैरवनाथ ! आपकी लिंगपूजा में समस्त देवताओं की पूजन का फल प्र होता है । हे स्कन्ददेव के गुरु (पिता) देवाधिदेव आपको प्रणाम है ।

हे ब्रह्म में विचरण करनेवाले योगीन्द्र ! आप मृगरूपधारी ब्रह्मा को ड

नमो हंसाय विश्वाय मोहनाय नमो नमः ।
योगिने योगगम्याय योगमायायते नमः ॥
नमस्ते प्राणपालाय घण्टानादप्रियाय च ।
कपालिने नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥
नमो नमोऽस्तु ते तुभ्यं भूय एव नमो नमः ।
मह्यं सर्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वर ! ॥

॥ इति कूर्मपुराणे कृष्णकृता रुद्रस्तुतिः समाप्तः ॥

व्याध बने (जिनके दर्शन अद्यावधि नक्षत्ररूप से आकाश में होते हैं) आप प्रजापति के भी पति हैं ! अपनी योगमाया से समस्त चराचत जगत् को मोहित करनेवाले, हे भुवनमोहन ! आपको प्रणाम है ।

हे प्रणतपाल ! घण्टानाद आपको अत्यन्त प्रिय है । सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्र ग्रहमण्डल के आप अधिष्ठाता हैं । हे कपालिन् परमेश्वर ! मैं आपको पुनः पुनः प्रणाम करता हूं । आप कृपया मेरे मनोरथ पूर्ण करें ।

कूर्मपुराणोक्तो महादेवस्तवः

नमस्तेऽस्तु महादेव ! नमस्ते परमेश्वर !
नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥
नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे ।
प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः ॥
नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने ।
नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं ब्रह्मणो जनकाय ते ।
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने ॥
नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः ।
वेदान्तसारसाराय नमो वेदान्तमूर्तये ॥

हे महादेव ! आपको प्रणाम। हे परमेश्वर ! आपको प्रणाम। हे ब्रह्मरूप शि[illegible] देव ! आपको प्रणाम। हे महेश ! शान्तस्वरूप ! समस्त जगत् के कारणभूत ! [illegible] प्रधान पुरुष योगेश्वर ! आपको प्रणाम।

हे कालरुद्र ! आपको प्रणाम। हे त्रिशूलधारिन् ! महाग्रास (बड़ी से बड़ी शक्ति को निगलनेवाले) आपको प्रणाम। हे प्रधान पुरुष योगेश्वर ! आपको प्रणाम हे पिनाकपाणे ! त्रिलोचन ! ब्रह्म विष्णु महेशात्मक मूर्ति त्रयधारिन् ! ब्रह्मा के भी जनक आपको प्रणाम है। हे ब्रह्मविद्या के अधिपते तथा ब्रह्मविद्या के आद्यप्रवर्तक आपको प्रणाम है।

हे वेदों के गूढतत्त्व ! आपको प्रणाम। हे काल के भी काल ! मृत्युंजय आपको प्रणाम है। समस्त वेदान्त के सार हे वेदान्त मूर्ते ! आपको प्रणाम है।

नमो बुद्धाय रुद्राय भोगिनां गुरवे नमः ।
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृतायते ॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः ।
त्र्यम्बकायादिदेवाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥
नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुंडाय दंडिने ।
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥
नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगर्धिहेतवे ।
नमो धर्मादिगम्याय योगगम्याय ते नमः ॥
नमस्ते निष्प्रपंचाय निराभासाय ते नमः ।
ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने ॥

हे वुद्ध ! हे रुद्र ! हे भोगीश्वर ! (सर्पों के स्वामिन्) आपको प्रणाम है । समस्त शोक दुःखों से रहित प्रमथादिगणों के मध्य में विराजनेवाले, हे सदाशिव ! आप ब्रह्मण्य अर्थात् ज्ञानियों का हित करनेवाले हैं, आप ब्रह्मा के अधिपति हैं आपको प्रणाम है। हे त्र्यम्बक देव ! हे परमेष्ठिन् ! (पितामह) हे दिगम्बर ! मुंड-मालधारिन् दण्डिन् ! आपको नमस्कार है । हे अनादिदेव ! निर्मल ज्ञानैकगम्य शम्भो ! आपको नमस्कार। तारक मंत्र वाच्य परमपवित्र, योगविद्या की वृद्धि करनेवाले प्रभो ! आपको नमस्कार है । सत्य अहिंसा आदि धर्माचरण से प्राप्त होनेवाले प्रभो ! आपको नमस्कार है। यमनियमादि अष्टांग योग से साक्षात् होनेवाले शिव आपको नमस्कार है ।

हे प्रपंच (माया) रहित ! निरञ्जन निराकार आपको नमस्कार । ब्रह्म, विष्णु महेश्वररूप धारिन् ! आपको प्रणाम ।

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वयैव सकलंस्थितं ।
त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय ! ॥
त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वर !
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः ॥
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः ।
त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा ॥
भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहंकार एव च ।
यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥
यस्य द्यौरभवन् मूर्धा पृथिवी दिशो भुजः ।
आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ॥

हे सदाशिव ! आप ही ने अखिल जगत् की रचना की है, आप ही स्थि (रक्षा) करते हैं और आप ही संहारकर्ता हैं।

ईश्वर, महादेव, परंब्रह्म, महेश्वर, परमेष्ठी, शिव, शान्त, हर, पुरुष, निष्क आदि आप ही के नाम है।

हे परमेश्वर ! आप ही अक्षर परम ज्योतिः, कालरूप, अनन्त तथा पुरुष औ प्रधान प्रकृति हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा अहंकार जिन ब्रह्म के रूप उनको मैं प्रणाम करता हूं।

दिव्यलोक जिनका मस्तक है, पृथ्वी जिनके चरण तथा दिशायें जिनकी भुज हैं, अनन्त आकाश जिनका उदर है उन प्रभु विराट् को मैं प्रणाम करता हूं।

सन्तापयति यो नित्यं स्वभाभिर्भासयन् दिशः ।
ब्रह्मतेजोमयं विश्वं तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥
हव्यं वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः ।
कव्यं पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नमः ॥
आप्याययति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत् ।
पीयते देवतासंघैश्च तस्मै चन्द्रात्मने नमः ॥
बिभर्त्यशेषभूतानि यान्तश्चरति सर्वदा ।
शक्तिर्माहेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥
सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्मानुरूपतः ।
आत्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः ॥

जो अपनी कान्तिमती किरणों से दिग्दिगन्तों को देदीप्यमान करते हैं, हे विश्वनाथ ! आपके उस ब्रह्मतेजोमय सविता के स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूं ।

देवता तथा पितृगणों की तृप्ति के लिये जो हव्य एवं कव्य को वहन करते हैं, आप के उस तेजोमय देहधारी अग्निस्वरूप को मैं नमस्कार करता हूं ।

जो अमृतमय किरणों से समस्त स्थावर जंगमात्मक जगत् को तृप्त करते हैं, तथा देवतागण जिनका अमृत पानकर अमरत्व को प्राप्त करते हैं, हे प्रभो ! आपके उस चन्द्रात्मक स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूं ।

जो माहेश्वरी शक्ति सम्पूर्ण देहधारियों के अन्तर में विचरण करती है तथा जो निखिल भूत प्राणियों को धारण किये हुए हैं उस पवनात्मकस्वरूप को मैं प्रणाम करता हूं ।

हे सदाशिव ! जो निज कर्मानुसार इन समस्त जीवों का सर्जन करते हैं उन अन्तःकरणस्थ चतुर्मुख देव को मैं प्रणाम करता हूं ।

यः शेते शेषशयने विश्वमावृत्य मायया ।
स्वात्मानुभूतियोगेन तस्मै विष्ण्वात्मने नमः ॥
बिभर्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम् ।
ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नमः ॥
यः परान्ते परानन्दं पीत्वा देव्यैकसाक्षिकम् ।
नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥
योऽन्तरा सर्वभूतानां नियन्ता तिष्ठतीश्वरः ।
तं सर्वसाक्षिणं देवं नमस्ते विश्वतस्तनुम् ॥
यं विनिद्राजितश्वासाः सन्तुष्टाः समदर्शिनः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥

जो प्रभु माया से समस्त विश्व को आच्छादित करके शेष की शय्या पर शे
निद्रा का अनुभव करते रहते हैं उन विष्णुरूपात्मक शिव को मैं नमस्कार करता
जो चौदह भुवन रूप ब्रह्माण्ड को अपने फणामंडल पर धारण किये हैं,
शेषात्मा शिव को मैं नमस्कार करता हूं।

जो प्रलयकाल के अन्त में माता महाकाली के साथ आनन्दमग्न हो ता
नृत्य करते हैं उन रुद्ररूप को मैं नमस्कार करता हूं।

जो ईश्वर सर्वभूतों के हृदय में स्थित हैं तथा जो सब का नियन्त्रण करते
हैं एवं जो सब कर्मों का और सुख दुःखादि के साक्षी हैं उन सदाशिव को
नमस्कार करता हूं।

निद्रा तन्द्रादि का त्याग कर श्वास को वश में करके सन्तोषी, समदर्शी यो
लोग जिन ज्योतिः स्वरूप को प्रत्यक्ष करते हैं, उन योगात्मा शिव को प्रणाम है

यया संतरते मायां योगी संक्षीणकल्मषः।
अपारपारपर्य्यन्तां तस्मै विद्यात्मने नमः॥

यस्यभासा विभात्यर्कौ महो यत्तमसः परम्।
प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं यद्रूपं पारमेश्वरम्॥

नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम्।
प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम्॥

॥ इति श्रीकूर्मपुराणोक्तमहादेवस्तवः समाप्तः॥

निरन्तर साधना करने से निष्पाप होकर योगी पुरुष जिस विद्याद्वारा अपार संसार सागर को पार कर जाते हैं, उन वेदान्त विद्यारूप शंकर स्वामी को मैं नमस्कार करता हूं।

जिन (शंकर) के प्रकाश से सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं, उन परमेश्वर सम्बन्धी तेजोमय परमतत्त्व को मैं प्राप्त होऊँ।

हे परमेश्वर! नित्य आनन्दमय अखंड जो शिवतत्व हैं उनको मैं प्राप्त होऊँ ऐसी कृपा कीजिये।

अथ कूर्मे त्र्यम्बकस्तोत्रम्

नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः ।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे ॥
नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने ।
सर्वप्रणतदेवाय स्वयमप्रणताय ते ॥
अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च ।
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय नमो भैरवरूपिणे ॥
नरनारीशरीराय योगिने गुरवे नमः ।
नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च ॥
विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे ।
नमस्ते लेलिहानाय श्रीकंठाय च ते नमः ॥

हे देवाधिदेव ! महादेव ! आपको नमस्कार है । हे त्रिशूलधारिन् त्रिलोच[न] आपके लिये नमस्कार है ।

हे पिनाकपाणे दिगम्बर ! आपको प्रणाम है । हे देव ! आपको सब [दे]व दानव, ऋषि-मुनि, सिद्ध गन्धर्व प्रणाम करते हैं । आप स्वयं अप्रणत (किस[ी के] सम्मुख न झुकनेवाले) हैं ।

हे सर्व संहारकारी मृत्यु के भी मृत्युरूप आपको प्रणाम है । हे अर्धनारी[श्वर] ताण्डव नृत्य के प्रेमी, योगीश्वर भैरवरूप ! आपको प्रणाम है ।

हे प्रभो ! आप दान्त (इन्द्रिय दमनकर्त्ता) और शान्त (मनोनिग्रहक[र्ता]) तथा तपस्वियों के आदर्श गुरु हैं (हे हर !) आपको प्रणाम है ।

हे रुद्र! आप विभीषण (अत्यधिक भयंकर) हैं, आप संहार के समय में अ[ग्नि] ज्वाला के सदृश जीभ को पुनः निकाल कर सब को भयभीत कर देते हैं । हे श्री[कण्ठ] आपको प्रणाम है ।

अघोरघोररूपाय वामदेवाय ते नमः।
नमः कनकमालाय देव्याःप्रियकराय च ॥
गंगासलिलधाराय शंभवे परमेष्ठिने।
नमो योगाधिपतये भूताधिपतये नमः ॥
प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्मांगधारिणे।
नमस्ते हव्यवाहाय दंष्ट्रिणे हव्यरेतसे ॥
ब्रह्मणश्चशिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे।
आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च ॥
विश्वेश्वराय सोमाय महाप्रलयकारिणे।
नमः प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसम्पदाम् ॥

हे वामदेव ! आप अघोर (शान्त) स्वरूप हैं तथा घोर भयंकर भी हैं आप को प्रणाम है।

धत्तूर पुष्पों की माला धारण करनेवाले, हे पार्वती जी के प्रिय ! आपको प्रणाम है। हे गंगाधर ! परमेष्ठिन् ! शम्भो ! आपको प्रणाम है।

हे अष्टांग योग के प्रवर्तक (आद्य आचार्य) आपको नमस्कार है। प्राणरूप से समस्त प्राणियों के अधिपति, भस्मांगधारिन् ! हे शम्भो ! आपको नमस्कार है। हव्य-कव्य वहन करनेवाले हे अग्निस्वरूप शिव ! आपको नमस्कार है।

ब्रह्मा के भी असत्यवादी शिर (मुख) का छेदन करनेवाले, सत्यप्रिय, हे महाकाल ! आपको प्रणाम है।

हे शंकर ! हम आपकी आगति (उत्पत्ति) नहीं जानते हैं तथा गति (अन्त) को भी नहीं जानते हैं। हे विश्वनाथ ! सोमेश्वर ! महाप्रलयकारिन् ! प्रमथादिगणों के अधिपते ! समस्त सम्पदाओं के दातः ! आपको नमस्कार है।

कपालपाणये तुभ्यं नमो जुष्टतमाय ते ।
नमः कनकपिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः ॥

नमो भुजंगहाराय कर्णिकारप्रियाय च ।
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः ॥

महादेव ! महादेव ! देवदेव ! त्रिलोचन ! ।
क्षम्यतां यत्कृतं मोहात् त्वमेव शरणं मम ॥

॥ इति कूर्मपुराणोक्त त्र्यम्बकस्तोत्रम् समाप्त ॥

हे पूज्यतम ! कपालपाणे ! (खप्पर हाथ में रखनेवाले) आपको प्रणाम है। स्वर्णसमान कान्तिमान् हे एकलिंग ! आपको नमस्कार है । हे नाग हार धारिन् ! कनेर के पुष्पों से प्रेम करनेवाले किरीट कुंडलशोभी महाकाल ! आपको नमस्कार है ।

हे महादेव ! हे देव देव त्रिलोचन ! अज्ञानवश मैं जो निषिद्ध कर्म कर लेता हूं उसको क्षमा कीजिये । आप ही हमारे रक्षक हैं ।

स्कान्दोक्ता एकरुद्रस्तुतिः

एकं ब्रह्मैवाऽद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानाऽस्ति किंचित् ।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥
एकः कर्त्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो ! नानारूपेष्वेकरूपोऽस्य रूपः ।
यद्वत् प्रत्यप्स्वर्क एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नान्यं त्वां विनाशं प्रपद्ये ॥
रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रूप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ ।
यद्वत्तद्वद्विश्वगेव प्रपंचो यस्मिन्ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥
तोये शैत्यं दाहकत्वञ्च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पिर्यत्तच्छम्भो ! त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ॥

हे महेश ! एक अद्वितीय ब्रह्म आप ही हैं, इस ब्रह्माण्ड में एक रुद्र के अतिरिक्त कोई अन्य की सत्ता ही नहीं है। हे प्रभो ! आप सत्यस्वरूप हैं मैं आपकी शरण में हूं।

हे शम्भो ! समस्त जीव चराचर के आप एक ही कर्त्ता हैं। दृश्यमान नाना रूप जगत् में आप वैसे ही एक रूप से विराजमान हैं, जिस प्रकार एक ही सूर्य जल की तरंगों पर अनेक रूप दिखाई देता है। अतः हे देव आपको छोड़ किससे कल्याण की कामना करूं।

जिसके जानने से यह समस्त ही प्रपंच (संसार) रज्जु में सर्पबुद्धि की तरह तथा सीप को चाँदी समझने के सदृश एवं मृगमरीचिका में जलबुद्धि के समान झूठा प्रतीत होता है उस महेश्वर की मैं शरण हूं।

हे महादेव ! जल में ठण्डक, अग्नि में दाहकता तथा सूर्य में उष्णता और चन्द्रमा में शान्ति आप ही हैं। पुष्प में गन्ध तथा दूध में घृत के समान आप ही समस्त सृष्टि के सार (व्याप्त) हैं मैं आपकी शरण हूं।

शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रेरघ्राणास्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात् ।
व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्यतस्त्वां प्रपद्ये ॥

नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा नो वेदस्त्वामीश! साक्षाद्धिवेद ।
नो वा विष्णुर्नोविधाताऽखिलस्य भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये ॥

नो ते गोत्रं नेशजन्माऽपि नाख्या नो वा शीलं नैवरूपं न देशः ।
इत्थंभूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्वान्कामान् पूरयेस्तद्भजे त्वाम् ॥

हे अलखनिरञ्जन ! आप बिना श्रवण (कान) के ही शब्द ग्रहण करते हैं, बिना नासिका के ही गन्ध ग्रहण करने में समर्थ हैं, बिना चरणों के ही दूर से आ सकते हैं, नेत्रों के विना देखने की सामर्थ्य आप में है, बिना जिह्वा के ही आप रसास्वादन करने में समर्थ हैं। हे शंकर ! कौन आपको भलीभांति जान सकता है ? अतः हे वाङ्मनसातीत ! मैं आपकी शरण हूं।

हे ईश ! न तो आपको बड़े-बड़े योगी लोग ही जानते हैं और न इन्द्रादि देवता ही जानते हैं। वेद भी आपके विषय में नेति-नेति कहकर ही विरत हो जाते हैं। अखिल सृष्टि का सर्जनकर्त्ता ब्रह्मा, और पालनकर्त्ता विष्णु भी आपको नहीं जान सकते। केवल भक्तों को ही आपके स्वरूप का ज्ञान सुलभ है अतः हे भक्तवत्सल ! मैं आपकी शरण में हूं।

हे विश्वनाथ ! न तो आपका कोई गोत्र है, न आपके जन्म का पता है, न आपका कोई सुनिश्चित नाम है, न रूप है, न कोई देश का पता, न स्वभाव का। फिर भी आप तीनों लोकों के स्वामी हैं और भक्तों के मनोरथ पूर्ण करते हैं। अतः मैं आपकी ही शरण में जाता हूं।

त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे ! त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः ।
त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वंच बालस्त्वं यत्किं नास्त्यतस्त्वां नतोऽस्मि ॥

॥ इति स्कान्दोक्ताएकरुद्रस्तुतिः, समाप्ता ॥

स्कन्दपुराणोक्त अष्टमूर्तिस्तवः

त्वं भाभिराभिरभिभूय तमः समस्तमस्तं नमस्यभिमतानिनिशाचराणाम् ।
देदीप्यसे दिनमणे ! गगने हिताय लोकत्रयस्य जगदीश्वर तं नमस्ते ॥
लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभिर्निर्मासि कौमुदमुदश्वसमुत्समुद्रम् ।
विद्राविताखिलतमाः सुतमो हिमांशो ! पीयूषपूरपरिपूरित ! तं नमस्ते ॥

हे सर्वेश्वर ! आप से ही सबकी उत्पत्ति है और आप ही सब कुछ हैं। हे पार्वतीपते ! दिगम्बर ! आप बाल, वृद्ध और युवा सब कुछ हैं, आपके अतिरिक्त कुछ नहीं है। अतः मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूं।

हे जगदीश्वर ! आप अपनी प्रभा से समस्त अन्धकार को दूर करके निशाचरों के मनोरथ नष्ट कर देते हैं। हे दिनमणे (सूर्य) ! तीनलोक के हितार्थ आप दिन भर देदीप्यमान रहते हैं, आपको नमस्कार है।

हे चन्द्रमूर्त्ते ! शिव ! अपार उदधि को अपने उदय से आप प्रसन्न कर देते हैं। आप आकाश से बड़ी-बड़ी तरंगोंवाले समुद्र की वेला को लांघने के लिये उद्यत हो जाते हैं। अन्धकार को सर्वथा दूर कर देनेवाले अमृतवर्षक हे हिमांशुरूप अष्ट-मूर्त्ते ! आपको नमस्कार है।

त्वं पावने पथि सदा गतिरस्त्युपास्यः कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह
स्तब्धप्रभञ्जनविवर्धितसर्वजन्तो ! सन्तोषिता हि कुलसर्वगतं नमस्ते।
विश्वैकपावन ! न तावक पावकैकशक्ते ऋतेऽमृतवताम्रतदिव्यकार्यम्
प्राणित्यहो जगदहो जगदन्तरात्मन् तत्पावक! प्रतिपदं शमदं नमस्ते।
पानीयरूप ! परमेश ! जगत्पवित्र ! चित्रं विचित्रसुचरित्र ! करोषि नूनम्
विश्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ ! पानावगाहनत एतदतो नतोऽस्मि।
आकाशरूप ! बहिरन्तरुतावकाश दानाद्विकस्वरमिहेश्वर ! विश्वमेतत्
त्वत्तः सदा सदय ! संश्वसिति स्वभावात्संकोचमेतिभवतोऽस्मिनतस्ततस्ते

हे वायुरूप शिव ! आप पवित्र पथपर सदा गमन करते रहते हैं, आपके बिना कौन जीवधारी जी सकता है। समस्त जीव-जन्तुओं की वृद्धि करनेवाले आप हैं। सर्पकुल को सन्तुष्ट करनेवाले हे भुवनजीवन ! आपको नमस्कार है।

हे अग्निरूप शिव ! आप जगत् पावन हैं अतएव आप पावक कहलाते हैं। आप ही देवताओं को अमर वर प्रदान करनेवाले हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के उदर में स्थित होकर आप ही सब को जीवित रखते हैं। अतः हे अन्तरात्मन् ! आपको पद-पद पर नमस्कार है।

हे पानीय (जल) रूप पशुपते ! स्नान-पानादि क्रियाओं द्वारा जगत् को पवित्र करनेवाले विश्वनाथ ! आपको नमस्कार है।

हे आकाशरूप ! उमापते ! आप ही बाहर-भीतर अवकाश प्रदान करके इस विश्वको विस्तृत तथा संकुचित करते रहते हैं। प्राणियों के श्वास-प्रश्वास की क्रिया आप पर ही आश्रित हैं। अतः हे दयासिन्धो ! आपको नमस्कार है।

विश्वम्भरात्मक! विभर्षिविभोऽत्र विश्वं कोविश्वनाथभवतोऽन्यतमस्तमारे!
तत्त्वं विना न शमिनां हिमजाहिभूषस्तव्योऽपरः परपर! प्रणतस्ततस्त्वाम्॥

आत्मस्वरूप! तव रूपपरं पराभिराभिस्ततं हर! चराचररूपमेतत्।
सर्वान्तरात्मनिलयः प्रतिरूपरूप! नित्यं नतोऽस्मि परमात्मतनो! नमस्ते॥

इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभि रूपाभिवन्द्य वन्द्यातिवन्द्य भवविश्वजनीनमूर्ते!।
एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत सर्वार्थसार्थ! परमार्थ! ततो नतोऽस्मि॥

॥ स्कन्दपुराणोक्तोऽष्टमूर्तिस्तवः समाप्तः॥

हे पृथ्वीरूप परमेश्वर! आप समस्त विश्व को धारण करते हैं अतः विश्वम्भर कहलाते हैं। यम-नियम शमादि साधनयुक्त योगी लोग आप ही का गुणगान करते हैं तथा शेष और शारदा (पार्वती) आपकी महिमा का अन्त नहीं पाते। अतः हे प्रभो! आपको नमस्कार है।

हे अन्तःकरणरूप! शिव! यह सम्पूर्ण चराचर समूह आपकी ही रूप परम्परा का प्रतिनिधिरूप हैं। हे सर्वान्तरात्मन्! परमात्मन्! आप प्रत्येक रूप में प्रतिबिम्बित हैं आपको नमस्कार है।

उपरोक्त आठ मूर्ति धारण करनेवाले, हे अष्टमूर्ते! हे सर्वभूत हित! हे वन्द्यातिवन्द्य! हे प्रणतपारिजात! आप मेरे सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध कीजिये आपको बारंबार नमस्कार है।

सूर्यकृतं चन्द्रचूडस्तोत्रम्

देवदेव ! जगतां पते ! विभो ! भर्ग भीम ! भवचन्द्रभूषण ! ।
भूतनाथ ! भवभीतिहारक ! त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ! ॥

चन्द्रचूड ! मृड ! धूर्जटे ! हर ! त्र्यक्ष ! दक्षशततन्तुशातन ! ।
शान्त ! शाश्वत ! शिवापते शिव ! त्वां० ··· ॥

नीललोहित ! समीहितार्थ ! द्व्येकलोचन ! विरूपलोचन ! ।
व्योमकेश ! पशुपाशनाशन ! त्वां० ··· ॥

त्र्यम्बक ! त्रिपुरसूदनेश्वर ! त्राणकृत्त्रिनयन ! त्रयीमय ! ।
कालकूटदलनान्तकान्तक ! त्वां० ··· ॥

हे देव देव जगत्पते ! सामर्थ्यवत् ! ऐश्वर्यशालिन् ! घोररूप ! जगदुत्पत्तिका[illegible] चन्द्रशेखर ! भूतनाथ ! भवभयहरण ! प्रणतपाल ! आपको नमस्कार है ।

हे मृड ! (सुखदातः) हे जटाधारिन् ! हे हर ! त्रिलोचन ! दक्षयज्ञवि[illegible]सक ! हे शान्तस्वरूप ! हे सदाशिव ! हे भवानीपते ! वाञ्छित फलदातः ! आ[illegible] नमस्कार है ।

हे नीललोहित ! (सूर्यरूप) इष्टसिद्धिप्रदातः ! विरूपाक्ष ! व्योम[illegible] (ताण्डव नृत्य के समय उच्च आकाश तक जिसके केश व्याप्त होते हैं) हे ज[illegible] जीवों को बन्धन से मुक्त करनेवाले शिव ! आपको नमस्कार है ।

हे त्रिपुरासुर संहारकर्त्ता ! ईश्वर ! रक्षक ! वेदमय ! हे कालकूट (महा[illegible] पानकर्त्तः ! मृत्युञ्जय ! आपको नमस्कार है ।

शर्वरीरहित ! शर्व ! सर्वग ! स्वर्गमार्गसुखदापवर्गद ! ।
अन्धकासुररिपो ! कपर्दभृत् ! त्वां०··· ॥

शंकरोग्र गिरीजापते पते ! विश्वनाथ ! विधिविष्णुसंस्तुतः ! ।
वेदवेद्य ! विदिताखिलेंगित ! त्वां··· ॥

विश्वरूप ! पररूपवर्जित ! ब्रह्मजिह्मरहितामृतपद ! ।
वाङ्मनोविषयदूर ! दूरग ! त्वां··· ॥

॥ इति श्रीसूर्यकृतं चन्द्रचूडस्तोत्रं समाप्तम् ॥

हे शर्वरी रहित ! (सूर्य चन्द्रमा और अग्निमय नेत्र होने से रात्रि का अभाव ता है) शर्व ! सर्वत्रव्यापक ! स्वर्ग एवं मोक्ष (भोग और मोक्ष) प्रदातः ! अन्धका- र संहारक ! कपर्दि (जटामण्डल धारिन्) आपको नमस्कार है ।

हे शंकर ! (कल्याणकारिन् !) हे उग्र ! पार्वतीपते ! विश्वनाथ ! ब्रह्मा विष्णु बन्दनीय ! वेदवेदान्तवेद्य ! निखिलज्ञाननिधे ! आपको नमस्कार है ।

हे महादेव ! यह दृश्यमान विश्व आप ही का विवर्त है, आप स्वतः प्रकाश , आप असत्य वर्जित सत्यस्वरूप हैं, हे ब्रह्मन् ! आप वाणी और मन से अत्यन्त र हैं । हे वाञ्छित फलदातः ! आपको नमस्कार है ।

ब्रह्मपुराणे—चत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षकृता शिवस्तुतिः

ब्रह्मोवाच ।

एवं दृष्ट्वा तदा दक्षः शंभोर्वीर्यं द्विजोत्तमाः ।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा संस्तोतुमुपचक्रमे ॥

दक्ष उवाच ।

नमस्ते देवदेवेश! नमस्तेऽन्धकसूदन ! ।
देवेन्द्र ! त्वं ! बलश्रेष्ठ ! देवदानवपूजित ! ॥
सहस्राक्ष ! विरूपाक्ष ! त्र्यक्ष ! यक्षाधिप ! प्रिय ! ।
सर्व्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ॥
सर्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ।
शङ्कुकर्णो महाकर्णः कुम्भकर्णोऽर्णवालयः ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दक्षप्रजापति ने जब भगवान् शंकर का प्रत्यक्ष देख लिया तो हाथ जोड़ प्रणाम कर स्तुति करने लगे ।

दक्षप्रजापति बोले—हे अन्धकासुर का संहार करनेवाले देवाधिदेव! बलधारियों में श्रेष्ठ हैं, देव-दानवों से पूजित हैं, आपको प्रणाम हैं ।

हे यक्षाधिपति कुवेर के मित्र ! त्रिलोचन ! आपके हजारों नेत्र चा तरफ हाथ-पैर हैं तथा मस्तक, मुख, नेत्र और कान भी चारों ओर आ ब्रह्माण्डको आच्छादित किये वैठे हैं ।

शंकुकर्ण, महाकर्ण, कुंभकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शतकर्ण आदि निवास करनेवाले आपके स्वरूपों को मैं प्रणाम करता हूं ।

गजेन्द्रकर्णो गोकर्णः शतकर्णो नमोऽस्तु ते।
शतोदरः शतावर्तः शतजिह्वः सनातनः॥
गायन्ति त्वां गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमर्किणः।
देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः॥
मूर्तिमांस्त्वं महामूर्तिः समुद्रः सरसां निधिः।
त्वयि सर्वा देवता हि गावो गोष्ठ इवाऽऽसते॥
त्वत्तः शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम्।
आदित्यमथविष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम्॥
क्रियाकरणकार्यें च कर्ताकारणमेव च।
असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाव्य(प्य)यौ॥

हे प्रभो आप शतोदर हैं (सैकड़ों पेट धारण करते हैं) सैकड़ों कुण्डली लगाये तजिह्व शेषनाग आप ही हैं।

गायत्री मन्त्र से गायत्री के उपासक आपका ही गुणगान करते हैं सूर्य के ासक आपकी ही अर्चना करते हैं।

देवता और दानवों के रक्षक आप हैं। ब्रह्मा और इन्द्र आप ही के नाम हैं। प्रभो! आप विशाल मूर्ति धारण करनेवाले प्रत्यक्ष देव हैं।

जलनिधि समुद्र आपका ही रूप है। जिस प्रकार गोव्रज में सब गायें बैठ ती हैं वैसे ही आप में सब देवता विराजमान हैं।

आपके शरीर में मैं सोम, सूर्य, अग्नि, वरुण ब्रह्मा, विष्णु और बृहस्पति को खता हूं। कर्त्तव्य और उसके साधन तथा क्रिया आप ही हैं, कर्ता और कारण ाप ही हैं।

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूनां पतये चैव नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे ।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नमः ॥
नमश्चण्डाय मुण्डाय विश्वचण्डधराय च ।
दण्डिने शङ्कुकर्णाय दण्डिदण्डाय वै नमः ॥
नमोऽर्धदाण्डिकेशाय शुष्काय विकृताय च ।
विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय वै नमः ॥
नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च ।
सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताकिने ॥

हे भव (सब के जन्मदाता) शर्व ! हे वर देनेवाले पशुपते ! आपको प्रणा तीन जटा धारण करनेवाले, तीन मस्तकधारी तथा त्रिशूलपाणे ! हे त्रिपु संहारकारिन् ! त्रिलोचन ! आपको प्रणाम है ।

ब्रह्माण्डस्वरूप, मुण्डमालाधारी और कालरुद्र के लिये नमस्कार है । दण्ड (यमरूप) तथा मृत्यु को भी दण्ड देनेवाले शंकुकर्ण शिव आपको नमस्कार

शुष्क (स्थाणुरूप) तथा विकृत रूप ऊर्ध्वकेश शिव के लिये नमस्कार है विशेष रक्तवर्ण (सूर्य स्वरूप) तथा धूम्रवर्ण (भस्मांगधारी) नीलकंठ के नमस्कार है ।

अनुपम रूपवान् अनेक रूपधारी शिव के लिये नमस्कार है । सूर्य के (प्रकाशक) सूर्य सदृश देदीप्यमान तथा ध्वजा में सूर्य की प्रतिमावाले शि स्वरूप को नमस्कार है ।

नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय वै नमः।
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च॥
हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः।
शत्रुघाताय चण्डाय पर्णसंघशयाय च॥
नमःस्तुताय स्तुतये स्तूयमानाय वै नमः।
सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने॥
नमो होमाय मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने।
नमोऽनम्याय नम्याय नमः किलकिलाय च॥
नमस्त्वां शयमानाय शयितायोत्थिताय च।
स्थिताय धावमानाय कुब्जाय कुटिलाय च॥

प्रमथादिगणों के अधिपते! वृषभ पर आरूढ़ शिव को नमस्कार है। हिरण्यगर्भ रूप सुवर्ण निर्मित कवच धारण करनेवाले स्वर्ण मुकुटधारी शिवको नमस्कार है।

शत्रुओं का नाश करनेवाले पत्तों पर ही सोनेवाले उग्र शिव को नमस्कार है। स्तोता, स्तुति और स्तूयमान शिवको नमस्कार है।

हे प्रभो! स्तुति करनेवाले भी आप ही हैं और स्तुतिरूप (शब्द ब्रह्म) भी आप ही हैं और जिसकी स्तुति की जाय वह भी आप ही हैं। सर्व स्वरूप (विश्व-रूप) तथा समस्त विश्व के संहारक एवं प्राणिमात्र के अन्तरात्मरूप शिव को नमस्कार है।

यज्ञ स्वरूप एवं मन्त्रात्मक शिवको प्रणाम है। अनन्य अर्थात् किसी के भी आगे न झुकनेवाले तथा जिसको सब देव-दानव नमस्कार करते हैं ऐसे किलकिल शब्द करनेवाले शिव को नमस्कार।

शयन करते हुए, सोकर उठते हुए, बैठे हुए, दौड़ते हुए और कुबड़े व कुटिल (टेढ़े) शिव को नमस्कार है।

नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे ।
बाधापहाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे ॥
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च ।
उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशबाहवे ॥
नमः कपालहस्ताय सितभस्मप्रियाय च ।
विभीषणाय भीमाय भीष्मव्रतधराय च ॥
नानाविकृतवक्त्राय खड्गजिह्वोग्रदंष्ट्रिणे ।
पक्षमासलवार्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च ॥
अघोरघोररूपाय घोराघोरतराय च ।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च ॥

ताण्डव नृत्य करते समय अपने मुख से ही वाद्य बजानेवाले, गायन का... वाले, शिकारी के वेषधारिन्! व्याधिनाशक शिव को नमस्कार है ।

समस्त देवताओं में बड़े और श्रेष्ठ तथा शत्रु बलनाशक दशभुजाधारिन्! आ... उग्ररूप को नमस्कार है ।

खप्पर हाथ में लिये, भस्म रमाये, श्मशान वासादि से भयंकर व्रतपरा... भीषणरूप भीम के लिये नमस्कार है ।

पक्ष, मास, निमेष आदि काल की मूर्ते! नानाविधविकृतमुखधारिन्! ख... सदृश तीक्ष्ण जिह्वा और दंष्ट्रा (दाढ) वाले तुम्बीयुक्त बीणा बजानेवाले शिव... नमस्कार है ।

अघोर और घोर (कठोर एवं भयंकर) घोराघोर (उदासीन) रूपवाले शि... को नमस्कार है । शान्त और सब से अधिक शान्त शिव को नमस्कार है ।

नमो बुद्धाय शुद्धाय संविभागप्रियाय च ।
पवनाय पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च ॥
नमश्चण्डैकघण्टाय घण्टाजल्पाय घण्टिने ।
सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च ॥
प्राणदण्डाय नित्याय नमस्ते लोहिताय च ।
हूंहूंकारायरुद्राय भगाकारप्रियाय च ॥
नमोऽपारवते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च ।
नमो यज्ञाधिपतये भूताय प्रस्तुताय च ॥
यज्ञवाहाय दान्ताय तप्याय च भगाय च ।
नमस्तटाय तट्याय तटिनीपतये नमः ॥

शुद्ध-बुद्ध स्वरूप, समान विश्रामप्रद, सांख्य शास्त्रप्रवर्तक, चराचर जगत् को पवित्र करनेवाले सविता स्वरूप शिव को नमस्कार है।

घोर शब्द करनेवाली घण्टायुक्त सैकड़ों हजारों घण्टाओं की माला धारण किये घण्टानाद प्रिय शिव को नमस्कार है।

प्राणवायु को निरोध करनेवाले योगीश्वर, लोहितवर्ण हूं हूंकारोच्चारणकर्त्ता पार्वती प्रिय रुद्र को नमस्कार है।

जिनका पार नहीं है, पर्वत एवं वृक्ष जिन्हें प्रिय है। यज्ञों के अधिपति, भूत एवं प्रस्तुत आपको सदैव नमस्कार है।

यज्ञ के वाह, दान्त, तप्य, एवं सम्पूर्ण ऐश्वर्य, लक्ष्मी, धर्म, यश, ज्ञान और वैराग्य के स्वरूप आप हैं। आप तट हैं तट के योग्य एवं नदियों के स्वामी हैं।

अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजाय च ।
नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ॥
सहस्रोद्धतशूलाय सहस्रनयनाय च ।
नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च ॥
नमो बालार्करूपाय कालक्रीडनकाय च ।
नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च ॥
तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः ।
नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनिरताय च ॥
वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथग्धर्मप्रवर्तिने ।
नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च ॥

अन्नद, अन्नपति, अन्नभुक् आप हैं, हजार शिरोंवाले, हजारों चरण[illegible] आपको प्रणाम है ।

सहस्रों उद्धत शूलधारिन्! हजारों नेत्रवाले बालसूर्य के समान रूपवाले[illegible] बालरूपधारिन्! आपको प्रणाम है ।

शरत्कालीन सूर्यरूप काल के क्रीडनक शुद्ध, बुद्ध, क्षोभण और क्षयरूप आ[illegible] नमस्कार है ।

तरङ्गों से अङ्कित बालोंवाले, मुक्त जटाजूटवाले, छै कर्मों में निष्ठ और [illegible] कर्मों में निरत आपको प्रणाम हैं ।

वर्णाश्रमों को विधिपूर्वक अपने-अपने धर्मों में प्रवर्तन करनेवाले श्रेष्ठ, [illegible] और कलकल आपको नमस्कार है ।

श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च।
धर्मकामार्थमोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च॥
सांख्यायसांख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः।
नमो रथ्याधिरथ्याय चतुष्पथपथाय च॥
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने।
ईशान रुद्रसंघात! हरिकेश! नमोऽस्तुते॥
त्र्यम्बकायाम्बिकानाथ! व्यक्ताव्यक्त! नमोऽस्तु ते।
काल! कामद! कामघ्न! दुष्टोद्वृत्तनिषूदन!॥
सर्वगर्हित! सर्वघ्न सद्योजात! नमोऽस्तु ते।
उन्मादनशतावर्त! गङ्गातोयार्द्रमूर्धज!॥

सफेद-पीले नेत्र, लाल-काली आँखोंवाले, धर्म, काम, अर्थ और मोक्षस्वरूप क्रथ और क्रथन आपको प्रणाम है।

साख्य, मुख्य योगाधिपति आपको प्रणाम। रथ्याधिरथ्य, चतुष्पथ और पथस्वरूप आपको प्रणाम है।

कृष्ण मृगचर्मधारिन् सर्पों की यज्ञोपवीत पहने सर्वशक्तिसम्पन्न रुद्र को नमस्कार है।

हे त्र्यम्बकेश्वर अम्बिकापते! हे साकार निराकार! हे कालरूप! भक्तों के ईप्सित प्रदाता! दुष्ट उद्दंडों के विनाशक शिव आपको नमस्कार है।

लोक दृष्टि से दिगम्बरादि निन्दनीय वेषधारिन्! सर्व संहारक! हे सद्योजात (शिव) आपको नकस्कार है।

चन्द्रार्धसंयुगावर्त ! मेघावर्त ! नमोऽस्तु ते ।
नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभवे नमः ॥
अन्नभोक्त्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयानल ! ।
जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च ॥
त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च ॥
त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु ब्रह्म वदन्ति ते ।
सर्वस्य परमा योनिः सुधांशु ज्योतिषां निधिः ॥
ऋक्सामानि तथोंकारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः ।
हायि हायि हरे हायि हुवाहावेतिवाऽसकृत् ॥

हे मदोन्मत्त ! सैकड़ों आवर्त (वर्तुल चिह्न) धारिन् ! गंगा के जल से अर्ह आर्द्र जटावाले चन्द्रचूड़ ! मेघ समान स्वच्छन्दचारिन् ! रणभूमि के अधिष्ठात् आपको नमस्कार है ।

अन्नदानकर्ता और अन्नदाताओं के भी स्वामी तथा अन्नभोक्ता एवं प्रल सदृश प्रकाशपुंज संसार के रक्षक शिव को नमस्कार है ।

हे देवाधिदेव ! चार प्रकार के जरायुज (मनुष्य पश्वादि), अंडज (पक्षी सरीसृप), स्वेदज (यूकादि) और उद्भिज (वृक्षलतादि) सब जीवधारी आप रूप हैं । आप ही चराचर जीव समूह के स्रष्टा और आप ही संहारकर्त्ता हैं ।

आप ही ब्रह्मा और समुद्रशायी विष्णु तथा महेश्वर हैं । आप ही सब के उत् स्थान हैं । आप ही ज्योतिःस्वरूपों के निधि सूर्य तथा अमृत दीधिति चन्द्रमा

वेदविद् विद्वान् ऋग्वेद, सामवेद तथा प्रणव आप ही को कहते हैं । हे शिव ! आपको ही हायि-हायि हरे हायि हुवा हावा आदि मन्त्रों से साम विद्वान् गाते हैं ।

गायन्ति त्वां सुर श्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः ।
यजुर्मय ऋङ्मयश्च सामाथर्वयुतस्तथा ॥
पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रावर्णाश्रमाश्च ये ॥
त्वमेवाऽऽश्रमसंघाश्च विद्युत्स्तनितमेव च ।
संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्धमेव च ॥
कलाकाष्ठानिमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च ।
वृषाणां ककुदं त्वं हि गिरीणां शिखराणि च ॥
सिंहो मृगाणां पतयस्तक्षकानन्तभोगिनाम् ।
क्षीरोदो ह्यु दधीनां च मन्त्राणां प्रणवस्तथा ॥
वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ।
त्वमेवेच्छा च द्वेषश्च रागो मोहः शमःक्षमा ॥

ब्रह्मविद् विद्वान् ऋग्यजु आदि वेदत्रयी से तथा उपनिषदों से आपकी ही स्तुति करते हैं।

ब्राह्मणादि चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रम आप ही हैं। मेघ और बिजली, संवत्सर और ऋतु, मास, पक्ष और घड़ी, पल तथा क्षण सब आप ही हैं।

वृषभों के ककुत् (थूह) और पर्वतों के शिखर आप ही हैं। पशुओं के स्वामी सिंह तथा सर्पों के स्वामी तक्षक अनन्तरूप आप ही हैं।

जलाशयों में समुद्र आप हैं, मन्त्रों में ओंकार आप है, शस्त्रों में वज्र आप हैं और व्रतों में सत्य आप ही हैं।

इच्छा, राग द्वेष, मोह (अज्ञान), शान्ति, क्षमा, पुरुषार्थ, धैर्य, लोभ, काम और क्रोध तथा जय और पराजय आपही हैं।

व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ ।
त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी मुद्गरी तथा ॥
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च नेता मन्ताऽसि नो मतः ।
दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च ॥
इन्दुः समुद्रः सरितः पल्वलानि सरांसि च ।
लतावल्ल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः ॥
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ।
आदिश्चान्तश्चमध्यश्च गायत्र्योंकार एव च ॥
हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथाक्षणः ।
कद्रुश्चकपिलोबभ्रुः कपोतो मच्छ(त्स्य)कस्तथा ॥

गदा धारण करनेवाले, धनुषवाणधारी तथा खट्वाङ्ग और मुद्गर धारण करनेवाले आप ही हैं।

छेदन-भेदन तथा प्रहरण करनेवाले सर्वमान्य नेता सेनापति आप ही हैं। धृति क्षमादि दश धर्मलक्षणों से युक्त धर्म तथा अर्थ और काम आप ही हैं।

चन्द्रमा, समुद्र, नदियां, छोटे-बड़े तड़ाग (सरोवर) आप ही हैं। लता, वल्ली, तृण, औषधी, पशु, मृग, पक्षी और द्रव्य (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, काल, दिक्, आत्मा, मन), कर्म, (गमनादि) गुण (रूपादि) तथा पुष्प और फल देनेवाले समय भी आप ही हैं।

सब के आदि तथा अन्त और मध्य आप ही हैं। गायत्री और ओंकार आप ही हैं।

हरा, लाल, काला, नीला, पीला, कद्रु (चितकबरा) कपिल (श्वेत पीत) धूम्रवर्ण, कपोतवर्ण और मत्स्यवर्ण आदि नाना रंग आप ही के स्वरूप हैं।

सुवर्णरेता विख्यातः सुवर्णश्चाप्यथो मतः ।
सुवर्णनाम च तथा सुवर्णप्रिय एव च ॥
त्वमिन्द्रश्चयमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः ।
उत्फुल्लश्चित्रभानुश्चस्वर्भानुर्भानुरेव च ॥
होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुः ।
त्रिसौपर्णस्तथा ब्रह्मन्यजुषां शतरुद्रियम् ॥
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
प्राणश्च त्वं रजश्च त्वं तमः सत्त्वयुतस्तथा ॥
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत्तृड्जृम्भा तथैव च ॥

हे शिव ! आप हिरण्यरेता अग्नि हैं, आप शोभनवर्ण हैं । सुवर्ण आपका ही नाम है और आपको सुवर्ण अधिक प्रिय है ।

इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, और अग्नि आदि दिक्पाल आप ही हैं । देदीप्यमान अग्नि और स्वर्भानु (तेजः पुञ्ज) तथा सूर्य आप ही हैं ।

हे प्रभो ! अग्निहोत्र और हवनकर्त्ता तथा हविः और हवन कर्म आप ही हैं । त्रिसौपर्ण (सूक्त विशेष) तथा यजुर्वेद की शतरुद्री आप ही हैं ।

आप पवित्रों के भी पवित्रकर्त्ता हैं । मंगल के भी मंगलदाता हैं । प्राणरूप आप हैं । रजः, सत और तमः आदि गुण त्रयरूप आप हैं ।

प्राण, अपान, समान, उदान व्यानरूप आप ही हैं । उन्मेष निमेष (नेत्रों का खोलना-मीचना अर्थात् पलक झँपना) भूख, प्यास और जम्भाई आना ये सब आपकी ही चेष्टा हैं ।

लोहिताङ्गश्च दंष्ट्री च महावक्त्रो महोदरः ।
शुचिरोमा हरिच्छ्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥
गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः ।
मत्स्यो जालो जलोऽजय्यो जलव्यालः कुटीचरः ॥
विकालश्चसुकालश्च दुष्कालः कालनाशनः ।
मृत्युश्चैवाक्षयोऽन्तश्च क्षमामाया करोत्करः ॥
संवर्तो वर्तकश्चैव संवर्तकबलाहकौ ।
घण्टाकीघण्टकीघण्टी चूडालोलवणोदधिः ॥

रक्तवर्ण महान् बड़ी-बड़ी दाढोंवाला आपका महान् मुख है और विशाल उदर है। आप पवित्र रोम राशिवाले हैं। आपकी दाढ़ी मूँछ हरितवर्ण की है आपका केशकलाप सदा ऊँचा उठा रहता है। आपको गायन, वाद्य तथा नृत्य अधिक प्रिय हैं।

मत्स्य (मछली) भी आप ही हैं और जल भी आप ही हैं। आप सबके अजेय हैं। जल में रहनेवाले सर्प आप हैं। कुटीचर संन्यासी आप का ही रूप है।

कालके प्रभाव से आप परे हैं। सुभिक्ष और दुर्भिक्ष (बुरे-भले समय) आप ही हैं। कालरूप (मृत्यु) को नाश करनेवाले भी आप ही हैं। मृत्यु स्वरूप आप ही हैं और अक्षय अन्त अर्थात् महाप्रलय आप हैं। प्रपंचरूप माया के जन्मदाता और उसका विस्तार करनेवाले आप ही हैं।

हे सदाशिव ! प्रलयकालीन मेघाडम्बर जो (संवर्तक, वर्तक तथा वलाहकादि नाम से प्रसिद्ध है) वह आप ही हैं। आप महती घण्टाओं तथा क्षुद्र घण्टिकाओं से अलंकृत रहते हैं। हे जटाजूटधारिन् शिव ! लवण समुद्र आप ही हैं।

ब्रह्मा कालाग्निवक्त्रश्च दण्डी मुण्डस्त्रिदण्डधृक् ।
चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः ॥
चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरश्च ह ।
क्षराक्षरः प्रियो धूर्तो गणैर्गण्यो गणाधिपः ॥
रक्तसाल्याम्बरधरो गिरीशो गिरिजाप्रियः ।
शिल्पीशः शिल्पिनः श्रेष्ठं सर्वशिल्पिप्रवर्तकः ॥
भगनेत्रान्तकश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः ।
स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कार नमोऽस्तुते ॥

सृष्टि के विधाता प्रजापति आप हैं कालाग्नि रुद्र आप ही हैं। एकदण्ड अथवा त्रिदण्डधारी स्वरूप आपका ही रूप हैं। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि नामक चारों युग ऋक्, यजुः, साम और अथर्व नामक चारों वेद, गार्हपत्यादि चारों अग्नि, चारों आश्रम और चारों वर्ण रूप चतुष्पथ (चार मार्गों) के प्रवर्त्तक आप ही हैं।

हे सदाशिव ! लाल पुष्पों की माला आपको अधिक प्रिय है, कैलाशवासी पार्वती के प्यारे आप ही हैं।

समस्त शिल्पकारों के अधिष्ठाता देव आप हैं। शिल्पशास्त्र के प्रवर्तक और श्रेष्ठ शिल्पी आप ही हैं।

क्षर और अक्षर (नित्यानित्य) आप ही हैं। विशुद्ध प्रेमाश्रय तथा कपटकर्त्ता भी आप हैं।

प्रमथादिगणों में अग्रणी गणपति आपका रूप है। दक्षयज्ञ विध्वंस के समय भगनामक देवता के नेत्रनाशक तथा पूषा के दाँत उखाड़नेवाले चण्डरूप आप ही हैं।

हे स्वाहा ! स्वधा ! वषट्कार नमस्कार रूप रुद्र ! आपको नमस्कार है।

गूढव्रतश्चगूढश्चगूढव्रतनिषेवितः ।
तरणस्तारणश्चैव सर्वभूतेषु तारणः ॥
धाता विधाता संधाता विधाता धारणो धरः ।
तपो ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मचर्यं तथाऽऽर्जवम् ॥
भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः ।
भूर्भुवःस्वरितश्चैव भूतोह्यग्निर्महेश्वरः ॥
ब्रह्मावर्तः सुरावर्तः कामावर्त ! नमोऽस्तु ते ।
कामबिम्बविनिर्हन्ता कर्णिकारस्रजप्रियः ॥

हे शिव ! आपके नियम गुप्त है, आप स्वयं भी गूढ़ स्वरूप हैं। अपने नियम व्रतों को गुप्त रखनेवाले ही आपके सफल सेवक हैं। समस्त भूत प्राणियों को संसार सागर से तारनेवाले तरण-तारण आप ही हैं।

हे प्रभो ! धाता-विधाता आप ही है और संधाता (सन्धि करनेवाले) तथा विधाता (भेदकर्त्ता) एवं समस्त लोकधर्त्ता आप ही हैं। सब, वेद, सत्य, ब्रह्मचर्य तथा आर्जव (सरलता) आप ही हैं।

समस्त भूतप्राणियों की आत्मा (जीव) रूप आप हैं। इन सब के रचयिता तथा उत्पत्ति स्थान आप ही हैं और भाग्यविधाता भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान भी आप ही हैं। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोकादि तीन लोक आपका ही विवर्त है उनके मध्य में अग्नि तथा महेश्वररूप से आप ही विराजमान हैं।

हे यथाकामचारीशिव ! ब्रह्मा को सृष्टि को रचने की प्रेरणा देनेवाले तथा समस्त सुर समूह को निजकर्म में प्रवृत करनेवाले आपको प्रणाम है। कामदेव की देह को दहन करनेवाले कनेर के पुष्पों की माला को धारण करनेवाले हे सदाशिव ! आपको नमस्कार है।

गोनेता गोप्रचारश्च गोवृषेश्वरवाहनः ।
त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोप्तागोगर्ग(?)एव च ॥
अखण्डचन्द्राभिमुखः सुमुखो दुर्मुखोऽमुखः ।
चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वभिमुखः सदा ॥
हिरण्यगर्भः शकुनिर्धनदोऽर्थपतिर्विराट् ।
अधर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रियः ॥
तिष्ठन्स्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः ।
दुर्वारणो दुर्विषहो दुःसहो दुरतिक्रमः ॥

आप गो (इन्द्रियों) का नेतृत्व करनेवाले हैं और गाय चरानेवाले त्रिलोकी पति गोविन्द आप ही हैं। धर्मरूप वृष की सवारी पर आप आरूढ़ होते हैं।

पूर्ण चन्द्रमा सदृश आप का उज्ज्वल मुख है, अतः सुन्दर मुखधारी हैं। रुद्र-मूर्ति का भयंकर मुख होने से दुर्मुख भी आपका नाम है। निराकार होने के कारण मुखरहित भी आप हैं। ब्रह्मा (प्रजापति) आपका रूप है अतः आप चतुर्मुख हैं। विराट् देह के दर्शन में आप बहुमुख दिखाई देते हैं, संग्रामभूमि में आप सदा शत्रुओं के सम्मुख रहनेवाले हैं।

हिरण्यगर्भ (सर्वभूतान्तरात्मा) पक्षियों के समान गगनविहारी और धन देनेवाले निधिपति आप हैं। हे शिव ! आप परम चतुर हैं, अधर्म को हनन करनेवाले हैं, दुष्टों के दण्डदाता हैं अतः सदा संग्राम प्रिय हैं।

हे शिव ! आपका नाम स्थाणु है, क्योंकि आप सहस्रों वर्षों तक समाधि में बैठकर स्थिर, निश्चल, निष्कम्प रहते हैं। आप अप्रतिषिद्धगति हैं, शत्रु आपके पराक्रम को सहन नहीं कर सकते।

दुर्धरो दुर्वशो नित्यो दुर्दर्पो विजयो जयः ।
शशःशशाङ्कनयनः शीतोष्णः क्षुत्तृषा जरा ॥
आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिपश्च यः ।
सह्यो यज्ञमृगव्याधो व्याधिनामाकरोऽकरः ॥
शिखण्डी पुण्डरीकश्च पुण्डरीकावलोकनः ।
दण्डधृक्चक्रदण्डश्चरौद्रभागविनाशनः ॥
विषयोऽमृतपश्चैव सुरापः क्षीरसोमपः ।
मधुपश्चाऽऽपपश्चैव सर्वपश्च बलाबलः ॥

हे प्रभो ! आपका बल किसी से धारण नहीं हो सकता, आप बड़े कष्ट से भक्तों के वश में आते हैं । आपका दर्प (अभिमान) बड़ा उत्कट है । आप विजेता तथा विजय हैं । हे चन्द्र के समान शीतल नेत्रधारिन् ! शीत और ऊष्मा तथा भूख और प्यास एवं वृद्धावस्था आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शरीर की पीड़ा) आप ही हैं । रोगों की नाशक औषध और रोगों के अधिपति भी आप ही हैं ।

दक्षयज्ञ में जब मृग का रूप धर यज्ञ जब भय से भागने लगा तो उसे पकड़ने वाले व्याध आप ही हैं । समस्त व्याधियों के नाम आपके ही नाम हैं । हे सदा-शिव ! आप सब कुछ करते हुए भी अकर (तटस्थ) हैं ।

आप शिखाधारी, कमलनेत्र और कमलरूप भी हैं । दण्डधारी तथा इस संसारचक्र को दण्ड से घुमानेवाले आप ही हैं । दक्षयज्ञ में रुद्र के भाग के विना-शक भी आप ही हैं ।

विषपान, अमृतपान, सुरापान तथा सोमपान और दुग्धपान करनेवाले भी आप ही हैं । मधु जलादि समस्त पेय पदार्थों को आप ही पीते हैं । हे शिव ! आप बली और निर्बल दोनों में स्थित हैं ।

वृषभारावो, वृषभाङ्कभो,

वृषाङ्कुराम्भो (?) वृषभस्तथा वृषभलोचनः।
वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसंस्कृतः॥
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः।
अग्निष्टोमस्तथा देहो धर्मकर्मप्रसाधितः॥
न ब्रह्म न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिवः॥
शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मास्ते मह्यं यान्तुदर्शनम्।
ताभिर्मां सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम्॥
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ ! नमोऽस्तु ते।
भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं सदा त्वयि॥

हे शिव ! आपकी मूर्ति आपके वृषभ जैसी ही श्वेत है, आपके नेत्र भी वृषभ सदृश ही हैं वृषभ (नन्दी) आपका ही दूसरा रूप है। आप सब लोकों में वृषभेश्वर नाम से ही विख्यात हैं।

चाँद सूरज आपके नेत्र हैं, ब्रह्मा आपका हृदय है, धार्मिक कृत्यों से निर्मित अग्निष्टोम (यज्ञ) आपकी देह हैं।

हे शिव ! ब्रह्मा विष्णु तथा प्राचीन ऋषियों ने भी आपके माहात्म्य को यथावत् नहीं जाना।

हे शिव ! आपकी कल्याणकारिणी मूर्तियां मेरे दृष्टिगोचर हों और जैसे पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है, वैसे इनसे सर्वतः मेरी रक्षा कीजिये।

हे अनघ ! (निष्पाप !) आप रक्षक हैं मैं रक्षणीय हूं, आप भक्तवत्सल हैं मैं भक्त हूं अतः मेरी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।

यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्यदुर्दृशाम् ।
तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽस्तु नित्यशः ॥

यं विनिद्राजितश्वासाः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥

संभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते समुपस्थिते ।
यः शेते जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽम्बुशायिनम् ॥

प्रविश्य वदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि ।
ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव च ॥

अङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम् ।
रक्षन्तु ते च मां नित्यं नित्यं चाऽऽप्याययन्तु माम् ॥

जो समुद्र के अन्त में अनेक सहस्र अदृश्यगणों के साथ अकेले निवास करते हैं, वे शिव मेरी रक्षा करें ।

जिनको योगी लोग निद्रारहित होकर समाधिस्थ हुए ज्योतिः पुंज के रूप में देखते हैं उन सत्त्वप्रधान समदर्शी योगात्मा शिव को नमस्कार है ।

जो प्रलयकाल में समस्त जगत् को संहार कर समुद्र में सो जाते हैं, उन जलशायी शिव की मैं शरण हूं ।

जो शिव राहु के मुख में प्रविष्ट होकर चन्द्रस्थ अमृत को रात्रि में पी जाते हैं तथा सूर्य को ग्रस लेते हैं, उन सोमाग्निरूप शिव को नमस्कार है ।

समस्त प्राणियों के देह में जो अङ्गुष्ठ मात्र पुरुषरूप से निवास करते हैं वे सब के देहस्थ परमशिव मेरी रक्षा करें और मुझे उन्नत करें ।

येनाऽप्युत्पादिता गर्भा अपो भागगताश्चये ।
तेषां स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च ॥
ये न रोहन्ति देहस्थाः प्राणियो रोदयन्ति च ।
हर्षयन्ति न कृष्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः ॥
ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च ।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च ।
हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ॥
येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च ।
इन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥

जो रुद्र, गर्भों के उत्पादक हैं तथा जल में निवास करते हैं, स्वाहा और स्वधा का आस्वादन करते हैं, उन शिवरूपों को नमस्कार है !

जो सब जीवधारियों के देह में स्थित हैं, किन्तु बाहर नहीं दिखाई देते और भीतर ही स्थित हुए प्राणियों को कभी रुलाते रहते हैं कभी प्रसन्न करते रहते हैं, उन सब रुद्रदेवताओं को प्रणाम है ।

जो रुद्र समुद्रों में नदी, दुर्ग, पर्वत, कन्दराओं में, वृक्षमूलों में, गायों के गोष्ठों में, गहन वनों में, चौराहों में, गलियों में, चबूतरों पर, सभाओं में, हाथी-घोड़ों के स्थान में, रथशालाओं में, जीर्ण (पुराने बगीचों में, टूटे-फूटे घरों में, पञ्चमहाभूतों में और दिशा (पूर्वादि) विदिशा (आग्नेयादि) में निवास करते हैं तथा अग्नि और सूर्य में स्थित हैं, अन्ततः सूर्य और चन्द्रमा की किरणों में निवास करते हैं ।

रसातल गता ये च ये च तस्मात्परं गताः ।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वशः ॥
सर्वस्त्वं सर्वगो देवः सर्वभूतपतिर्भवः ।
सर्वभूतान्तरात्मा च ते न त्वं न निमन्त्रितः ॥
त्वमेव चेज्यसे देव ! यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।
त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः ॥
अथवा मायया देव ! मोहितः सूक्ष्मया तव ।
तस्मात्तु कारणाद्वाऽपि त्वं मया न निमन्त्रितः ॥
प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम ।
त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मतिः ॥

॥ इति श्रीदक्षकृता शिवस्तुतिः समाप्ता ॥

हैं और जो रसातल तथा उससे भी परे निवास करते हैं, उन सब को सर्वदा नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

हे शिव ! आप सर्वव्यापक सर्वभूतों के स्वामी तथा सब के हृदय में स्थित और सर्वस्वरूप हैं अतएव मैंने आपका पृथक् आवाहन नहीं किया सो क्षमा करें। आप ही विविध दक्षिणावाले यज्ञों में पूजे जाते हैं एवं सब यज्ञादि के कर्त्ता-धर्ता हैं इसीसे मैंने पृथक् निमन्त्रण नहीं दिया अथवा आपकी माया से मोहित होकर मैं निमन्त्रण देना भूल गया अतः क्षमा का पात्र हूं।

हे महेश्वर ! मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपकी शरण हूं। आप ही मेरी गति हैं आपसे पृथक् कोई मेरा नहीं है यह मेरी निश्चित मति हो गई है।

रावणकृतं शिवताण्डवस्तोत्रम्

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम् ।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥

जटाकटाहसम्भ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी-
विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्द्धनि ।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥

धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुर-
स्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे ।

जिन्होंने जटारूपी अटवी (वन) से निकली हुई गङ्गाजी के गिरते हुए प्रवाहों से पवित्र किये गये गले में सर्पों की लटकती हुई विशाल माला को धारण कर डमरू के डम-डम शब्दों से मण्डित प्रचण्ड ताण्डव (नृत्य) किया, वे शिवजी हमारे कल्याण का विस्तार करें।

जिनका मस्तक जटारूपी कड़ाह में वेग से घूमती हुई गङ्गा की चञ्चल तरङ्ग-लताओं से सुशोभित हो रहा है, ललाटादि धक्-धक् जल रही है, शिरपर बाल चन्द्रमा विराजमान हैं, उन (भगवान् शिव) में मेरा निरन्तर अनुराग हो।

गिरिराज किशोरी पार्वती के विलासकालोपयोगी शिरोभूषण से समस्त दिशाओं को प्रकाशित होते देख जिनका मन आनन्दित हो रहा है, जिनकी

कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि
क्वचिद्दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि ॥

जटाभुजङ्गपिङ्गलस्फुरत्फणामणिप्रभा-
कदम्बकुङ्कुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे ।
मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनोविनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि ॥

सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर-
प्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः ।
भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः
श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः ॥

निरन्तर कृपादृष्टि से कठिन आपत्ति का भी निवारण हो जाता है, ऐसे किसी दिगम्बर तत्त्व में मेरा मन विनोद करे।

जिनके जटाजूटवर्ती सर्पों में फणों की मणियों का फैलता हुआ पीला प्रभापुञ्ज दिशारूपिणी अङ्गनाओं के मुखपर कुङ्कुमराग का अनुलेप कर रहा है, मतवाले हाथी के हिलते हुए चमड़े का उत्तरीय वस्त्र (चादर) धारण करने से स्निग्धवर्ण हुए उन भूतनाथ में मेरा चित्त अद्भुत विनोद करे।

जिनकी चरणपादुकाएँ इन्द्र आदि समस्त देवताओं के (प्रणाम करते समय) मस्तकवर्ती कुसुमों की धूलि से धूसरित हो रही हैं, नागराज (शेष) के हार से बँधी हुई जटावाले वे भगवान् चन्द्रशेखर मेरे लिये चिरस्थायिनी सम्पत्ति के साधक हों।

ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभा-
निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम् ।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं
महाकपालि सम्पदे शिरो जटालमस्तु नः ॥
करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वल-
द्धनञ्जयाहुतीकृतप्रचण्डपञ्चसायके ।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-
प्रकल्पनैकशिल्पिनि त्रिलोचने रतिर्मम ॥
नवीनमेघमण्डलीनिरुद्धदुर्धरस्फुर-
त्कुहूनिशीथिनीतमःप्रबन्धबद्धकन्धरः ।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः
कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः ॥

जिसने ललाट-वेदीपर प्रज्वलित हुई अग्नि के स्फुलिङ्गों के तेज से कामदेव को नष्ट कर डाला था, जिसे इन्द्र नमस्कार किया करते हैं, सुधाकर की कला से सुशोभित मुकुटवाला वह (श्रीमहादेवजी का) उन्नत विशाल ललाटवाला जटिल मस्तक हमारी सम्पत्ति का साधक हो।

जिन्हों ने अपने विकराल भालपट्ट पर धक्-धक जलती हुई अग्नि में प्रचण्ड कामदेव को हवन कर दिया था, गिरिराज किशोरी के स्तनोंपर पत्रभङ्ग-रचना करने के एकमात्र कारीगर उन भगवान् त्रिलोचन में मेरी धारणा लगी रहे।

जिनके कण्ठ में नवीन मेघमाला से घिरी हुई अमावस्या की आधी रात के समय फैलते हुए दुरूह अन्धकार के समान श्यामता अङ्कित है; जो गजचर्म लपेटे हुए हैं वे संसार भार को धारण करनेवाले चन्द्रमा (के सम्पर्क) से मनोहर कान्तिवाले भगवान् गङ्गाधर मेरी सम्पत्ति का विस्तार करें।

प्रफुल्लनीलपङ्कजप्रपञ्चकालिमप्रभा-
वलम्बिकण्ठकन्दलीरुचिप्रबद्धकन्धरम् ।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥

अखर्वसर्वमङ्गलाकलाकदम्बमञ्जरी-
रसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ॥

जयत्वदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजङ्गमश्वस-
द्विनिर्गमत्क्रमस्फुरत्करालभालहव्यवाट् ।
धिमिद्धिमिद्धिमिद्ध्वनन्मृदङ्गतुङ्गमङ्गल-
ध्वनिक्रमप्रवर्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः ॥

जिनका कण्ठदेश खिले हुए नील कमल समूह की श्याम प्रभा का अनुकरण करनेवाली हरिणी की-सी शोभावाले चिह्न से सुशोभित हैं तथा जो कामदेव, त्रिपुर, भव (संसार), दक्ष-यज्ञ, हाथी, अन्धकासुर यमराज का भी उच्छेदन करनेवाले हैं उनका मैं भजन करता हूं।

जो अभिमानरहित पार्वती की कलारूप कदम्बमञ्जरी के मकरन्द स्रोत की बढ़ती हुई माधुरी के पान करनेवाले मधुप हैं तथा कामदेव, त्रिपुर, भव, दक्ष-यज्ञ, हाथी, अन्धकासुर और यमराज का भी अन्त करनेवाले हैं, उन्हें मैं भजता हूं।

जिनके मस्तक पर बड़े वेग के साथ घूमते हुए भुजङ्ग के फुफकारने से ललाट की भयंकर अग्नि क्रमशः धधकती हुई फैल रही है, धिमि-धिमि बजते हुए मृदङ्ग के गम्भीर मङ्गल घोष के क्रमानुसार जिनका प्रचण्ड ताण्डव हो रहा है, उन भगवान् शङ्कर की जय हो।

दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजो-
गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः ।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समम्प्रवृत्तिकः कदा सदाशिवं भजाम्यहम् ॥

कदा निलिम्पनिर्झरीनिकुञ्जकोटरे वसन्
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन् ।
विलोललोललोचनो ललामभाललग्नकः
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ॥

इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं
पठन्स्मरन्ब्रुवन्नरो विशुद्धिमेति सन्ततम् ।
हरे गुरौ सुभक्तिमाशु याति नान्यथा गतिं
विमोहनं हि देहिनां सुशङ्करस्य चिन्तनम् ॥

पत्थर और सुन्दर बिछौनों में, साँप और मुक्ता की माला में, बहुमूल्य रत्न तथा मिट्टी के ढेले में, मित्र या शत्रुपक्ष में, तृण अथवा कमललोचनवाली तरुणी स्त्री में, प्रजा और पृथ्वी के महाराज में समान भाव रखता हुआ मैं कब सदाशिव को भजूँगा।

सुन्दर ललाटवाले भगवान् चन्द्रशेखर में दत्तचित्त हो अपने कुविचारों को त्यागकर गङ्गाजी के तटवर्ती निकुञ्ज के भीतर रहकर सिरपर हाथ जोड़ डबडबायी हुई विह्वल आँखों से 'शिव' मन्त्र का उच्चारण करता हुआ मैं कब सुखी होऊँगा।

जो मनुष्य इस प्रकार से उक्त इस उत्तमोत्तम स्तोत्र का नित्य पाठ, स्मरण और वर्णन करता रहता है, वह सदा शुद्ध रहता है और शीघ्र ही देवगुरु श्री

पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं
यः शम्भुपूजनपरं पठति प्रदोषे ।
तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरङ्गयुक्तां
लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ॥

॥ इति श्रीरावणकृतं शिवताण्डवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्रीपशुपत्यष्टकम्

ध्यानम्

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं ।
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ॥

शङ्करजी की सुन्दर भक्ति प्राप्त कर लेता है, वह विरुद्धगति को नहीं प्राप्त होता; क्योंकि श्रीशिवजी का अच्छी प्रकार का चिन्तन प्राणिवर्ग के मोह का नाश करनेवाला है।

सायङ्काल में पूजा समाप्त होनेपर रावण के गाये हुए इस शम्भुपूजन सम्बन्धी स्तोत्र का जो पाठ करता है, शङ्करजी उस मनुष्य को रथ, हाथी, घोड़ों से युक्त सदा स्थिर रहनेवाली अनुकूल सम्पत्ति देते हैं।

चाँदी के पर्वत समान जिनकी श्वेत कान्ति है, जो सुन्दर चन्द्रमा को आभूषणरूप से धारण करते हैं, रत्नमय अलङ्कारों से जिनका शरीर उज्ज्वल है, जिनके हाथों में परशु, मृग, वर और अभय हैं, जो प्रसन्न हैं।

पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं ।
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

स्तोत्रम्

पशुपतिं द्युपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम् ।
प्रणतभक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥
न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलं कुलम् ।
अवति कोऽपि न कालवशं गतं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥
मुरजडिण्डिमवाद्यविलक्षणं मधुरपञ्चमनादविशारदम् ।
प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

जो पद्म के आसन पर विराजमान हैं, देवतागण जिनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, जो बाघ की खाल पहनते हैं, जो विश्व के आदि, जगत् की उत्पत्ति के बीज और समस्त भयों को हरनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, उन महेश्वर को प्रतिदिन ध्यान करे ।

अरे मनुष्यो ! जो समस्त प्राणियों, स्वर्ग, पृथ्वी और नागलोक के पति हैं, दक्ष-कन्या सती के स्वामी हैं, शरणागत प्राणियों और भक्तजनों की पीड़ा दूर करनेवाले हैं, उन परमपुरुष पार्वती-वल्लभ शङ्करजी को भजो ।

ऐ मनुष्यो ! काल के वश में पड़े हुए जीव को पिता, माता, भाई, बेटा, अत्यन्त बल और कुल—इनमें से कोई भी नहीं बचा सकता, इसलिये तुम गिरिजापति को भजो ।

रे मनुष्यो ! जो मृदङ्ग और डमरू बजाने में निपुण हैं, मधुर पञ्चम स्वर के गायन में कुशल हैं, प्रमथ और भूतगण जिनकी सेवा में रहते हैं, उन गिरिजापति को भजो ।

शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम् ।
अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥
नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम् ।
चितिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥
मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजि फलप्रदम् ।
प्रलयदग्धसुरासुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥
मदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीडितम् ।
जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

हे मनुष्यो ! 'शिव ! शिव !' कहकर मनुष्य जिनको प्रणाम करते हैं, जो शरणागतों को शरण, सुख और अभय देनेवाले हैं, उन दयासागर गिरिजापति काभजन करो ।

अरे मनुष्यो ! जो नरमुण्डरूपी मणियों का कुण्डल और साँपों का हार पहनते हैं, जिनका शरीर चिता की धूलि से धूसरित है, उन वृषभध्वज गिरिजापति को भजो ।

रे मनुष्यो ! जिन्होंने दक्ष-यज्ञ का विध्वंस किया था ; जिनके मस्तक पर चन्द्रमा सुशोभित हैं, जो यज्ञ करनेवालों को सदा ही फल देनेवाले हैं और जो प्रलय की अग्नि में देवता, दानव और मानवों को दग्ध करनेवाले हैं, उन गिरिजा-पति को भजो ।

अरे मनुष्यो ! जगत को जन्म, जरा और मरण के भय से पीड़ित, सामने उपस्थित भय से व्याकुल देखकर बहुत दिनों से हृदय में सञ्चित मद का त्यागकर उन गिरिजापति को भजो ।

हरिविरञ्चिसुराधिपपूजितं यमजनेशधनेशनमस्कृतम् ।
त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥
पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिसूरिणा ।
पठति संशृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम् ॥
॥ इति श्रीपृथिवीपतिसूरिविरचितं श्रीपशुपत्यष्टकं सम्पूर्णम् । ॥

शिवमानसपूजा

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम् ।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥

रे मनुष्यो ! विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र जिनकी पूजा करते हैं, यम और कुबेर जिन्हें प्रणाम करते हैं, जिनके तीन नेत्र हैं तथा जो त्रिभुवन स्वामी हैं, उन गिरिजापति को भजो ।

जो मनुष्य पृथिवीपति सूरिके बनाये हुए इस अद्भुत पशुपति-अष्टक का सदा ही पाठ और श्रवण करता है, वह शिवपुरी में निवास करता और आनन्दित होता है ।

हे दयानिधे ! हे पशुपते ! हे देव ! यह रत्ननिर्मित सिंहासन, शीतल जल से स्नान, नाना रत्नावलिविभूषित दिव्य वस्त्र, कस्तूरिकागन्धसमन्वित चन्दन, जुही, चम्पा और बिल्वपत्र से रचित पुष्पाञ्जलि तथा धूप और दीप यह सब मानसिक (पूजा के उपहार) ग्रहण कीजिये ।

सौवर्णे नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम् ।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो ! स्वीकुरु ।।

छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा ।
साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ।।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।

मैंने नवीन रत्नखण्डों से खचित सुवर्णपात्र में घृतयुक्त खीर, दूध और दधि-सहित पाँच प्रकार का व्यञ्जन, कदलीफल, शर्बत, अनेकों शाक, कर्पूर से सुवासित और स्वच्छ किया हुआ मीठा जल और ताम्बूल ये सब मानसिक ही बनाकर प्रस्तुत किये हैं; प्रभो ! कृपया इन्हें स्वीकार कीजिये ।

छत्र, दो चँवर, पंखा, निर्मल दर्पण, वीणा, भेरी, मृदङ्ग, दुन्दुभी के वाद्य, गान और नृत्य, साष्टाङ्ग प्रणाम, नानाविध स्तुतियां—ये सब मैं सङ्कल्प से ही आपको अर्पण करता हूं । प्रभो ! मेरी यह पूजा ग्रहण कीजिये ।

हे शम्भो ! मेरी आत्मा आप हैं, बुद्धि पार्वतीजी हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपका मन्दिर है, सम्पूर्ण विषय-भोग की रचना आपकी पूजा है, निद्रा

सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो! तवाराधनम् ॥
करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे! श्रीमहादेव! शम्भो ! ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता शिवमानसपूजा समाप्ता ॥

श्रीविश्वनाथाष्टकम्

गङ्गातरङ्गरमणीयजटाकलापं गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम् ।
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥

समाधि है, मेरा चलना-फिरना आपकी परिक्रमा है तथा सम्पूर्ण शब्द आपके स्तोत्र हैं, इस प्रकार मैं जो-जो भी कर्म करता हूं वह सबके सब आपकी आराधना ही है ।

हे प्रभो ! मैंने हाथ, पैर, वाणी, शरीर, कर्म, कर्ण, नेत्र अथवा मनसे जो भी अपराध किये हों ; वे विहित हों या अविहित हो उन्हें आप क्षमा करें। हे करुणा के सागर ! श्रीमहादेव ! शम्भो ! आपकी जय हो ।

जिनकी जटाएँ गङ्गाजी की लहरों से सुन्दर प्रतीत होती हैं, जिनका वामभाग सदा पार्वतीजी से सुशोभित रहता है, जो नारायण के प्रिय और कामदेव के मद का नाश करनेवाले हैं, उन काशीपति विश्वनाथ को भजो ।

वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपं वागीशविष्णुसुरसेवितपादपीठम् ।
वामेन विग्रहवरेण कलत्रवन्तम् । वाराणसी० ॥

भूताधिपं भुजगभूषणभूषिताङ्गं व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम् ।
पाशाङ्कुशाभयवरप्रदशूलपाणिम् । वाराणसी० ॥

शीतांशुशोभितकिरीटविराजमानं भालेक्षणानलविशोषितपञ्चबाणम् ।
नागाधिपारचितभासुरकर्णपूरम् । वाराणसी० ॥

पञ्चाननं दुरितमत्तमतङ्गजानां नागान्तकं दनुजपुङ्गवपन्नगानाम् ।
दावानलं मरणशोकजराटवीनाम् । वाराणसी० ॥

वाणीद्वारा जिनका वर्णन नहीं हो सकता, जिनके अनेक गुण और अनेक स्वरूप हैं, ब्रह्मा, विष्णु और अन्य देवता जिनकी चरणपादुका का सेवन करते हैं, जो अपने सुन्दर वामाङ्ग के द्वारा ही सपत्नीक हैं, उन काशीपति विश्वनाथ को भजो ।

जो भूतों के अधिपति हैं, जिनका शरीर सर्परूपी गहनों से विभूषित है, जो बाघ की खाल का वस्त्र पहनते हैं, जिनके हाथों में पाश, अङ्कुश, अभय, वर और शूल है, उन जटाधारी त्रिनेत्र काशीपति विश्वनाथ को भजो ।

जो चन्द्रमाद्वारा प्रकाशित किरीट से शोभित हैं, जिन्होंने अपने भालस्थ नेत्र की अग्नि से कामदेव को दग्ध कर दिया, जिनके कानों में बड़े-बड़े साँपों के कुण्डल चमक रहे हैं, उन काशीपति विश्वनाथ को भजो ।

जो पापरूपी मतवाले हाथियों के मारनेवाले सिंह हैं, दैत्यसमूहरूपी साँपों का नाश करनेवाले गरुड़ हैं तथा जो मरण, शोक और वृद्धावस्थारूपी भीषण वन के जलानेवाले दावानल हैं, ऐसे काशीपति विश्वनाथ को भजो ।

तेजोमयं सगुणनिर्गुणमद्वितीयमानन्दकन्दमपराजितमप्रमेयम् ।
नागात्मकं सकलनिष्कलमात्मरूपम् । वाराणसी० ॥

रागादिदोषरहितं स्वजनानुरागं वैराग्यशान्तिनिलयं गिरिजासहायम् ।
माधुर्यधैर्यसुभगं गरलाभिरामम् । वाराणसी० ॥

आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां
पापे रतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ ।
आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशम् । वाराणसी० ॥

वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः ।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं
सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥

जो तेजपूर्ण, सगुण, निर्गुण, अद्वितीय, आनन्दकन्द, अपराजित और अतुलनीय हैं, जो अपने शरीर पर साँपों को धारण करते हैं, जिनका रूप ह्रास और वृद्धि से रहित है, ऐसे आत्मस्वरूप काशीपति विश्वनाथ को भजो ।

जो रागादि दोषों से रहित हैं, अपने भक्तों पर कृपा रखते हैं, वैराग्य और शान्ति के स्थान हैं, पार्वतीजी सदा जिनके साथ रहती हैं, जो धीरता और मधुर स्वभाव से सुन्दर जान पड़ते हैं तथा जो कण्ठ में विष के चिह्न से सुशोभित हैं, उन काशीपति विश्वनाथ को भजो ।

सब आशाओं को छोड़कर, दूसरों की निन्दा से दूर रहकर और पापकर्म से अनुराग हटाकर और चित्त को समाधि में लगाकर हृदयकमल में प्रकाशमान परमेश्वर काशीपति विश्वनाथ को भजो ।

जो मनुष्य काशीपति शिव के इस आठ श्लोकों के स्तवन का पाठ करता है, वह विद्या, धन, प्रचुर सौख्य और अनन्त कीर्ति प्राप्तकर देहावसान होनेपर मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है ।

विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

॥ इति श्रीमहर्षिव्यासप्रणीतं श्रीविश्वनाथाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

शिवापराधक्षमापनस्तोत्रम्

आदौ कर्मप्रसङ्गात् कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां
विण्मूत्रामेध्यमध्ये क्वथयति नितरां जाठरो जातवेदाः ।
यद्यद्वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव! शिव! शिव! भो श्रीमहादेव! शम्भो! ॥

जो शिव के समीप इस विश्वनाथाष्टक का पाठ करता है वह शिवलोक प्राप्त करता और शिव के साथ आनन्द लाभ कता है ।

पहले कर्मप्रसङ्ग से किया हुआ पाप मुझे माता की कुक्षि में ला बिठाता है, फिर उस अपवित्र विष्ठा-मूत्र के वीच जठराग्नि खूब सन्तप्त करता है । वहाँ जो-जो दुःख निरन्तर सताते रहते हैं उन्हें कौन कह सकता है? हे शिव! हे शङ्कर! हे महादेव! हे शम्भो! अव मेरा अपराध क्षमा कीजिये! क्षमा कीजिये!

बाल्ये दुःखातिरेको मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासा
नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति ।
नानारोगादिदुःखाद्रुदनपरवशः शङ्करं न स्मरामि । क्षन्तव्यो० ॥
प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पञ्चभिर्मर्मसन्धौ
दष्टो नष्टो विवेकः सुतधनयुवतिस्वादसौख्ये निषण्णः ।
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढम् । क्षन्तव्यो० ॥
वार्द्धक्ये चेन्द्रियाणां विगतगतिमतिश्चाधिदैवादितापैः
पापै रोगैर्वियोगैस्त्वनवसितवपुः प्रौढिहीनं च दीनम् ।

बाल्यावस्था में दुःख की अधिकता रहती थी, शरीर मल-मूत्र से लिपटा रहता था और निरन्तर स्तनपान की लालसा रहती थी ; इन्द्रियों में कोई कार्य करने की सामर्थ्य न थी ; शैवी माया से उत्पन्न हुए नाना जन्तु मुझे काटते थे ; नाना रोगादि दुःखों के कारण मैं रोता ही रहता था, (उस समय भी) मुझसे शङ्कर का स्मरण नहीं बना, इसलिये हे शिव ! हे शिव ! हे शङ्कर ! हे महादेव ! हे शम्भो ! अब मेरा अपराध क्षमा कीजिये ! क्षमा कीजिये !

जब मैं युवा अवस्था में आकर प्रौढ़ हुआ तो पाँच विषयरूपी सर्पों ने मेरे मर्मस्थानों को डँसा, जिससे मेरा विवेक नष्ट हो गया, और मैं धन, स्त्री और सन्तान के सुख भोगने में लग गया। उस समय भी आपके चिन्तन को भूलकर मेरा हृदय बड़े घमण्ड और अभिमान से भर गया। अतः शिव ! हे शिव ! हे शङ्कर ! हे महादेव ! हे शम्भो ! अब मेरा अपराध क्षमा कीजिये ! क्षमा कीजिये !

वृद्धावस्था में भी, जब इन्द्रियों की गति शिथिल हो गयी है, बुद्धि मन्द पड़ गयी है और आधिदैविकादि तापों, पापों, रोगों और वियोगों से शरीर जर्जरित हो गया है, मेरा मन मिथ्या, मोह और अभिलाषाओं से दुर्बल और दीन होकर

मिथ्यामोहाभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेर्ध्यानशून्यम् । क्षन्त०॥

नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपदगहनप्रत्यवायाकुलाख्यम्
श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गे सुसारे ।
नास्था धर्मे विचारः श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यम् । क्षन्त०॥

स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहृतं गाङ्गतोयम्
पूजार्थं वा कदाचिद्बहुतरगहनात्खण्डबिल्वीदलानि ।
नानीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पे त्वदर्थम् । क्षन्त०॥

(आप) श्रीमहादेवजी के चिन्तन से शून्य ही भ्रम रहा है। अतः हे शिव ! हे शिव ! हे शंकर ! हे महादेव ! हे शम्भो ! अब मेरा अपराध क्षमा कीजिये ! क्षमा कीजिये !

पद-पदपर अति गहन प्रायश्चित्तों से व्याप्त होने के कारण मुझसे तो स्मार्तकर्म भी नहीं हो सकते, फिर जो द्विजकुल के लिये विहित हैं, उन ब्रह्मप्राप्ति के मार्गस्वरूप श्रौतकर्मों की तो बात ही क्या है ? धर्म में आस्था नहीं है और श्रवण-मनन के विषय में विचार ही नहीं होता, निदिध्यासन (ध्यान) भी कैसे किया जाय ? अतः हे शिव ! हे शिव ! हे शंकर ! हे महादेव ! हे शम्भो ! अब मेरा अपराध क्षमा कीजिये ! क्षमा कीजिये !

प्रातःकाल स्नान करके आपका अभिषेक करने के लिये मैं गङ्गाजल लेकर प्रस्तुत नहीं हुआ, न कभी आपकी पूजा के लिये वन से बिल्वपत्र ही लाया और न आपके लिये तालाब में खिले हुए कमलों की माला तथा गन्ध-पुष्प ही लाकर अर्पण किये। अतः हे शिव ! हे शिव ! हे शंकर ! हे महादेव ! हे शम्भो ! अब मेरा अपराध क्षमा कीजिये ! क्षमा कीजिये !

दुग्धैर्मध्वाज्ययुक्तैर्दधिसितसहितैः स्नापितं नैव लिङ्गं
नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितैः पूजितं न प्रसूनैः ।
धूपैः कर्पूरदीपैर्विविधरसयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः । क्षन्तव्यो० ॥
ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो
हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुतवहवदने नार्पितं बीजमन्त्रैः ।
नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रतजपनियमै रुद्रजाप्यैर्न वेदैः । क्षन्तव्यो० ॥
स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत्कुण्डले सूक्ष्ममार्गे
शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभवे ज्योतिरूपे पराख्ये ।

मधु, घृत, दधि और शर्करायुक्त दूध (पञ्चामृत) से मैंने आपके लिङ्ग को स्नान नहीं कराया, चन्दन आदि से अनुलेपन नहीं किया, धतूरे के फूल, धूप, दीप कपूर तथा नाना रसों से युक्त नैवेद्योंद्वारा पूजन भी नहीं किया! हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये! क्षमा कीजिये।

मैंने चित्त में शिव नामक आपका स्मरण करके ब्राह्मणों को प्रचुर धन नहीं दिया, न आपके एक लक्ष बीजमन्त्रों द्वारा अग्नि में आहुतियाँ दीं, और न व्रत एवं जप के नियम से तथा रुद्रजाप और वेदविधि से गङ्गातट पर कोई साधना ही की। अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये! क्षमा कीजिये!

जिस सूक्ष्ममार्ग से प्राप्य (प्राप्त होनेवाले) सहस्रदल कमल में पहुंचकर प्राण समूह प्रणवनाद में लीन हो जाते हैं और जहाँ जाकर वेद के वाक्यार्थ तथा तात्पर्यभूत अभिप्राय पूर्णतया आविर्भूत ज्योतिरूप शान्त परम तत्त्व में मन लीन

लिङ्गज्ञे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं शङ्करं न स्मरामि । क्षन्तव्यो०॥
नग्नो निःसङ्गशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो
नासाग्रे न्यस्तदृष्टिर्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित् ।
उन्मन्यावस्थया त्वां विगतकलिमलं शंकरं न स्मरामि । क्षन्तव्यो०॥
चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥

हो जाता है, उस काल में स्थित होकर मैं सर्वान्तर्यामी कल्याणकारी आपका स्मरण नहीं करता हूं! अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये! क्षमा कीजिये!

नग्न, निःसङ्ग, शुद्ध और त्रिगुणातीत होकर, मोहान्धकार का ध्वंस कर तथा नासिका के अग्र भाग में दृष्टि स्थिर कर मैंने आपके गुणों को जानकर कभी आपका दर्शन नहीं किया और न उन्मनी-अवस्था से कलिमलरहित आप कल्याण-स्वरूप का स्मरण ही करता हूं। अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये! क्षमा कीजिये!

चन्द्रकला से जिनका ललाट-प्रदेश भासित हो रहा है, जो कन्दर्पदर्पहारी हैं, गङ्गाधर हैं, कल्याणस्वरूप हैं, सर्पों से कण्ठ और कर्ण भूषित हैं, नेत्रों से अग्नि प्रकट हो रहा है, हस्तिचर्म की जिनकी कन्था है तथा जो त्रिलोकी के सार हैं, उन शिव में मोक्ष के लिये अपनी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों को लगा देना चाहिये; और कर्मों से क्या प्रयोजन है?

किं वाऽनेन धनेन वाजिकरिभिः प्राप्तेन राज्येन किं
किं वा पुत्रकलत्रमित्रपशुभिर्देहेन गेहेन किम् ।
ज्ञात्वैतत्क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः
स्वात्मार्थं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम् ॥

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः ।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणागतं शरणद ! त्वं रक्ष रक्षाधुना ॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे ! श्रीमहादेव ! शम्भो ! ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवापराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

इस धन, घोड़े, हाथी और राज्यादि की प्राप्ति से क्या ? पुत्र, स्त्री, मित्र, पशु, देह और घर से क्या ? इनको क्षणभङ्गुर जानकर रे मन ! दूर ही से त्याग दे, और आत्मानुभव के लिये गुरुवचनानुसार पार्वतीवल्लभ श्रीशंकरजी का भजन करो ।

देखते-देखते आयु नित्य नष्ट हो रही है, यौवन प्रतिदिन क्षीण हो रहा है ; बीते हुए दिन फिर लौटकर नहीं आते ; काल सम्पूर्ण जगत् को खा रहा है । लक्ष्मी जल की तरङ्गमाला के समान चपल है; जीवन बिजली के समान चञ्चल है; अतः मुझ शरणागत की हे शरणागतवत्सल शंकर ! अब रक्षा कीजिये ! रक्षा कीजिये !

हाथ से, पैरों से, वाणी से, शरीर से, कर्म से, कर्ण से, नेत्रों से अथवा मन से जो भी मैंने अपराध किये हों, वे विहित हों अथवा अविहित, उन सबको हे करुणासागर महादेव शम्भो ! क्षमा कीजिये । आपकी जय हो, जय हो ।

वेदसारशिवस्तवः

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ॥
महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं विभुं विश्वनाथं विभूत्यंगभूषम् ।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम् ॥
गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गवेन्द्राधिरूढं गणातीतरूपम् ।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ॥
शिवाकान्त ! शम्भो ! शशाङ्कार्धमौले ! महेशान ! शूलिन् ! जटाजूटधारिन् !
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप ! प्रसीद प्रसीद प्रभो ! पूर्णरूप ! ॥

जो सम्पूर्ण प्राणियों के रक्षक हैं, पाप का ध्वंस करनेवाले हैं, परमेश्वर हैं, गजराज का चर्म पहने हुए हैं तथा श्रेष्ठ हैं और जिनके जटाजूट में श्रीगङ्गाजी खेल रही हैं, उन एकमात्र कामारि श्रीमहादेवजी का मैं स्मरण करता हूं ।

चन्द्र, सूर्य और अग्नि तीनों जिनके नेत्र हैं, उन विरूपनयन महेश्वर, देवेश्वर, देवदुःखदलन, विभु, विश्वनाथ, विभूतिभूषण, नित्यानन्दस्वरूप, पञ्चमुख भगवान् महादेव की मैं स्तुति करता हूं ।

जो कैलासनाथ हैं, गणनाथ हैं, नीलकण्ठ हैं, बैलपर चढ़े हुए हैं, अगणित रूपवाले हैं, संसार के आदिकारण हैं, प्रकाशस्वरूप हैं, शरीर में भस्म लगाये हुए हैं, और श्रीपार्वतीजी जिनकी अर्द्धाङ्गिनी हैं, उन पञ्चमुख महादेवजी को मैं भजता हूं ।

हे पार्वतीवल्लभ महादेव ! हे चन्द्रशेखर ! हे महेश्वर ! हे त्रिशूलिन् ! हे जटाजूट-धारिन् ! हे विश्वरूप ! एकमात्र आप ही जगत् में व्यापक हैं । हे पूर्णरूप प्रभो ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये ।

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ॥
न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा ।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो न यस्याऽस्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे ॥
अजं शाश्वतं कारणं कारणानां शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥
नमस्ते नमस्ते विभो ! विश्वमूर्ते ! नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते ! ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य ! नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ! ॥

जो परमात्मा हैं, एक हैं, जगत् के आदि कारण हैं, इच्छारहित हैं, निराकार हैं और प्रणवद्वारा जानने योग्य हैं तथा जिनसे सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति और पालन होता है और फिर जिनमें उसका लय हो जाता है उन प्रभु को मैं भजता हूं।

जो न पृथ्वी हैं, न जल हैं, न अग्नि हैं, न वायु हैं और न आकाश हैं ; न तन्द्रा हैं, न निद्रा हैं, न ग्रीष्म हैं और न शीत हैं तथा जिनका न कोई देश है, न वेष है, उन मूर्तिहीन त्रिमूर्ति की मैं स्तुति करता हूं।

जो अजन्मा हैं, नित्य हैं, कारण के भी कारण, कल्याणस्वरूप हैं, एक हैं, प्रकाशकों के भी प्रकाशक हैं, अवस्थात्रय से विलक्षण हैं, अज्ञान से परे हैं, अनादि और अनन्त हैं, उन परमपावन अद्वैतस्वरूप को मैं प्रणाम करता हूं।

हे विश्वमूर्ते ! हे विभो ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे चिदानन्दमूर्ते ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे तप तथा योग से प्राप्त होनेवाले प्रभो ! आपको नमस्कार है। वेदवेद्य भगवान् ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

प्रभो ! शूलपाणे ! विभो ! विश्वनाथ ! महादेव ! शम्भो ! महेश ! त्रिनेत्र !
शिवाकान्त ! शान्त ! स्मरारे ! पुरारे ! त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ॥
शम्भो ! महेश ! करुणामय ! शूलपाणे ! गौरीपते ! पशुपते ! पशुपाशनाशिन् !
काशीपते ! करुणया जगदेतदेकस्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि ॥
त्वत्तो जगद्भवति देव ! भव ! स्मरारे ! त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड ! विश्वनाथ !
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश ! लिंगात्मकं हर ! चराचरविश्वरूपिन् ! ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतो वेदसारशिवस्तवः सम्पूर्णः ॥

हे प्रभो ! हे त्रिशूलपाणे । हे विभो ! हे विश्वनाथ ! हे महादेव ! हे शम्भो ! हे महेश्वर ! हे त्रिनेत्र ! हे पार्वतीप्राणवल्लभ ! हे शान्त ! हे कामारे ! हे त्रिपुरारे ! आपके अतिरिक्त न कोई श्रेष्ठ है, न माननीय है और न गणनीय है ।

हे शम्भो ! हे महेश्वर ! हे करुणामय ! हे त्रिशूलिन् । हे गौरीपते ! हे पशुपते ! हे पशुबन्धमोचन ! हे काशीश्वर ! एक आप ही करुणावश इस जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ; प्रभो ! आप ही इसके एकमात्र स्वामी हैं ।

हे देव ! हे शङ्कर ! हे कन्दर्पदलन ! हे शिव ! हे विश्वनाथ ! हे ईश्वर ! हे हर ! चराचर जगद्रूप प्रभो ! यह लिङ्गस्वरूप समस्त जगत् आप ही से उत्पन्न होता है, आप ही में स्थित रहता है और आप में ही लय हो जाता है ।

श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ॥
वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥

जिनके कण्ठ में साँपों का हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही जिनका अङ्गराग (अनुलेपन) है; दिशाएँ ही जिनका वस्त्र है (अर्थात् जो नग्न हैं) उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न' कारस्वरूप शिवको नमस्कार है।

गङ्गाजल और चन्दन से जिनकी अर्चा हुई है, मन्दार-पुष्प तथा अन्यान्य कुसुमों से जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दी के अधिपति प्रमथगणों के स्वामी महेश्वर 'म' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है।

जो कल्याणस्वरूप हैं, पार्वतीजी के मुखकमल को विकसित (प्रसन्न) करने के लिये जो सूर्यस्वरूप हैं, जो दक्ष के यज्ञ का नाश करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजा में बैल का चिह्न है, उन शोभाशाली नीलकण्ठ 'शि' कार स्वरूप शिव को नमस्कार है।

वसिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियों ने तथा इन्द्र आदि देवताओं ने जिनके मस्तक की पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं उन 'व' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है।

यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ॥
पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥
॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

द्वादशज्योतिर्लिङ्गात्मकस्तोत्रम्

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम् ॥

जिन्हों ने यक्षरूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं, जिनके हाथ में पिनाक है, जो दिव्य सनातन पुरुष हैं, उन दिगम्बर देव 'य' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है। जो शिव के समीप इस पवित्र पञ्चाक्षर का पाठ करता है वह शिवलोक को प्राप्त करता है वहाँ शिवजी के साथ आनन्दित होता है।

---

(१) सौराष्ट्रप्रदेश (काठियावाड़) में श्रीसोमनाथ, (२) श्रीशैलपर श्रीमल्लिकार्जुन, (३) उज्जयिनी (उज्जैन) में श्रीमहाकाल, (४) ॐकारेश्वर अथवा अमलेश्वर।

१, श्रीसोमनाथ काठियावाड़ प्रदेश के अन्तर्गत प्रभासक्षेत्र में है। अभी भारत सरकार ने भारतीय जनता के अनुरोध व सहायता से इसविशाल मन्दिर का सांस्कृतिक उद्धार किया है। इसकी विशाल मूर्ति की स्थापना भारत के राष्ट्रपति श्रीराजेन्द्र प्रसाद के करकमलों से सम्पन्न हुई है।

२, यह पर्वत मद्रास प्रान्त के कृष्णा जिले में नदी के तटपर है, इसे दक्षिण का कैलास कहते हैं। ३, श्रीमहाकालेश्वर मालवाप्रदेश में क्षिप्रा नदी के तटपर उज्जैन नगर में विराजमान हैं, उज्जैन को अवन्तिकापुरी भी कहते हैं।

परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥

(५) परली में वैद्यनाथ, (६) डाकिनी नामक स्थान में श्रीभीमशङ्कर, (७) सेतुबन्ध में श्रीरामेश्वर, (८) दारुकावन में श्रीनागेश्वर ।

१, ॐकारेश्वर का स्थान मालवा प्रान्त में नर्मदा नदी के तटपर है । उज्जैन से खण्डवा जानेवाली बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे (पश्चिम रेलवे) की छोटी लाइनपर मोरटक्का नामक स्टेशन है, वहाँ से ७ मील दूर है । यहाँ ॐकारेश्वर और अमलेश्वर के दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग है, परन्तु ये एक ही लिङ्ग के दो स्वरूप हैं ।

२, निजामराज्य के हैदराबाद नगर से इधर परमनी नामक एक जंकशन है, वहाँ से परली तक ब्रांच लाइन गयी है, इस परली स्टेशन से थोड़ी दूरपर परली ग्राम के निकट श्रीवैद्यनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग हैं । शिवपुराण में 'वैद्यनाथं चिताभूमौ' ऐसा पाठ है, इसके अनुसार संथाल परगने में ई० आई० रेलवे (पूर्वी रेलवे) के जैसीडीह स्टेशन के पास वाला वैद्यनाथ-शिवलिङ्ग ही वास्तविक वैद्यनाथज्योतिर्लिङ्ग सिद्ध होता है ; क्योंकि यही चिताभूमि है ।

३, श्रीभीमशङ्कर का स्थान बम्बई से पूर्व और पूना से उत्तर भीमा नदी के किनारे सह्यपर्वत पर है । यह स्थान लारी के रास्ते से नासिक से लगभग १२० मील दूर है । सह्यपर्वत के एक शिखर का नाम डाकिनी है । इससे अनुमान होता है कभी यहाँ डाकिनी और भूतों का निवास था । शिवपुराण की एक कथा के आधार पर भीमशङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग आसाम के कामरूप जिले में ए० बी० रेलवेपर गोहाटी के पास ब्रह्मपुर पहाड़ी पर स्थित बतलाया जाता है । कुछ लोग कहते हैं कि नैनीताल जिले के उज्जनक नामक स्थान में एक विशाल शिवमन्दिर है, वही भीमशङ्कर का स्थान है । ४, श्रीरामेश्वर तीर्थ प्रसिद्ध है, यह मद्रास प्रान्त के रामनद जिले में रामनद के राजा की जमींदारी में है ।

वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये ॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥

---

(९) वाराणसी (काशी) में श्रीविश्वनाथ, (१०) गौमती (गोदावरी) के तटपर श्रीत्र्यम्बकेश्वर, (११) हिमालयपर केदारखण्ड में श्रीकेदारनाथ और (१२) शिवालय में श्रीघुश्मेश्वर को स्मरण करे। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल और सन्ध्या के समय इन बारह ज्योतिर्लिङ्गों का नाम लेता है, उसके सात जन्मों का किया हुआ पाप इन लिङ्गों के स्मरणमात्र से मिट जाता है।

५, यह स्थान बड़ौदा राज्यान्तर्गत गोमती द्वारका से ईशानकोण में बारह-तेरह मील की दूरी पर है। कोई-कोई निजाम हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत औढ़ा-ग्राम में स्थित शिवलिङ्ग को ही 'नागेश्वर' ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं। कुछ लोगों के मत से अल्मोड़ा से १७ मील उत्तर-पूर्व में यागेश (जागेश्वर) शिवलिङ्ग ही नागेश ज्योतिर्लिङ्ग है।

१, काशी के श्रीविश्वनाथ जी प्रसिद्ध ही हैं। २, यह ज्योतिर्लिङ्ग बम्बई प्रान्त के नासिक जिले में नासिक-पञ्चवटी से (जहाँ शूर्पणखा की नाक कटी थी) १८ मील की दूरी पर ब्रह्मगिरि के निकट गोदावरी के किनारे है।

३, श्रीकेदारनाथ हिमालय के केदार नामक शृङ्गपर स्थित हैं। शिखर के पूर्व की ओर अलकनन्दा के तटपर श्रीबदरीनाथजी अवस्थित हैं और पश्चिम में मन्दाकिनी के किनारे श्रीकेदारनाथजी विराजमान हैं। यह स्थान हरद्वार से १५० मील और ऋषिकेश से १३२ मील दूर है।

४, श्रीघुश्मेश्वर को घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर भी कहते हैं। इनका स्थान निजाम राज्य के अन्तर्गत दौलताबाद स्टेशन से बारह मील दूर वेरुल गाँव के पास है।

द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम् ।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये ॥
श्रीशैलशृंगे विबुधातिसंगे तुलाद्रितुंगेऽपि मुदा वसन्तम् ।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं नमामि संसारसमुद्रसेतुम् ॥
अवन्तिकायां विहितावतारं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम् ।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं वन्दे महाकालमहासुरेशम् ॥
कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे समागमे सज्जनतारणाय ।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्तमोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे ॥

जो अपनी भक्ति प्रदान करने के लिये अत्यन्त रमणीय तथा निर्मल सौराष्ट्र प्रदेश (काठियावाड़) में दयापूर्वक अवतीर्ण हुए हैं, चन्द्रमा जिनके मस्तक का आभूषण है ; उन ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप भगवान् श्रीसोमनाथ की शरण में जाता हूं ।

जो ऊँचाई के आदर्शभूत पर्वतों से भी बढ़कर ऊँचे श्रीशैल के शिखर पर, जहाँ देवताओं का अत्यन्त समागम होता रहता है, प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं तथा जो संसार-सागर से पार कराने के लिये पुल के समान हैं, उन एकमात्र प्रभु मल्लिकार्जुन को मैं नमस्कार करता हूं ।

संतजनों को मोक्ष देने के लिये जिन्होंने अवन्तिपुरी (उज्जैन) में अवतार धारण किया है, उन महाकाल नाम से विख्यात महादेवजी को मैं अकालमृत्यु से बचने के लिये नमस्कार करता हूं ।

जो सत्पुरुषों को संसारसागर से पार उतारने के लिये कावेरी और नर्मदा के पवित्र संगम के निकट मान्धाता के पुर में सदा निवास करते हैं, उन अद्वितीय कल्याणमय भगवान् ॐकारेश्वर का मैं स्तवन करता हूं ।

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने सदा वसन्तं गिरिजासमेतम् ।
सुरासुराराधितपादपद्मं श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि ॥

याम्ये सदंगे नगरेऽतिरम्ये विभूषितांगं विविधैश्च भोगैः ।
सद्भक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

महाद्रिपार्श्वे च तटे रमन्तं सम्पूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः ।
सुरासुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः केदारमीशं शिवमेकमीडे ॥

सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं गोदावरीतीरपवित्रदेशे ।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे ॥

जो पूर्वोत्तर दिशा में चिताभूमि (वैद्यनाथ-धाम) के भीतर सदा ही गिरिजा के साथ वास करते हैं, देवता और असुर जिनके चरण-कमलों की आराधना करते हैं, उन श्रीवैद्यनाथ को मैं प्रणाम करता हूं ।

जो दक्षिण के अत्यन्त रमणीय सदङ्ग नगर में विविध भोगों से सम्पन्न होकर सुन्दर आभूषणों से भूषित हो रहे हैं, एकमात्र जो ही सद्भक्ति और मुक्ति को देनेवाले हैं, उन प्रभु श्रीनागनाथ की मैं शरण में जाता हूं ।

जो महागिरि हिमालय के पास केदारशृङ्ग के तटपर सदा निवास करते हुए मुनीश्वरों द्वारा पूजित होते हैं तथा देवता असुर, यक्ष और महान् सर्प आदि भी जिनकी पूजा करते हैं, उन एक कल्याणकारक भगवान् केदारनाथ का मैं स्तवन करता हूं ।

जो गोदावरीतट के पवित्र देश में सह्यपर्वत के विमल शिखर पर वास करते हैं, जिनके दर्शन से तुरन्त ही पातक नष्ट हो जाता है, उन श्रीत्र्यम्बकेश्वर का मैं स्तवन करता हूं ।

सुताम्रपर्णीजलराशियोगे निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः ।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं रामेश्वराख्यं नियतं नमामि ॥
यं डाकिनीशाकिनिकासमाजे निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च ।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं तं शङ्करं भक्तहितं नमामि ॥
सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥
इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन् समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम् ।
वन्दे महोदारतरस्वभावं घृष्णेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये ॥
ज्योतिर्मयद्वादशलिंगकानां शिवात्मनां प्रोक्तमिदं क्रमेण ।
स्तोत्रं पठित्वा मनुजोऽतिभक्त्या फलं तदालोक्य निजं भजेच्च ॥

॥ इति श्रीमद्द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा ताम्रपर्णी और सागर के संगम में अनेक बाणों द्वारा पुल बाँधकर स्थापित किये गये, उन श्रीरामेश्वर को मैं नियम से प्रणाम करता हूं। जो डाकिनी और शाकिनीवृन्द में प्रेतोंद्वारा सदैव सेवित होते हैं, उन भक्तहितकारी भगवान् भीमशङ्कर को मैं प्रणाम करता हूं।

जो स्वयं आनन्दकन्द हैं और आनन्दपूर्वक आनन्दवन (काशीक्षेत्र) में वास करते हैं, जो पापसमूहों का नाश करनेवाले हैं, मैं उन अनाथों के नाथ काशीपति विश्वनाथ की शरण में जाता हूं। जो इलापुर के सुरम्य मन्दिर में विराजमान होकर समस्त जगत् के आराधनीय हो रहे हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही उदार है, उन घृष्णेश्वर नामक ज्योतिर्मय भगवान् शिव की मैं शरण में जाता हूं।

यदि मनुष्य क्रमशः कहे गये इन द्वादश ज्योतिर्मय शिवलिङ्गों के स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करे तो इनके दर्शन से होनेवाला फल प्राप्त कर सकता है।

श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम् ।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं चिदाकारमाकाशवासं भजेऽहम् ॥
निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशम् ।
करालं महाकालकालं कृपालं गुणागारसंसारपारं नतोऽहम् ॥
तुषाराद्रिसंकाशगौरं गभीरं मनोभूतकोटिप्रभासी शरीरम् ।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारुगंगा लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजंगा ॥
चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालं प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालम् ।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि ॥

हे ईशान ! मैं मुक्तिस्वरूप, समर्थ, सर्वव्यापक, ब्रह्मवेदस्वरूप जन्मरहित, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, अनन्तज्ञानमय और आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त प्रभु को प्रणाम करता हूं।

जो निराकार हैं, ओङ्काररूप आदिकारण हैं; तुरीय हैं, वाणी और बुद्धि के पथ से परे हैं, कैलासनाथ हैं, पापियों के लिये कराल और भक्तों के हेतु दयालु हैं, महाकाल के भी काल हैं, गुणों के आगार और संसार से तारनेवाले हैं, उन भगवान् को मैं नमस्कार करता हूं।

जो हिमालय के समान श्वेतवर्ण, गम्भीर और करोड़ों कामदेव के समान कान्तिमान् शरीरवाले हैं, जिनके मस्तक पर मनोहर गङ्गाजी लहरा रही हैं, भालदेश में बालचन्द्रमा सुशोभित होते हैं और गले में सर्पों की माला शोभा देती है।

जिनके कानों में कुण्डल हिल रहे हैं, जिनके नेत्र सुन्दर और विशाल हैं, जिनका मुख प्रसन्न और कण्ठ नील है, जो बड़े ही दयालु हैं, जो बाघ की चर्म का वस्त्र और मुण्डों की माला पहनते हैं, उन सर्वाधीश्वर प्रियतम शिव का मैं भजन करता हूं।

प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशमखण्डं भजे भानुकोटिप्रकाशम् ।
त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिं भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम् ॥
कलातीतकल्याणकल्पान्तकारी सदा सज्जनानन्ददाता पुरारिः ।
चिदानन्दसन्दोहमोहापहारी प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारिः ॥
न यावदुमानाथपादारविन्दं भजन्तीह लोके परे वा नराणाम् ।
न तावत्सुखं शान्तिसन्तापनाशं प्रसीद प्रभो ! सर्वभूताधिवास ! ॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां नतोऽहं सदा सर्वदा देव ! तुभ्यम् ।
जराजन्मदुःखौघतातप्यमानं प्रभो पाहि शापान्नमामीश ! शम्भो ! ॥

जो प्रचण्ड, सर्वश्रेष्ठ, प्रगल्भ, परमेश्वर, पूर्ण, कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान, त्रिभुवन के शूलनाशक और हाथ में त्रिशूल धारण करनेवाले हैं उन भावगम्य भवानीपति का मैं भजन करता हूं।

हे प्रभो ! आप कलारहित, कल्याणकारी और कल्प का अन्त करनेवाले हैं। आप सर्वदा सत्पुरुषों को आनन्द देते हैं, आपने त्रिपुरासुर का नाश किया था, आप मोहनाशक और ज्ञानानन्दघन परमेश्वर हैं, कामदेव के आप शत्रु हैं, आप मुझपर प्रसन्न हों, प्रसन्न हों।

मनुष्य जबतक उमाकान्त महादेवजी के चरणारविन्दों का भजन नहीं करते, उन्हें इहलोक या परलोक में कभी सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं होती और और न उनका सन्ताप ही दूर होता है। हे समस्त भूतों के निवासस्थान भगवान् शिव ! आप मुझपर प्रसन्न हों।

हे प्रभो ! हे शम्भो ! हे ईश ! मैं योग, जप और पूजा कुछ भी नहीं जानता, हे देव ! मैं सदा आपको नमस्कार करता हूं। जरा, जन्म और दुःखसमूह से सन्तप्त होते हुए मुझ दीन की आप शाप से रक्षा कीजिये।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

॥ इति श्रीगोस्वामितुलसीदासकृतं श्रीरुद्राष्टकं सम्पूर्णम्॥

शिवाष्टकम्

तस्मै नमः परमकारणकारणाय दीप्तोज्ज्वलज्वलितपिङ्गललोचनाय।
नागेन्द्रहारकृतकुण्डलभूषणाय ब्रह्मेन्द्रविष्णुवरदाय नमः शिवाय॥
श्रीमत्प्रसन्नशशिपन्नगभूषणाय शैलेन्द्रजावदनचुम्बितलोचनाय।
कैलासमन्दरमहेन्द्रनिकेतनाय लोकत्रयार्तिहरणाय नमः शिवाय॥

जो मनुष्य भगवान् शंकर की तुष्टि के लिये ब्राह्मण द्वारा कहे हुए इस रुद्राष्टक का भक्तिपूर्वक पाठ करते हैं, उनपर शङ्करजी प्रसन्न होते हैं।

जो कारण के भी परम कारण हैं, (अग्निशिखा के समान) अति देदीप्यमान उज्ज्वल और पीले नेत्रोंवाले हैं, सर्पराजों के हार-कुण्डलादि से भूषित हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि को भी वर देनेवाले हैं उन श्रीशङ्कर को नमस्कार करता हूं।

शोभायमान एवं निर्मल चन्द्रकला तथा सर्प ही जिनके भूषण हैं, गिरिराज-कुमारी अपने मुख से जिनके लोचनों का चुम्बन करती हैं, कैलास और महेन्द्रगिरि जिनके निवासस्थान हैं तथा जो त्रिलोकी के दुःख को दूर करनेवाले हैं उन श्रीशङ्कर को नमस्कार करता हूं।

पद्मावदातमणिकुण्डलगोवृषाय कृष्णागरुप्रचुरचन्दनचर्चिताय ।
भस्मानुषक्तविकचोत्पलमल्लिकाय नीलाब्जकण्ठसदृशाय नमः शिवाय ॥

लम्बत्सपिंगलजटामुकुटोत्कटाय दंष्ट्राकरालविकटोत्कटभैरवाय ।
व्याघ्राजिनाम्बरधराय मनोहराय त्रैलोक्यनाथनमिताय नमः शिवाय ॥

दक्षप्रजापतिमहामखनाशनाय क्षिप्रं महात्रिपुरदानवघातनाय ।
ब्रह्मोर्जितोर्ध्वगकरोटिनिकृन्तनाय योगाय योगनमिताय नमः शिवाय ॥

संसारसृष्टिघटनापरिवर्तनाय रक्षःपिशाचगणसिद्धसमाकुलाय ।
सिद्धोरगग्रहगणेन्द्रनिषेविताय शार्दूलचर्मवसनाय नमः शिवाय ॥

जो स्वच्छ पद्मरागमणि के कुण्डलों से किरणों की वर्षा करनेवाले, अगरु और बहुत-से चन्दन से चर्चित तथा भस्म, प्रफुल्लित कमल और जूही से सुशोभित हैं, ऐसे नील कमलसदृश कण्ठवाले शिव को नमस्कार है ।

लटकती हुई पिङ्गलवर्ण जटाओं के सहित मुकुट धारण करने से जो उत्कट जान पड़ते हैं, तीक्ष्ण दाढ़ों के कारण जो अति विकट और भयानक प्रतीत होते हैं, व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं, अति मनोहर हैं तथा तीनों लोकों के अधीश्वर भी जिनके चरणों में झुकते हैं, उन श्रीशङ्कर को प्रणाम है ।

दक्षप्रजापति के महायज्ञ को ध्वंस करनेवाले, महान् त्रिपुरासुर को शीघ्र मार डालनेवाले, दर्पयुक्त ब्रह्मा के ऊर्ध्वमुख पञ्चम शिर का छेदन करनेवाले, योगस्वरूप, योग से नमस्कृत शिव को मैं नमस्कार करता हूं ।

जो कल्प-कल्प में संसार रचना का परिवर्तन करनेवाले हैं ; राक्षस, पिशाच और सिद्धगणों से घिरे रहते हैं; सिद्ध, सर्प, ग्रहगण तथा इन्द्रादि से सेवित हैं तथा जो व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं उन श्रीशङ्कर को नमस्कार करता हूं ।

१३

भस्मांगरागकृतरूपमनोहराय सौम्यावदातवनमाश्रितमाश्रिताय ।
गौरीकटाक्षनयनार्धनिरीक्षणाय गोक्षीरधारधवलाय नमः शिवाय ॥
आदित्यसोमवरुणानिलसेविताय यज्ञाग्निहोत्रवरधूमनिकेतनाय ।
ऋक्सामवेदमुनिभिः स्तुतिसंस्तुताय गोपाय गोपनमिताय नमः शिवाय ॥

शिवाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

भस्मरूपी अङ्गराग से जिन्होंने अपने रूप को अत्यन्त मनोहर बनाया है, जो अति शान्त और सुन्दर वन का आश्रय करनेवालों के आश्रित हैं, श्रीपार्वतीजी के कटाक्ष की ओर जो वाँकी चितवन से निहार रहे हैं, और गोदुग्ध की धारा के समान जिनका श्वेत वर्ण है उन श्री शङ्कर को मैं नमस्कार करता हूं।

सूर्य, चन्द्र, वरुण और पवन से जो सेवित हैं, यज्ञ और अग्निहोत्र के धूम में जिनका निवास है, ऋक्-सामादि वेद और मुनिजन जिनकी स्तुति करते हैं, उन नन्दीश्वर-पूजित गौओं का पालन करनेवाले महादेवजी को नमस्कार करता हूं।

जो इस पवित्र शिवाष्टक को श्रीमहादेवजी के समीप पढ़ता है वह शिवलोक को प्राप्त होता है और श्रीशङ्करजी के साथ आनन्द प्राप्त करता है।

श्रीगणेशाय नमः ।

शिवकवचस्तोत्रम्

अस्य श्रीशिवकवचस्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । श्री सदाशिवरुद्रो देवता । ह्रीं शक्तिः । रं कीलकम् । श्रीं ह्रीं क्लीं बीजम् । श्री सदाशिवप्रीत्यर्थे शिवकवचस्तोत्रजपे विनियोगः ।

अथ न्यासः ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ ह्रां सर्वशक्तिधाम्ने ईशानात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ नं रिं नित्यतृप्तिधाम्ने तत्पुरुषात्मने तर्जनीभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ मं रुं अनादिशक्तिधाम्ने अघोरात्मने मध्यमाभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ शिं रैं स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने वामदेवात्मने अनामिकाभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ वां रौं अलुप्तशक्तिधाम्ने सद्योजातात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ यं रः अनादि शक्तिधाम्ने सर्वात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादि न्यासः ।

अथ ध्यानम् ।

वज्रदंष्ट्रं त्रिनयनं कालकण्ठमरिन्दमम् ।
सहस्रकरमत्युग्रं वन्दे शम्भुमुमापतिम् ॥

अथापरं सर्वपुराणगुह्यं निःशेषपापौघहरं पवित्रम् ।
जयप्रदं सर्वविपत्प्रमोचनं वक्ष्यामि शैवं कवचं हिताय ते ॥

ऋषभ उवाच ।

नमस्कृत्य महादेवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् ।
वक्ष्ये शिवमयं वर्म सर्वरक्षाकरं नृणाम् ॥
शुचौ देशे समासीनो यथावत्कल्पितासनः ।
जितेन्द्रियो जितप्राणश्चिन्तयेच्छिवमीश्वरम् ॥

हृतपुण्डरीकान्तरसन्निविष्टं स्वतेजसा व्याप्तनभोऽवकाशम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं ध्यायेत्परानन्दमयं महेशम् ॥
ध्यानावधूताखिलकर्मबन्धश्चिरं चिदानन्दनिमग्नचेताः ।
षडक्षरन्याससमाहितात्मा शैवेन कुर्यात्कवचेन रक्षाम् ॥
मां पातु देवोऽखिलदेवतात्मा संसारकूपे पतितं गभीरे ।
तन्नाम दिव्यं वरमन्त्रमूलं धुनोतु मे सर्वमघं हृदिस्थम् ॥
सर्वत्र मां रक्षतु विश्वमूर्त्तिर्ज्योतिर्मयानन्दघनश्चिदात्मा ।
अणोरणीयानुरुशक्तिरेकः स ईश्वरः पातु भयादशेषात् ॥
यो भूस्वरूपेण बिभर्त्ति विश्वं पायात्सभूमेर्गिरिशोऽष्टमूर्त्तिः ।
योऽपां स्वरूपेण नृणां करोति सञ्जीवनं सोऽवतु मां जलेभ्यः ॥
कल्पावसाने भुवनानि दग्ध्वा सर्वाणि यो नृत्यति भूरिलीलः ।
स कालरुद्रोऽवतु मां दवाग्नेर्वात्यादिभीतेरखिलाच्च तापात् ॥
प्रदीप्तविद्युत्कनकावभासो विद्यावराभीतिकुठारपाणिः ।
चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्यां स्थितं रक्षतु मामजस्रम् ॥

कुठारवेदांकुशपाशशूलकपालढक्काक्षगुणान्दधानः ।
चतुर्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ॥
कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकावभासो वेदाक्षमालावरदाभयाङ्कः ।
त्र्यक्षश्चतुर्वक्त्र उरुप्रभावः सद्योऽधिजातोऽवतु मां प्रतीच्याम् ॥
वराक्षमालाभयटङ्कहस्तः सरोजकिञ्जल्कसमानवर्णः ।
त्रिलोचनश्चारुचतुर्मुखो मां पायादुदीच्यां दिशि वामदेवः ॥
वेदाभयेष्टांकुशपाशटंककपालढक्काक्षकशूलपाणिः ।
सितद्युतिः पञ्चमुखोऽवतान्मामीशान ऊर्ध्वं परमप्रकाशः ॥
मूर्धानमव्यान्मम चन्द्रमौलिर्भालं ममाव्यादथ भालनेत्रः ।
नेत्रे ममाव्याद्भगनेत्रहारी नासां सदा रक्षतु विश्वनाथः ॥
पायाच्छ्रुती मे श्रुतगीतकीर्तिः कपोलमव्यात्सततं कपाली ।
वक्त्रं सदा रक्षतु पञ्चवक्त्रो जिह्वां सदा रक्षतु वेदजिह्वः ॥
कण्ठं गिरीशोऽवतु नीलकण्ठः पाणिद्वयं पातु पिनाकपाणिः ।
दोर्मूलमव्यान्ममधर्मबाहुर्वक्षस्थलं दक्षमखान्तकोऽव्यात् ॥
ममोदरं पातु गिरीन्द्रधन्वा मध्यं ममाव्यान्मदनान्तकारी ।
हेरम्बतातो मम पातु नाभिं पायात्कटी धूर्जटिरीश्वरो मे ॥
उरुद्वयं पातु कुबेरमित्रो जानुद्वयं मे जगदीश्वरोऽव्यात् ।
जङ्घायुगं पुङ्गवकेतुरव्यात्पादौ ममाव्यात्सुरवन्द्यपादः ॥
महेश्वरः पातु दिनादियामे मां मध्ययामेऽवतु वामदेवः ।
त्रिलोचनः पातु तृतीययामे वृषध्वजः पातु दिनान्त्ययामे ॥

पायान्निशादौ शशिशेखरो मां गंगाधरो रक्षतु मां निशीथे ।
गौरीपतिः पातु निशावसाने मृत्युञ्जयो रक्षतु सर्वकालम् ॥
अन्तःस्थितं रक्षतु शङ्करो मां स्थाणुः सदा पातु बहिःस्थितं माम् ।
तदन्तरे पातु पतिः पशूनां सदाशिवो रक्षतु मां समन्तात् ॥
तिष्ठन्तमव्याद्भुवनैकनाथः पायाद्व्रजन्तं प्रमथाधिनाथः ।
वेदान्तवेद्योऽवतु मां निषण्णं मामव्ययः पातु शिवःशयानम् ॥
मार्गेषु मां रक्षतु नीलकण्ठः शैलादिदुर्गेषु पुरत्रयारिः ।
अरण्यवासादिमहाप्रवासे पायान्मृगव्याध अपारशक्तिः ॥
कल्पान्तकाटोपपटुप्रकोपस्फुटाट्टहासोच्चलिताण्डकोशः ।
घोरारिसेनार्णवदुर्निवारो महाभयाद्रक्षतु वीरभद्रः ॥
पत्त्यश्वमातङ्गरथावरूथसहस्रलक्षायुतकोटिभीषणम् ।
अक्षौहिणीनां शतमाततायिनां छिन्द्यान्मृडो घोरकुठारधारया ॥
निहन्तु दस्यून्प्रलयानलार्चिर्ज्वलत्त्रिशूलं त्रिपुरान्तकस्य ।
शार्दूलसिंहर्क्षवृकादिहिंस्रान् सन्त्रासयत्वीशधनुः पिनाकः ॥
दुःस्वप्नदुःशकुनदुर्गतिदौर्मनस्यदुर्भिक्षदुर्व्यसनदुःसहदुर्यशांसि ।
उत्पाततापविषभीतिमसद्ग्रहार्तिव्याधींश्चनाशयतु मे जगतामधीशः ॥

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सर्वमन्त्रस्वरूपाय सर्वयन्त्राधिष्ठिताय सर्वतन्त्रस्वरूपाय सर्वतत्त्वविदूराय ब्रह्मरुद्रावतारिणे नीलकण्ठाय पार्वतिमनोहरप्रियाय सोमसूर्याग्निलोचनाय भस्मोद्धू-

लितविग्रहाय महामणिमुकुटधारणाय माणिक्यभूषणाय सृष्टिस्थिति-प्रलयकालरौद्रावताराय दक्षाध्वरध्वंसकाय महाकालभेदनाय मूला-धारैकनिलयाय तत्त्वातीताय गङ्गाधराय सर्वदेवाधिदेवाय षडाश्रयाय वेदान्तसाराय त्रिवर्गसाधनायानन्तकोटिब्रह्माण्डनायकायानन्तवासुकितक्ष-ककर्कोटकशङ्खकुलिकपद्ममहापद्म त्यष्टमहानागकुलभूषणाय प्रणवस्वरूपाय चिदाकाशायाकाशदिक्स्वरूपाय ग्रहनक्षत्रमालिने सकलाय कलङ्करहिताय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकसंहर्त्रे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकलवेदान्तपारगाय सकललोकैकवरदाय सकललोकैक-शङ्कराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजावासाय निराभासाय निरामयाय निर्मलाय निर्लोभाय निर्मदाय निश्चिन्ताय निरहङ्कराय निरङ्कुशाय निष्कलङ्काय निर्गुणाय निष्काम निरुपद्रवाय निरन्तराय निष्कारणाय निरान्तकाय निष्प्रपञ्चाय निः(?) सङ्गाय निर्द्वन्द्वाय निराधाराय नीरागाय निष्क्रोधाय निर्मलाय निष्पापाय निर्भयाय निर्विकल्पाय निर्भेदाय निष्क्रि-याय निस्तुलाय निःसंशयाय निरञ्जनाय निरुपमविभवाय नित्यशुद्धबुद्धपरि-पूर्णसच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तस्वरूपाय तेजोरूपाय तेजोमयाय जय जय रुद्र महारौद्र भद्रावतार महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वाङ्गखड्गचर्मपाशाङ्कुशडमरुशूलचापबाणगदाशक्तिभिन्दिपालतोमरमुस-लमुद्गरपाशपरिघभुशुण्डिशतघ्नीचक्राद्यायुधभीषणकर सहस्रमुखदंष्ट्राकरालवद-न विकटाट्टहास विस्फारितब्रह्माण्डलनागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार नागेन्द्रवलय नागेन्द्रचर्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विश्वरूप विरूपाक्ष विश्वेश्वर

वृषभवाहन विषविभूषण विश्वतोमुख सर्वतो रक्ष-रक्ष मां ज्वल-ज्वल महामृत्यु-मपमृत्युभयं नाशय-नाशय चोरभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पभयं शमय-शमय चोरान् मारय-मारय ममशत्रूनुच्चाटय-२ त्रिशूलेनविदारय-२ कुठारेण भिन्धि-२ खड्गेन छिन्धि-२ खट्वाङ्गेन विपोथय-२ मुसलेन निष्पेषय-२ बाणैः सन्ताडय-२ रक्षांसि भीषय भीषयाशेषभूतानि विद्रावय-२ कूष्माण्डवेतालमारी-गणब्रह्मराक्षसगणान् सन्त्रासय-२ ममाभयं कुरु-२ वित्रस्तं मामाश्वासयाश्वासय नरकमहाभयान्मामुद्धरोद्धर सञ्जीवय-२ क्षुत्तृड्भ्यां मामाप्यायया-प्यायय दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छादयाच्छादय-मृत्युञ्जय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते।

ऋषभ उवाच।

इत्येतत्कवचं शैवं वरदं व्याहृतं मया।
सर्वबाधाप्रशमनं रहस्यं सर्वदेहिनाम्॥
यः सदा धारयेन्मर्त्यः शैवं कवचमुत्तमम्।
न तस्य जायते क्वाऽपि भयं शम्भोरनुग्रहात्॥
क्षीणायुः प्राप्तमृत्युर्वा महारोगहतोऽपि वा।
सद्यः सुखमवाऽऽप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति॥

ऋषभ बोले—यह वरद शिव का कवच मैंने तुम्हें बताया। यह रहस्यमय और सम्पूर्ण देहधारियों की बाधाओं को शान्त करनेवाला है। जो कोई मनुष्य इस शैवकवच को धारण करते हैं उसे भगवान् शङ्कर की दया से कहीं भी कोई भय नहीं होता! जो क्षीणायु, प्राप्तमृत्यु या महारोगी भी हो तो उसे तत्काल सुख मिलेगा और दीर्घायु प्राप्त होगी।

सर्वदारिद्र्यशमनं सौमङ्गल्यविवर्धनम् ।
यो धत्ते कवचं शैवं स देवैरपि पूज्यते ।।

महापातकसङ्घातैर्मुच्यते चोपपातकैः ।
देहान्ते मुक्तिमाप्नोति शिववर्मानुभावतः ।।

त्वमपि श्रद्धया वत्स ! शैवं कवचमुत्तमम् ।
धारय त्वं मया दत्तं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ।।

सूत उवाच ।

इत्युक्त्वा ऋषभो योगी तस्मै पार्थिवसूनवे ।
ददौ शङ्खं महारावं खड्गं चारिनिषूदनम् ।।

पुनश्च भस्म संमन्त्र्य तदङ्गं परितोऽस्पृशत् ।
गजानां षट्सहस्रस्य द्विगुणस्य बलं ददौ ।।

जो सम्पूर्ण दरिद्रता को मिटानेवाले और सौमङ्गल्य को बढ़ानेवाले इस शैव-कवच को धारण करता है उसे देवता भी पूजते हैं। वह व्यक्ति महापातक और उपपातकों से छूट जाता है और इस शिवकवच के प्रभाव से शरीर को छोड़ने पर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। हे वत्स ! तू भी इस मेरे दिये हुए उत्तम शैवकवच को श्रद्धा से धारण कर जिससे तुझे सद्यः श्रेय प्राप्त होगा।

सूत बोले—यह कहकर ऋषभ योगी ने राजा के पुत्र को महाराव शंख और शत्रुओं का नाश करनेवाली तलवार दी। फिर भस्म को मन्त्रित कर उसके शरीर के सब अङ्गों में स्पर्श करा दिया और उसे छै हजार हाथियों का दुगुना बल दिया।

भस्मप्रभावात्सम्प्राप्तबलैश्वर्यधृतिस्मृतिः ।
स राजपुत्रः शुशुभे शरदर्क इव श्रिया ॥
तमाह प्राञ्जलिं भूयः स योगी नृपनन्दनम् ।
एष खड्गो मया दत्तस्तपोमन्त्रानुभावतः ॥
शितधारमिमं खड्गं यस्मै दर्शयसे स्फुटम् ।
स सद्यो म्रियते शत्रुः साक्षान्मृत्युरपि स्वयम् ॥
अस्यशंखस्य निर्हादं ये श्रृण्वन्ति तवाहिताः ।
ते मूर्च्छिताः पतिंष्यन्ति न्यस्तशस्त्रा विचेतनाः ॥
खड्गशङ्खाविमौ दिव्यौ परसैन्यविनाशिनौ ।
आत्मसैन्यस्य पक्षाणां शौर्यतेजोविवर्धनौ ॥
एतयोश्च प्रभावेण शैवेन कवचेन च ।
द्विषट्सहस्रनागानां बलेन महताऽपि च ॥

भस्म के प्रभाव से ऐश्वर्य, धैर्य और स्मृति को पाकर वह राजपुत्र शरत्कालीन सूर्य के समान शोभित हुआ फिर हाथ जोड़ खड़े हुए उस राजपुत्र को उस योगी ने कहा।

तपस्या और मन्त्र की भावना किया हुआ यह खड्ग मैंने तुम्हें दिया है जिस सिसी को इस तेज धारवाले खड्ग को दिखलावेगा वह शत्रु रूप में मृत्यु भी क्यों न हो तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।

इस शंख की आवज को जो तेरा बुरा चाहनेवाला कोई सुनेंगे वह तुरन्त मूर्च्छित होकर शस्त्र-अस्त्रों को छोड़कर गिर जावेंगे। ये दोनों खड्ग एवं शंख शत्रु का विनाश करनेवाले हैं और अपनी सेना के शौर्य और तेज को बढ़ानेवाले हैं

भस्मधारणसामर्थ्याच्छत्रुसैन्यं विजेष्यसि ।
प्राप्य सिंहासनं पित्र्यं गोप्ताऽसि पृथिवीमिमाम् ॥
इति भद्रायुषं सम्यगनुशास्य समातृकम् ।
ताभ्यां सम्पूजितः सोऽथ योगी स्वैरगतिर्ययौ ॥
॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे शिवकवचं सम्पूर्णम् ॥

अथ शिवोपनिषत्

ॐ नमः शिवाय ॐ नमोऽस्तु शर्व्व शम्भो त्रिनेत्र चारुगात्र त्रैलोक्य-नाथ उमापते दक्षयज्ञविध्वंसकारक सकामाङ्गनाशन घोरपापप्रणाशन महापुरुष महोग्रमूर्ते सर्वसत्त्वक्षयङ्कर शुभङ्कर महेश्वर त्रिशूलधर स्मरारे गुहाधामन् दिग्वासः महाशङ्खशेखर जटाधर कपालमालाविभूषितशरीर वामचक्षुः क्षुभितदेवप्रजाध्यक्ष भगाक्ष्णोः क्षयङ्कर भीमसेननाथ पशुपते

इनके एवं भस्म के प्रभाव से तुम विजयी बनोगे, आगे अपने पिता के सिंहासन को पाकर पृथ्वी की रक्षा करोगे।

इस प्रकार भद्रायुष को माता के साथ अच्छी प्रकार समझाकर उनके द्वारा वह योगी पूजा गया और अपने-आप चला गया।

कामाङ्गदहन चत्वरवासिन् शिव महादेव ईशान शङ्कर भीमभव वृषध्वज कैटभ प्रौढ़ महानाथेश्वर भूतिरत अविमुक्तक रुद्ररुद्रेश्वर स्थाणो एकलिङ्ग कालिन्दीप्रिय श्रीकण्ठनीलकण्ठ अपराजित रिपुभयङ्कर सन्तोषपते वामदेव अघोर तत्पुरुष महाघोर अघोरमूर्त्ते शान्त सरस्वतीकान्त सहस्रमूर्त्ते महोद्भव विभो कालाग्ने रुद्ररौद्र हर महीधरप्रिय सर्व्वतीर्थाधिवास हंस कामेश्वर केदार अधिपते परिपूर्ण मुचुकुन्द मधुनिवास कृपाणपाणे भयङ्कर विद्याराज सोमराज कामराज महीधरराजकन्याहृदब्जवसते समुद्रशायिन् गयामुख गोकर्ण ब्रह्मयोने सहस्रवक्त्राक्षिचरण हाटकेश्वर नमस्ते नमस्ते ।

॥ इति शिवोपनिषत् ॥

अथ शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः ।
वामदेवो विरूपाक्षः कपर्द्दी नीललोहितः ॥
शङ्करः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः ।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः ॥
भवः शर्व्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः ।
उग्रः कपाली कामारिरन्धकासुरसूदनः ॥
गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः ।
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्ज्जटाधरः ॥

कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः ।
वृषाङ्को वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥
सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः ।
सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः ॥
हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः ।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः ॥
हिरण्यरेता दुर्द्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः ।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः ॥
कृत्तिवासाः पुरारातिर्भगवान्प्रमथाधिपः ।
मृत्युञ्जयः सूक्ष्मतनुर्ज्जगद्व्यापी जगद्गुरुः ॥
व्योमकेशो महासेनजनकश्चारुविक्रमः ।
रुद्रो भूतपतिःस्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः ॥
अष्टमूर्त्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः ।
शाश्वतः खण्डपरशुरजः पाशविमोचकः ॥
मृडः पशुपतिर्देव महादेवोऽव्ययः प्रभुः ।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः ॥
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
अपवर्ग्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः ॥
इमानि दिव्यनामानि जप्यन्ते सर्वदा मया ।
नामकल्पतलेयम्मे सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥

नामान्येतानि सुभगे शिवदानि न संशयः ।
वेदसर्व्वस्वभूतानि नामान्येतानि वस्तुतः ॥
एतानि यानि नामानि तानि सर्वार्थदान्यतः ।
जप्यन्ते सादरन्नित्यं मया नियमपूर्वकम् ॥
वेदेषु शिवनामानि श्रेष्ठान्यघहराणि च ।
सन्त्यनन्तानि सुभगे ! वेदेषु विविधेष्वपि ॥
तेभ्यो नामानि सङ्गृह्य कुमाराय महेश्वरः ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु नाम्नामुपदिशत्पुरा ॥

॥ इति शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

इन दिव्य नामों को मैं सदा जपता हूं। यह शतनामकल्पलता अभीष्टप्रदान करती है। हे सुभगे! ये नाम निःसन्देह शिव (कल्याण) को देनेवाले हैं। वस्तुतः ये नाम वेदों के सर्व्वस्व हैं। ये नाम सब अर्थों को देते हैं। मैं आदर से नियमपूर्वक इनका जप करता हूं।

सम्पूर्ण वेदों में भगवान् शङ्कर के श्रेष्ठ एवं पापों को नाश करनेवाले अनन्त नाम हैं उनमें से इन १०८ नामों को संग्रह कर महेश्वर ने स्कन्द स्वामी को उपदेश दिया।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ शिवमहिम्नःस्तोत्रम्

पुष्पदन्त उवाच ।

महिम्नः पारन्ते परम विदुषो यद्यसदृशी,
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्,
ममाप्येष स्तोत्रे हर! निरवादः परिकरः ॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

हे हर ! आपकी अवर्णनीय महिमा को लेकर दुर्ज्ञान विषय से भिन्न पर्यवसान को न जाननेवाले मनुष्य की स्तुति यदि आप में अनुचित है तो ब्रह्मादिगण की वाणी भी आप में अयोग्य ही सिद्ध होती है, क्योंकि ये सब भी आपकी महिमा को अणुमात्र भी नहीं जानते। अथ च सभी आपकी महिमा को जानने में असमर्थ हैं, जैसे, अपने बल के अनुसार छोटे एवं बड़े पक्षी आकाश में उड़ते हैं उनकी गति एक-सी नहीं होती, वैसे ही अपनी-अपनी क्षमता व योग्यता के अनुसार अपनी-अपनी बुद्धि की पहुंच को लेकर आपकी स्तुति करें और वह स्तव अनिन्दित नहीं होता है, वैसे ही मेरा भी आपकी स्तुति करने में यह आरम्भ निर्दोष है ।

आपकी महिमा मन और वाणी से अगोचर है अर्थात् मन और वाणी से साक्षात्कार नहीं हो सकता। ब्रह्मादि का वाङ्मनोज्ञानाधीन होने से उनके

स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः,
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः,
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन ! बुद्धिर्व्यवसिता ॥

द्वारा किसी भी रूप में वह वर्णित नहीं हो पाती। वेद ने भी अतद्व्यावृत्त्या ब्रह्म-भिन्न भेद से ही आपको बताया है जिनकी महिमा का कहीं भेद नहीं क्योंकि सब कुछ आपकी महिमा है। ऐसे भगवान् शङ्कर के अनिर्वचीय गुण होने से वे किंधर्मावच्छिन्न गुणवाले हैं, किस प्रमाण द्वारा साक्षात्कार किये जाते हैं ? जब किसी प्रकार भी गोचर नहीं तो फिर यह प्रयास क्यों है ? इसका उत्तर यही है कि चन्द्रशेखर भगवान् के साकाररूप में सब के मन एवं बुद्धि लगते है, उन्हीं साकार प्रभु के महिमा को मैं स्तवन करता हूं।

हे ब्रह्मन् ! शङ्कर भगवन् ! सुरगुरु बृहस्पति की वाणी मधु रस के समान मधुर भी आपके लिये आश्चर्यकारक नहीं ; क्योंकि वाणी से भी चरम उत्कृष्ट अमृत को आपने बनाया तो जिसकी उत्कृष्ट वाणी अमृत निर्माण का कारण हुई उसकी स्तुति में मधु के समान मधुर वाणी कोई आश्चर्य करनेवाली नहीं, कारण मधु से अमृत अधिक उत्कृष्ट आस्वाद वाला है इस बात पर, हे पुरमथन ! हे पुरारे ! आपके गुणों के कथन से ही पुण्य लाभ होगा इस बहाने से मैं अपनी गुणरूप, वाणी को पवित्र करता हूं इसीलिये आपकी स्तुति में मैं अपनी बुद्धि को लगाने को उद्युक्त (तैयार) हूं।

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्,
त्रयी वस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं,
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जड़धियः ॥
किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं,
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुस्थो हतधियः,
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥

हे वरद ! इस संसार में आपका सृष्टि, स्थिति और प्रलयकारी रूप जो प्रमुख है उसे निकालने के लिये कोई जड़बुद्धि नास्तिक मीमांसक अपनी ओर से शंका उठाते हैं, आपके ऐश्वर्य का बखान वेद करते हैं। सत्त्व, रज, तमगुणों से युक्त ब्रह्मविष्णुशिवात्मक शरीरों से युक्त आपके लिये नाना कुतर्क करते हैं और अपने आपको मनोहर तर्कों से धन्य समझते हैं। परमार्थतः ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त आपके लिये ऐसा सब प्रपञ्च अशुभ ही है।

वेद-विरुद्धवादी लोग वेदार्थ परिनिष्ठित सत्पुरुषों का कुतर्कों से उपहास्य करते हैं कि सृष्टिकर्तृत्व में कर्ता को क्या इष्ट है ? कौन शरीर है ? क्योंकि प्रलय माननेवाले के लिये सृष्टि के प्राक्क्षण में परमाणुमात्र ही रहते हैं तो किसी शरीर का अभाव होता ही है। शरीर के साथ सृष्टिकर्तृत्वबाधित है, कौन उपाय है अर्थात् घट करनेवाले कुलाल के पास दण्डचक्र, चीवर आदि उपाय निमित्त कारण से है। वैसे ही किन उपायों से सृष्टिकर्तृत्व है, आधार क्या है आदि कुतर्क किन्हीं माया से विनष्ट बुद्धिवाले लोगों को वाचाल बनाते हैं। यह सब लोगों को मोहने के लिये ही वाग्जाल है और कोई फल नहीं ; क्योंकि कुतर्क-अतर्कणीय ऐश्वर्यशाली अपरिच्छेद्य विभवसम्पन्न आप में निरवकाश होने से स्वतः बाधित हो जाता है फिर भी जगत् को मोहन करने के लिये ही यह सब प्रपञ्च है।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो,
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्मफणिनः,

हे अमर वर! सावयवादिक्षित्यादि सभी क्या जन्महीन हैं? इस प्रकार जन्मरूप से अनुमीयमान जगत् का जन्मविधान करनेवाले की उपेक्षा कर क्या होता है? ईश्वर के विना कौन व्यक्ति संसार की उत्पत्ति के लिये आरम्भ कर सकता है। जो व्यक्ति भूतभविष्यद्वर्तमान ज्ञान से अनभिज्ञ ईश्वर से इतर हैं, उनके द्वारा चतुर्दश भुवनों की रचना असम्भव है। अतः हे सर्वज्ञ! वे सब मोहयुक्त होकर आपकी सृष्टिकर्तृता में सन्देह करते हैं।

यद्यपि वेदत्रयी, सांख्य, योगशास्त्र, पाशुपत और वैष्णशास्त्र सभी के द्वारा प्रतिपादित मार्ग विभिन्न है कोई इस मार्ग को अच्छा कहते हैं, कोई उस मार्ग को अच्छा वताते हैं। विभिन्न मार्गों के अनुयायी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप से एक दूसरे से वैमत्य रखते हैं, फिर भी जैसे सम्पूर्ण नदियों के लिये समुद्र ही गन्तव्य है वैसे ही आप अकेले ही उन सबके गम्य है, लक्ष्य है।

हे वरद! एक बड़ा बैल, एक खट्वाङ्ग, एक कुल्हाड़ी, व्याघ्र चर्म, भस्म, सर्प

कपालं चेतीयत्तव वरद ! तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां,
नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥
ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं,
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव,
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टामुखरता ॥
तवैश्वर्य्यं यत्नाद्यदुपरि विरिंचो हरिरधः,
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।

और मनुष्य की खोपड़ी ये आपके मुख्य पार्षद और आभूषण है। अन्यान्य देवों के ऐश्वर्य विभिन्न हैं; परन्तु आप उनको कोई विशेष महत्त्व नहीं देते इन्हें आपने ही अपने अक्षिनिक्षेप से उन्हें प्रस्तुत किया है। वास्तव में स्वात्माराम जो आत्मसाक्षात्कार में लीन रहनेवाले महापुरुष हैं, उन्हें विषयों की (सांसारिक) मृगतृष्णा किसी प्रकार भी भुलावे में नहीं डाल सकती।

कोई कहता है कि सम्पूर्ण सृष्टि स्थायी है, कोई इसे अध्रुव बताते हैं और फिर अन्यान्य मत यह कहते हैं कि संसार और इसके तत्त्वों में कुछ नित्य हैं और कुछ अनित्य हैं, परन्तु हे त्रिपुरमथन (नाशक)! मैं आपकी स्तुति में बाधा देनेवाले कई मतों से भ्रमित होता हूं। फिर भी मुझे किसी प्रकार भी शर्मलज्जा नहीं आती क्योंकि वाणी पर तो किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगता।

आपके ऐश्वर्य की माप करने के लिये आपके ज्योतिर्लिङ्ग के उपरितन भाग में ब्रह्मा और नीचे की ओर भगवान् श्री विष्णु गये फिर भी आपका पार न पा

ततो भक्ति श्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश! यत्,
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्नफलति ॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं,
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकंडूपरवशान् ।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः,
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर! विस्फूर्जितमिदम् ॥
अमुष्य त्वत्सेवा समधिगतसारं भुजवनं,
बलात्कैलाशेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि,

सके, परन्तु हे गिरीश ! जब वे आपकी श्रद्धा और भक्ति से प्रार्थना करने लगे तो आप उनके सामने प्रत्यक्ष आ विराजे। आप ही बताइये कि आपकी सेवा क्या कभी निष्फल जाती है ?

यद्यपि दश शिरवाले रावण ने बड़ी सरलता से तीनों लोकों को जीत लिया और अपने सारे शत्रुओं को नष्ट कर दिया। उसकी भुजायें फिर भी युद्ध के लिये फड़कती थी और विजयोन्माद में वह अन्य लोकों के जीतने में भी उत्सुक था हे हर ! यह सब आप में अप्रतिम श्रद्धा और अपने नौ सिरों को आपके चरण-कमलों में मानों नव पद्मदल के समान ही पूजोपहार में अर्पण कर दिया उसीका फल है।

हे हर ! आपकी सेवा से प्राप्त बाहुपराक्रम शक्तिवाले रावण ने जब आपके आवास कैलास को भी उखाड़ कर ले जाने का व्यापार किया तो आपने उसकी स्थिति अपने अंगूठे के अग्रभाग से दबाकर बहुत ही क्षुद्र बना दी जब तक

प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयन ! विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो,
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः ॥

कि वह आपके यहाँ से लंका में न आ गया। वस्तुतः यही ठीक है कि खल-पुरुष समृद्धि में अपने ऐश्वर्य के मूलकारण को भूल जाते हैं।

हे वरदायक शंकर ! इसमें किसी प्रकार के आश्चर्य की बात नहीं कि बाण ने तीनों लोकों को अपना भृत्य बना डाला और इन्द्र के स्वर्ग को जीत लिया क्योंकि उसने आपके चरणों की सेवा की। संसार में जो व्यक्ति आपको नतमस्तक होता है उसके लिये क्या समृद्धि उपलब्ध नहीं होती अर्थात् सब ऐश्वर्य मिलता है।

हे त्रिनयन शिव ! असमय में विष के प्रवाह वेग से सम्भावित जो ब्रह्माण्डों का नाश उस आशंका से चकित देवासुरों पर आपने जो कृपावश होकर विष को कण्ठ में धारण किया वह कालिमा आप ही की शोभा का कारण हुई। संसार विनाश से बचे इस प्रवृत्तिवाले महानुभावों का विकार भी श्लाघ्य ही होता है। (आपका यह सब काम ही श्लाघ्य है)।

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे,
निवर्त्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश! त्वामितरसुरसाधारणमभूत्,
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यःपरिभवः ॥

हे ईश! कामदेव के बाण देवता, असुर और चेतन प्राणीवर्ग को सफलतापूर्वक कामवश में कर देते हैं, परन्तु जब उसने भी आपको अन्य देवगण के समान आप पर अपना प्रभाव जमाना चाहा तो स्वयं आपके तीसरे नेत्र द्वारा कथावशेष कर दिया गया। वशी पुरुषों के ऊपर किसी प्रकार का आक्रमण अच्छा नहीं। *

---

*तारक दैत्य ने सब देवों को स्वर्ग से निकाल दिया, तब दुःखी होकर सब ब्रह्मा के पास गये, उन्होंने उस असुर की शक्ति का कारण स्वयं को बतलाया और उसे संहार करने की असमर्थता कही; क्योंकि विष का वृक्ष अपने लगाकर आप ही कोई नाश नहीं करता। उन्होंने एक उपाय बताया जिससे कामदेव को भेजकर शंकरजी के योगाभ्यास में विघ्न डालकर उन्हें माता पार्वती से सहवास करने को लुब्ध करें जिससे उत्पन्न पुत्र तारकासुर का विनाश करेगा। इन्द्रने काम को अपनी स्त्री रति एवं वसन्तादिक के साथ कैलास पर्वत पर शिवजी के योग में भंङ्ग करने भेजा। अकस्मात् त्रिदेवों के प्रयास से वहां वसन्त का आगमन हो गया, कामदेव वृक्ष के पीछे अपना धनुषबाण लेकर तैयार हो गया। जब पार्वतीजी अपनी दैनिक सेवा में लगी थी और शंकरजी के हाथ में पुष्प रख रही थी कामदेव ने अपना बाण छोड़ा। इसी समय काम के वशीभूत शंकरजी का वीर्यपात गया और इससे आश्चर्य-चकित व क्रोधित होकर उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला, इससे काम भस्म हो गये। शिव का वीर्य अग्नि में गिरा, गुह्य ने इसे धारण करने में असमर्थता प्रकट कर

महीपादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदम्,
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताड़िततटा,
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ।।

हे ईश ! आप संसार की रक्षा के लिये ताण्डव नृत्य करते हैं, आपके पैरों के आघात से पृथ्वी सहसा ही प्रलयकाल उपस्थित होने की अवस्था में संशयग्रस्त हो जाती है । उसी प्रकार आकाश भी अपने चन्द्र, सूर्य नक्षत्रादि तारागणों से आपकी वलवती सुदीर्घ भुजाओं के लपेट में आकर संशयापन्न सङ्कटकालीन स्थिति का सामना करता है और आपके जटा के बालों के मर्माघात से पीड़ित स्वर्ग भी अस्वस्थ अवस्था का अनुभव करता है । अहो, आपकी इस प्रकार की विभुता प्रतिकूल ही है, परन्तु इसमें भी गूढ़ रहस्य छिपा है संसार का कल्याण । ॐ

गंगाजी में छोड़ दिया और गङ्गा ने भी इसके तेज को न सहकर इसे शरों के जंगल में छोड़ दिया तभी से कार्तिकेय को शरजन्मा कहा जाता है । वही देवों के अधिपति सेनानी कार्तिकेय तारकासुर का बध करनेवाले हुए । श्लोक में यह भाव दिखाया गया है कि काम ने सब धान एक पसेरीवाली कहावत से सब देवताओं के समान शंकर को भी काम के वश में करने का प्रयत्न किया ; परन्तु योगीश्वर शंकर पर वह असमर्थ रहा । अन्ततः उसे अपने-आपको जीवन से हाथ धोना पड़ा, इसी लिये वशी लोगों को मोहवश कामावेश में डालना विपद् जनक है ।

ॐ एक बार एक राक्षस ने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर उनसे यह वर

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः,
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥

हे ईश ! गङ्गा का जो प्रवाह मन्दाकिनी के समान आकाशव्यापी है, उसमें असंख्य तारागणों के समान उच्छलित जल में अगणित फेनों के समूह से सुन्दर शोभा हो रही है वह प्रवाह आपकी जटा में बिन्दु से भी छोटे रूप में लोगों को दीखता है। उसी भगवती गङ्गा के प्रवाह ने महीमण्डल को जलधिवलय द्वीपाकार बना दिया, अर्थात् समुद्रों को अगस्त्य द्वारा सुखा दिये जाने पर भगीरथ द्वारा लाये गये गङ्गाजल से ही अखण्ड महीतल में फिर से सात द्वीपों के वलयं के रूप में उनका आविर्भाव हुआ। इस प्रकार आपका सदानन्दात्मक शरीर अलौकिक महिमा सम्पन्न एवं सभी से अतीव महत्तर जानना चाहिये। वास्तव में जिसके शिर में गङ्गा का प्रवाह बिन्दु से भी अल्प दीखता है और वह आकाश व्यापी एवं समुद्रों कों भरनेवाला है उन भगवान् शङ्कर के शरीर की इयत्ता अवधारण नहीं की जा सकती प्रभु की महत्ता अपरिमेय है।

मांगा कि मैं संसार का नाश करूं। ब्रह्मा ने टाल-मटोल की . परन्तु वह दुष्ट अपनी मांग के लिये अड़ा रहा, तब ब्रह्मा ने कालान्तर में करने को कहा। इसको सुनते ही सब देवगण शंकर की शरण में गये और अपना दुःख कहा। इसे सुनकर भगवान् त्रिपुरारि शंकर ने असुर के वरदान के नियमित समय को टालने के लिये ताण्डव नृत्यलीला की, जिससे संसार को विनाश से बचाया जा सका, यह पौराणिक गाथा प्रसिद्ध है।

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो,
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा,
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर! जागर्त्ति जगताम् ॥

हे भगवन्! त्रिपुररूपी तृण को भस्म करने के लिये आपने यह कैसी आडम्बर की परिपाटी अपनायी देखिये तो सही। आपने पृथ्वी को रथ बनाया, इन्द्र को सारथी, पर्वत प्रधान मेरु का धनुष, चन्द्र और सूर्य को रथ के पहिये, चक्रपाणि विष्णु को बाण बनाया। इच्छामात्र से त्रिभुवन का संहार करनेवाले आपके लिये नख से छेदने योग्य वस्तु में कुठार का (कुल्हाड़ी) प्रयोग उचित तो नहीं परन्तु जरा बुद्धि पर जोर दिया तो समझ में आया कि स्वामी की बुद्धियां वशीभूत द्रव्यों से क्रीड़ा करने में सदा ही स्वतन्त्र रहती हैं।

हे त्रिपुरहर शम्भो! विष्णु ने आपके चरणों में एक हजार कमल के पुष्पों को पूजा के उपहार में समर्पण करने के लिये एकत्रित किया। उस समय जब एक कमल की त्रुटि देखी तो उन्होंने अपना नेत्र कमल निकाल कर प्रभु के अर्पण कर दिया वही आपकी भक्ति का अतिशयत्व चक्ररूपी शरीर में बदल दिया गया और आज भी स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल तीनों लोकों की आपत्ति में रक्षा करने के लिये जागरूकता से प्रवृत्त है। विष्णु की अतिशय भक्ति ही मूर्ति-मान सुदर्शन चक्र के रूप में सम्पूर्ण त्रिलोकी की रक्षा में उपस्थित है, आपकी भक्ति से विष्णु को सुदर्शन चक्र की प्राप्ति सृष्टि के रक्षणार्थ हुई यह स्पष्ट है।

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमताम्,
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं,
श्रुतौ श्रद्धां वद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसुजनः॥
क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद! सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो-
ध्रुवं कर्त्तुः श्रद्धा विधुरमभिचाराय हि मखाः॥

हे देव! यज्ञों की फलदान कर्तृत्व शक्ति के अधिपति आप ही हैं, कारण याग सब क्रियात्मक हैं। अतः उनका उत्पन्न होना प्रध्वंसित्व और नष्टत्व है, क्रतु के विनष्ट होने पर याज्ञिकों को स्वर्गादि सम्बन्ध का फल देने में आप ही सावधान हैं, क्योंकि विनष्ट कर्मों का फल ईश्वराराधन बिना कहां फलीभूत होता है? कहीं भी नहीं। अतः सभी लोग यज्ञों में फल देनेवाले आपको विचार कर ही वेद-वाक्यों में विश्वासपूर्वक श्रद्धा कर यज्ञयागादि क्रियाओं में प्रयत्न करते हैं क्योंकि आप ही उनके मूल में फलदाता हैं, उपरोक्त कथन को ही दृष्टान्त से पुष्ट करते हैं।

हे शरण देनेवाले महादेव! दक्षप्रजापति जिस यज्ञ में क्रतुपति और वह भी सम्पूर्ण यज्ञ क्रियाओं में कुशल तथा शरीरधारियों का राजा यजमान हुआ, वसिष्ठादि ऋषियों ने पौरोहित्य (ऋत्विक् कर्म) किया। ब्रह्मादि देवगण विधि को देखनेवाले सदस्यगण बने, ऐसे यज्ञ में यज्ञों के विधान के रसिक आप से नाश का रूप उपस्थित हुआ। कारण स्पष्ट है—श्रद्धा से हीन लोगों से किये गये यज्ञ हिंसार्थक ही होते हैं यह निश्चित है।

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं,
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं,
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्राय तृणवत्,
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन ! पुष्पायुधमपि ।

ऐसे साधनसम्पन्न यज्ञों में भी आपके आराधन न होने से फल नहीं हुआ तभी यज्ञफल में आपका आराधन निश्चय ही कारण है—दक्ष ने यज्ञ में आपका अनादर कर दूसरे-दूसरे देवों को बुलाकर यज्ञ करवाया। अपनी कन्या सती ने पति के अपमान को सहन न कर सकने के कारण शरीर त्याग दिया, इसी पर क्रुद्ध शिव ने वीरभद्रादि को भेजकर यज्ञ विध्वंस करवाया—तत्तत्पुराणों में प्रसिद्ध है।

हे नाथ! मृग के पीछे जैसे व्याघ्र दौड़ता है वैसे प्रजानाथ ब्रह्मा के पीछे आज भी आप आकाश में अपनी पुत्री सन्ध्या को अतिसुन्दरी देख, कामवश मोहित होकर हरिणी के रूप में दौड़ती देख स्वयं हरिण बनकर रमण करने के लिये पीछे दौड़ते देख, उसका यह अपनी कन्या पर बलात्कार अशोभनीय है ऐसा सोचकर अपना बाण छोड़ दिया जिससे आज भी आपके बाण से डरे हुए ब्रह्मा का मृगशिरा नक्षत्र के रूप में आकाश में तारागणों में स्थान है।

हे पुरमथन ! हे वरद ! अपने ही सामने तृण के समान पुष्पों के धनुष-बाण-धारी कामदेव को जलते देखकर भी पार्वती को अपने सौन्दर्य सौकुमार्य एवं लावण्य की अधिकाधिक मनुहार ही नहीं, अर्थात् स्वरूपाभिमानिनी ही रही

यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना-
द्वैति त्वामद्धा बत वरद ! मुग्धा युवतयः ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर ! पिशाचाः सहचराः,
चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं,
तथापि स्मर्तॄणां वरद ! परमं मङ्गलमसि ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमभिधायात्तमरुतः,
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः ।

आपने अपने अर्धनारीश्वर रूप में उन्हें जो स्थान दिया उससे वे यही समझती हैं कि भगवान् शङ्कर कितने ही देवों को जलावें, मेरे तो वशीभूत ही है, स्त्रैण हैं, परन्तु संयम से आसादित आपके अर्धशरीर में उन्हें स्थान दिये जाने की चेष्टा से वे अनभिज्ञ हैं। संसार भर में स्त्रियां अज्ञ होती है, यह निश्चित है।

हे काम को भस्म करनेवाले वरद ! श्मशानों में मृतक के दाह किये जानेवाले स्थानों में आपकी क्रीड़ायें होती हैं। आपके प्रेतगण अनुचर हैं, चिता की राख की ढेरी से आपके शरीर का लेपन होता है, मनुष्यों की मुण्डमाला आपके गले में रहती है। ये सब आपके सहज उपकरण अमङ्गल्य है, अमाङ्गलिक हैं, इनके साथ ही आपको नाम भी वैसे ही दिये गये हैं, कपालभृत् आदि, फिर भी आपकी स्तुति करनेवालों के लिये आप सदा ही उत्कृष्ट मङ्गल की सृष्टि करते हैं।

योगीजन अच्छी प्रकार मनोयोग कर किसी अनिर्वचनीय ब्रह्मरूप सच्चिदानन्दमय का ध्यान अमृत स्वरूप जलाशय में डूबकियां लगा-लगा कर सुख को प्राप्त करते हैं वह तत्त्व आप ही हैं। ऐसे योगी लोग समाधिगम्य अन्तःकरण शुद्धि

यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये,
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं,
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥

की प्राप्ति योगसाधन द्वारा प्राणादि वायु को रोककर पुलकित रोमाञ्च होकर आनन्दाश्रुओं से गद्‌गद् होकर अहर्निश ध्यानमग्न रहते हैं उनके एकमात्र ध्येय आप ही हैं ।

आप में परमार्थ को जानने के रूप में स्वयं को समझनेवाले पण्डितगण आप अर्क (सूर्य) हैं, आप सोम (चन्द्र) है, आप पवन (हवा) हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं और आप सत्‌चिन्मय विच्छित्ति रूप आत्मा हैं आदि परिमित वाणी से आपकी स्थापना करते हैं परन्तु हमारे जैसे स्थूलदर्शी, स्थूलबुद्धि अनिपुण लोग तो आपके बिना कोई भी वस्तु संसार में नहीं है ऐसा जानते हैं यह ध्रुव सिद्धान्त है। सूर्यादि अष्टमूर्ति बतानेवालों के मत में आप परिमित और हमारे मत से आप सर्वमय है। अतः अपरिमित हैं, आपकी महिमा का गुणगान अशक्य है।❋

❋ यहाँ भगवान् की अष्टमूर्ति क्रमशः ईशान, महादेव, उग्र, रुद्र, भव, भीम, शर्व और पशुपति मूर्ति यजमान का वर्णन किया गया है।

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरान्,
अकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृतिः ।

तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः,
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद ! गृणात्योमिति पदम् ।।

भवः शर्वो रुद्रः पशुपति रथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।

हे शिव ! ओ३म् यह पद ओङ्कार स्वरूप है जब यह अकार-उकार और मकार तीनों वर्णों से मिलित होता है, तो सूक्ष्म नादों से युक्त होकर आपकी आराधना करता है। अर्थात् ओ३म् यह समस्त पद आपके चतुर्थधाम ब्रह्म-स्वरूप आपके ब्रह्मा, विष्णु, शिव के तेज से भी अधिक है और अनिर्वचनीय नित्यानन्द स्वरूप परब्रह्म आपका ही प्रतिपादन करता है अर्थात् निर्विकार धाम का वाचक है।* जब यही व्यस्त "अ+उ+म्" से पृथग्भूत तीनों अक्षरों से प्रत्येक का विशेष अर्थ प्रकट करता है तो भी आपकी ही स्तुति करता है। अर्थात् त्रयी का अभिधान करनेवाले होने से त्रय्यभिन्न परब्रह्म का वाचक होगा। इसी प्रकार स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोकों का अभिधायक होने से आपको ही बताता है और तीनों देवों ब्रह्म, विष्णु तथा शिव के वाचक होने से आपका ही बोधक होता है।

हे शिव आपके भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम और ईशान ये

---

* अथासौ अकारोकारमकारात्मको मिलितः प्रणवत्वेनाविर्भूतो ब्रह्मतेजो वृणीते ।"

अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव ! श्रुतिरपि,
प्रियायाऽस्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव ! दविष्ठाय च नमो,
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर ! महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन ! यविष्ठाय च नमो,
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमोनमः,
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमोनमः ।

आठ नाम हैं। इनमें प्रत्येक में आप विद्यमान हैं और श्रुति भी प्रत्येक में प्रवर्तित होती है। ऐसे प्रिय धामवाले तेजोरूप आपको मैं प्रणाम करता हूं।

हे प्रियदावाग्ने ! सम्पूर्ण प्राणियों के अत्यन्त निकटवर्ती आपको प्रणाम है। मन और वाणी से अतीत विषयवाले होने से दुरधिगम्य अति दूरस्थ आपको प्रणाम है। हे स्मरहर ! परमाणु आदि रूप से अतिक्षुद्र आपको नमस्कार है। पर्वतादिरूप से अति महत् रूपवाले महाकाय आपको नति है। हे त्रिनयन सब के आदिभूत वृद्धतम आपको नमस्कार है। वृद्धत्व और परिणामादि दोषों से अस्पृष्ट होने से सब कार्य करने में समर्थ अतियुवक आपको नमस्कार है। अन्त में, परोक्ष और अपरोक्ष सम्पूर्ण पदार्थों के साकल्यरूप आपको प्रणाम। मन वाणी से अतीत अतिसर्व रूप आपको शतशः नति है।

सृष्टि की उत्पत्ति में अतिशय रजोगुणवाले, भव ब्रह्म (सृष्टिकर्ता) स्वरूप आपको प्रणाम है। अनिर्वचनीय तमोगुणधारी सृष्टि के संहारक हर स्वरूप

जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमोनमः,
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमोनमः ॥

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं,
क्व च तव गुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।

आपको नमस्कार। सत्वगुणधारक होने से विश्वपालक प्राणी सुखकर्ता मृड (विष्णु) को प्रणाम और प्रकृष्ट तेज * से युक्त परब्रह्म शिव को जो त्रिगुणातीत हैं उन्हें नमस्कार है।

कहाँ तो अल्पगम्य और क्लेशकर्म विपाकादि के अधीन जड़ीभूत मेरा यह मन कहां गुण सीमा को उल्लङ्घित करनेवाली आपकी यह समृद्धि, आपका स्तुति गुणानुवाद मेरे लिये असम्भव है, फिर भी मुझ भयभीत को आपके चरणकमलों में भक्ति ने अर्पण किया और हे वरद! यह आपकी सेवा में वाक्य पुष्पोपहार अर्पण करने का मैंने दुःसाहस किया।

हे ईश! नील पर्वत के समान स्याही (मषी) का ढेर समुद्र जैसे पात्र में रक्खा गया हो कल्पवृक्ष की प्रधान शाखा लेखनी बने, पृथ्वी अनन्त विस्तारवाली

---

* जब सृष्ट्यादि नहीं तो सत्त्वादिगुणों का अभाव होने से शिव निस्त्रैगुण्य पर तत्त्व रहते हैं जो परम मङ्गलमय है।

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश ! पारं न याति ॥
असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो,
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥
अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्,
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र,
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्त्तिमांश्च ॥

पत्र हो, इन चिरस्थायी लेख योग्य पदार्थों को लेकर विद्याधिष्ठात्री देवता सरस्वती युगमन्वादि सभी कालों में आपके गुणों पर बराबर अविच्छिन्न रूप से लिखती रहे तो भी गुणों का पार नहीं पायेगी। आपकी स्तुति में सरस्वती भी इयत्ता परिच्छेद नहीं कर सकती तो हमारे जैसे अल्प विषय का ज्ञान रखनेवालों के लिये यह सब आरम्भ भक्तिमूलक ही समझना चाहिये।

सब देवों में श्रेष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने असुरसुरमुनीन्द्रों से अर्थात् प्रसिद्ध गुण महिमावाले वास्तव में निर्गुण भगवान् चन्द्रमौलिशङ्कर का शिखरिणी जैसे बड़े छन्दों से या शङ्कर के महनीय चरित्रों से सुन्दर इस स्तोत्र को बनाया।

जो मनुष्य शङ्कर भगवान् के सम्पूर्ण गुणों से समृद्ध इस स्तोत्र को परम भक्ति और शुद्ध चित्त से प्रतिदिन पढ़ता है, वह इस लोक में प्रभूत धन, आयुष्य का लाभ कर पुत्रवान् व कीर्तिमान् होकर बाद में भगवान् शङ्कर रूप होकर शिवलोक में चिरकाल तक निवास करता है।

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तव पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः,
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स गुरुनिजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्,
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥

महेश से अन्यदेव नहीं, महिम्न से इतर स्तुति नहीं, अघोर मन्त्र से बड़ा कोई मन्त्र नहीं और गुरुदेव से उच्च तत्त्ववस्तु संसार में दूसरी नहीं। जैसे शङ्कर सर्वोत्तम है वैसे ही यह स्तोत्र भी।

दीक्षा—शिवमन्त्र की दीक्षा, दान—तुला पुरुषादि नानाविध दान, तप—अनशनादि नियम, तीर्थ—गङ्गादि पुण्यतीर्थों का सेवन, ज्ञान,—वेदान्त के सुनने से उत्पन्न और यज्ञादि सत्कर्म भगवान् शङ्कर के इस महिम्नस्तव पाठ की १६ वीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते—अर्थात् दीक्षादि जो गिनाई गई हैं, उनसे अधिक फल देनेवाला इस स्तोत्र का पाठ है।

पुष्पदन्त नामक सब गन्धर्वों के राजा बालचन्द्रमा को धारण करनेवाले भगवान् देवाधिदेव शंकर के दास ने भगवान् शंकर के निर्माल्य को अपने पैर के छू जाने के क्रोध से अपनी महिमा (आकाशचारी होने की) से भ्रष्ट होकर इस महिम्नस्तोत्र को अतीव मनोहर रूप में प्रस्तुत किया।

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं,
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः,
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन,
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन,
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः।
अर्पिता तेन मे देवः प्रीयतां च सदाशिवः ॥

॥ इति श्रीपुष्पदन्तविरचितं शिवमहिम्नःस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

यदि कोई व्यक्ति सुरगुरु भगवान् शंकर की पूजा कर, हाथ जोड़कर एक मन से पुष्पदन्तरचित स्वर्ग मोक्ष के हेतु शिवजी के इस स्तोत्र का अनन्यचित्त हो पांठ करता है तो वह किन्नरों से स्तुति किया गया शिवजी के समीप जाता है।

श्री पुष्पदन्त के मुखपद्म से निकले हुए पापों को हरनेवाले शंकर के प्यारे कण्ठस्थ किये गये इस स्तोत्र को मन लगाकर पढ़ने से भगवान् भूतपति महेश प्रसन्न होते हैं।

श्रीसद्भगवान् शङ्कर के चरणों में यह वाणीमयी पूजा समर्पित करता हूं, भगवान् सदाशिव इससे प्रसन्न हो।

श्रीशिवमहिमस्तोत्रम्

विष्णुरुवाच ।

महेशानन्ताद्य ! त्रिगुणरहितामेय ! विमल-
स्वराकारापारामितगुणगणाकारिनिवृते ।
निराधाराधारामरवर ! निराकार ! परम !
प्रभापूराकारावरपर नमो वेद्यशिव ! ते ॥
नमो वेदावेद्याखिलजगदुपादाननियतं
स्वतन्त्रासामन्तानवद्युतिनिराकार विरते ।
निवर्तन्ते वाचः शिवभजनमप्राप्य मनसा
यतोऽशक्ताः स्तोतुं सकृदपि गुणातीतशिव ! ते ॥
त्वदन्यं वस्त्वेकं न हि भव ! समस्तत्रिभुवने
विभुस्त्वं विश्वात्मा न च परममस्तीश ! भवतः ।

विष्णु बोले—हे महेश, अनन्त, आद्य, त्रिगुणरहित, अमेय, विमल स्वराकार, अपार, अमित, गुणगणाकारिनिवृते, निराधार के आधार, अमरश्रेष्ठ ! परम निराकार, प्रभापूराकार, अवर, हे वेद्य सदाशिव ! आपको नमस्कार है ।

हे वेदों से भी अवेद्य, सम्पूर्ण संसार के उपादान नियत स्वतन्त्र असामन्त, अनवद्युतिपूर्ण अपने आकार में विरत मन से आपके भक्ति को न पाकर वाणी लौट आती है । इसीलिये हे गुणातीत शिव ! कह एक बार भी आपकी स्तुति करने में अशक्त है ।

हे भव ! आपको छोड़ और किसी भी वस्तु का संसार में अस्तित्व नहीं है,

ध्रुवं मायातीतस्त्वमसि सततं नात्र विषयो
न ते कृत्यं सत्यं क्वचिदपि विपर्येति शिव ! ते ॥

त्वयैवेमं लोकं निखिलममलं व्याप्य सततं
तथैवान्यां लोकस्थितिमनघ ! देवोत्तम ! विभो ! ।
त्वयैवैतत्सृष्टं जगदखिलमीशान भगवन् !
विलासोऽयं कश्चित्तव शिव ! नमो वेद्यशिव ! ते ॥

जगत्सृष्टेः पूर्वं यदभवदुमाकान्त ! सततं
त्वयालीलामात्रं तदपि सकलं रक्षितमभूत् ।
तदेवाग्रे भालप्रकटनयनादद्भुतकरा-
ज्जगद्दग्ध्वा स्थास्यस्यज हर ! नमो वेद्यशिव ! ते ॥

आप विभु हैं, विश्वात्मा हैं, आपसे परतत्व और नहीं है । आप मायातीत हैं, इस संसारी जीव के आप विषय नहीं होते यह निश्चय है ।

इस सम्पूर्ण अमल-विमल संसार को व्याप्त कर आप ही स्थित हैं । हे देवोत्तम विभो ! अनघ ! सम्पूर्ण लोकस्थिति में आप ही ओत-प्रोत हैं, हे ईशान ! भगवन् आपने ही इस संसार को रचा है । यह सम्पूर्ण लीला आपके ही विलास से है, हे शिव ! हे वेद्य ! आपको नमस्कार है ।

सृष्टि के पूर्व यह सम्पूर्ण जगत् सुरक्षितरूप से रहा, सो आपकी लीलामात्र से ही रक्षा किया गया फिर संहार काल में, आपके भाल में से प्रकट हुए नेत्रों के अद्भुत ज्वाला से संसार को जलाकर आप विराजते हैं । हे अज ! हे हर ! हे वेद्य शिव ! आपको नमस्कार है ।

विभूतीनामन्तो भव न भवतो भूतिविलस-
न्निजाकार श्रीमन्नगणगुण सीमाऽप्यवगता।
अतद्व्यावृत्याद्वा त्वयि सकलवेदाश्च चकिता
भवन्त्येवासामप्रकृतिक नमो घर्षशिव! ते ।।

विराड्रूपं यत्ते सकलनिगमागोचरमभू-
त्तदेवेदं रूपं भवति किमिदं भिन्नमथवा ।
न जाने देवेश ! त्रिनयन ! सुराराध्यचरण !
त्वमोङ्कारो वेदस्त्वमसि हि नमोऽघोर शिव ! ते।।

यदन्तस्तत्त्वज्ञा मुनिवरगणा रूपमनघं
तवेदं सञ्चिन्त्य स्वमनसि सदा सङ्गविहताः ।

हे भव ! आपके ऐश्वर्य का कहीं भी पार नहीं, अपनी विभूति से विलसित निजाकर श्रीमन् ! आपकी गुणों की सीमा का भी पार नहीं पाया, आपकी महिमा अतव्यावृत्त होने से वेद भी चकित है। हे घर्ष ! अप्रकृतिक शिव आपको नमस्कार है।

हे भगवन् ! आपका विराट् रूप सकल निगम अगोचर है, यह वही रूप है कि भिन्न है। हे देवेश ! हे त्रिनयन ! देवताओं द्वारा आराध्य चरण इसका हमें कोई पता न चला, आप ही ओङ्कार हैं, वेद हैं, हे अघोर शिव ! आपको प्रणाम है !

जिनके अनघ, अमल रूप को अन्तस्तत्त्वज्ञ मुनियों में श्रेष्ठ महाभाग भी अपने

यद्युदिव्यानन्दं तदिदमथवा किन्तु न तथा
किमेतज्ज्ञानेऽहं शरणद नमः शर्व शिव ते॥

यथाशक्त्या सृष्ट्वा जगदथ च संरक्ष्य बहुधा
ततः संहृत्यैतन्निवससि तदाधारमथवा।
इदन्ते किं रूपं निरुपम न जाने हर विभो
विसर्गः को वा ते तमपि हि नमो भव्य शिव ते॥

तवानन्तान्याहुः शुचि परमरूपाणि निगमा-
स्तदन्तर्भूतं सत्सदसदनिरुक्तं पदमपि।
निरुक्तं छन्दोभिर्निलयनमिदं वाऽनिलयनं
न विज्ञातं ज्ञातं सकृदपि नमो ज्येष्ठ शिव ते॥

हृदय में ध्यान कर सदा ही असङ्ग रहते हैं वे दिव्यानन्द को प्राप्त करते हैं या नहीं, मैं इसे नहीं जानता, हे शरण देनेवाले शर्व ! आपको प्रणाम है।

अपनी शक्ति से सृष्टि को रचकर फिर उसका पालन कर और अन्त में संहार कर आप अवस्थित होकर उसके आधार है कि नहीं, ऐसे आपके रूपको हे निरुपम हर ! मैं नहीं जानता। आपका यह निर्णय भी अलौकिक है, भव्य है, आपको सदा प्रणाम है।

वेद आपके शुद्ध परमरूप अनन्त बताते हैं, उसमें भी सद्सत् निरुक्त आपका ध्यान है, वेद द्वारा प्रतिपादित यह निलयन है कि अनिलयन है, इसे न तो जाना गया न भली प्रकार अवगत किया गया। हे ज्येष्ठ शिव ! आपके अनिर्वचनीय रूप को नमस्कार है।

तवाभूत्सत्यं चानृतमपि च सत्यं कृतमभूत्-
ऋतं सत्यं सत्यं तदपि च यथा रूपमखिलम् ।
यतः सत्यं सत्यं शममपि समस्तं तव विभो
कृतं सत्यं सत्यानृतमपि नमो रुद्र शिव ते ॥

तवामेयं मेयं यदपि तदमेयं विरचितं
नवाऽमेयं मेयं रचितमपि मेयं विरचितुम् ।
न मेयं मेयन्ते न खलुपरमेयं परमयं
न मेयं नामेयं वरमपि नमो देव शिव ते ॥

तवाहारं हारं विदितमविहारं विरहसं
नवाहारं हारं हर हरसि हारं न हरसि ।

आपका असद्भासित रूप, सत्यस्वरूप अनृतभासित भी सत्स्वरूप हुआ, ऋत सत्य हुआ, सत्य सत्य हुआ। फिर भी आपसे ही सत्य समस्त मङ्गलप्रद विधान हुआ हैं। हे रुद्र शिव ! सत्यानृत अवभासित भी सत्य ही भासित होता है। यह सब आपकी महिमा है, अतः आपको नमस्कार है।

आपका अमेय रूप है, ऐसी ही अमेय रचना भी अमेय ही आपने रचित किया फिर भी मेय को भी रचने की लौकिक शक्ति में सामर्थ्य कहा, परन्तु आपका परस्वरूप न मेय न परमेय हैं। हे देव शिव ! आपके मेय रहित अमेय रहित मेयामेय उभयरहित स्वरूप को नमस्कार करता हूं।

आपका भोज्य पदार्थ अहङ्कार है और आपकी अनासक्ति प्रत्यक्ष है वा भोज्य वस्तु ही बाधक होकर बाधा को दूर कर देती है नई वस्तुओं का भोग।

न वाहारं हारं परतरविहारं परतरं
परं पारं जाने नहि खलु नमो विश्व शिव ते ॥
यदेतत्तत्वं ते सकलमपि तत्त्वेन विदितं
न ते तत्त्वं तत्त्वं विदितमपि तत्त्वेन विदितम् ।
न चैतत्तत्त्वं चेन्नियतमपि तत्त्वं किमुभवे
न ते तत्त्वं तत्त्वं तदपि च नमो वेद्यशिव ते ॥
इदं रूपं रूपं सदसदमलं रूपमपि चेन्न
जाने रूपं ते तरतम विभिन्नं परतरम् ।
यतो नान्यद्रूपं नियतमपि वेदैर्निगदितम्
न जाने सर्वात्मन्क्वचिदपि नमोऽनन्त शिव ते ॥

हे परतर ! दूसरे किसको शोभा देता है, हम पर से परतत्त्व आपको नहीं जानते हैं। हे नववस्तुओं का कल्याण करनेवाले आपको नमस्कार है।

यदि आपका यह परायापन जान लिया जाय तो सब कुछ एक ही तत्त्व से विदित हो जाता है, किन्तु इस परायेपन के तत्त्व पराया जान लिया जाने पर भी सब कुछ जाना जा सकता है, क्योंकि यदि यह सार न हो तो इस संसार में स्थिर क्या रहेगा कोई तत्त्व आप से पराया नहीं है, तथापि हे शिव ! हम अपने से भिन्न समझ आपको प्रणाम कर रहे हैं।

आपका यह रूप सदसदात्मक एवं अमल है फिर भी तर और तम से भिन्न यह परतर है। आपका अन्य रूप वेदों द्वारा कहीं प्रतिपादित नहीं है, अतः हे सर्वात्मन् ! आपका यह अविज्ञात स्वरूप जो भी हो अनन्त शिव उसे नमस्कार है।

महद्भूतं भूतं यदपि न च भूतं तव विभो
सदा भूतं भूतं किमु न भवतो भूतविषये ।
यदा भूतं भूतं भवति हि न भव्यं भगवतो
भवाभूतं भाव्यं भवति न नमो ज्येष्ठ शिव ते ।।
वशी भूता भूताः सततमपि भूतात्मकतया
न ते भूता भूतास्तव यदपि भूता विभुतया ।
यतो भूता भूतास्तव तु नहि भूतात्मकतया
न वा भूता भूताः क्वचिदपि नमो भूतशिव ते ।।

महत्तत्त्व से हुए उत्पन्न तत्त्व यद्यपि हे विभो ! आपके लिये कुछ भी नहीं हुए सदा होनेवाले तत्त्व भी क्या आपके ऐश्वर्य के विषय हो सकते हैं। जब इन तत्त्वों का तिरोधान हो जाता है तब क्या आपका अमूर्त्त रूप भव्य होकर भावी उत्पत्ति के लिये कटिबद्ध नहीं हो जाता ? हे ज्येष्ठ ! आपके कल्याण रूप को नमस्कार है ।

ये सम्पूर्ण पञ्चमहाभूत आपके वश में होने के कारण भूतात्मकता को नहीं प्राप्त हुए, यद्यपि ये आपकी शोभा को नहीं बढ़ाते तथापि ये आपके तो हो ही गये क्योंकि ये आपके होनेपर भी आपने इन्हें अपना गण नहीं बनाया। हे विभूति सम्पन्न ! ऐश्वर्यवान् शंकर कोई नहीं कह सकता कि ये हुए भी कि नहीं हुए। जो माया आपकी नहीं हैं क्योंकि आप तो मयरूपी सुख से होनेवाले सुख में लीन है, निश्चय ही माया आप में नहीं है। हे वर ! मायामय होनेपर भी यही निश्चय है। जब आप सुख देनेवाली माया में भी नहीं हैं तथापि पूर्णानन्दरूप हैं, आप अमायावी होते हुए भी अमायी हैं, ऐसे माया को उत्पन्न करनेवाले परम शिव आपको नमस्कार हैं।

न ते माया माया सततमपि मायामयतया
ध्रुवं माया माया त्वयि वर न मायामयमपि ।
यदा माया माया त्वयि न खलु मायामयतया
न मायामाया वा परमय नमस्ते शिवनमः ॥
यदन्तः सम्वेद्यं विदितमपि वेदैर्न विदितं
न वेद्यं वेद्यं चेन्नियतमपि वेद्यं न विदितम् ।
तदेवेदं वेद्यं विदितमपि वेदान्तनिकरैः
करावेद्यं वेद्यं जितमपि नमोऽतर्क्य शिव ते ॥
शिवं सेव्यं भावं शिवमतिशिवाकारमशिवं
न सत्यं शैवं तच्छिवमितिशिवं सेव्यमनिशम् ।
शिवं शान्तम्मत्वा शिवपरमतत्त्वं शिवमयं
न जाने रूपत्वं शिवमिति नमो वेद्यशिव ते ॥

सतत आप मायामय है फिर भी यह माया का विलास ही दीखता है। हे भगवन्! मायामय होनेपर भी आपमें उसका प्रभाव बिलकुल नहीं हुआ। हे परमय माया से रहित शिव आपको नमस्कार है।

आप अन्तर्वेद्य होनेपर भी वेदों द्वारा विदित नहीं, न वेद्य हैं और न अवेद्य हैं ऐसा होने पर भी नियत सत्ता का ज्ञान अभी तक नहीं है। वेदान्त में प्रतिपादित महावाक्यों के तात्पर्यार्थ में विदित आप ही वेद्य हैं, हे अतर्क्य शिव! आप करावेद्य होने से जित हैं, आपके स्वरूप को सर्वदा नमस्कार है।

आपकी आराधना करनेवाले आपके मङ्गलमय सेव्य शिवरूप को ही ध्यान करते हैं, आप अतिशिवाकार शिवतत्त्व से भी अगोचर हैं। शैवतत्त्व को जैसा वह है वैसा न जानते हुए भी आप सर्वदा सेव्य हैं, मैं तो आपके शान्त शिवमय रूप को शिवपरम तत्त्व के रूप में साक्षात्कार करता हूं। हे परमवेद्य शिव ऐसी अवस्था में आपके इत्थम्भूत स्वरूप के लिये विचिकित्सा (शङ्का) होनेपर भी आपके वेद्य शिवस्वरूप को नमस्कार करता हूं।

यदज्ञात्वा तत्त्वं सकलमपि संसारपतितं
जगज्जन्मावृत्तिं वहति सततं दुःखनिलयम् ।
यदेतज्ज्ञात्वैवावहति च निवृत्तिं परतरां
न जाने तत्तत्त्वं परमिति नमो वेद्य शिव ते ॥

न वेदं यद्रूपं निगमविषयं मङ्गलकरं
न दृष्टं केनापि ध्रुवमिति विजाने शिव विभो ।
ततश्चित्ते शम्भो नहि मम विषादोऽघविकृतिः
प्रयत्नाल्लब्धेऽस्मिन्न किमपि नमः पूर्णशिव ते ॥

तवाऽऽकर्ण्यागूढं यदपि परतत्त्वं श्रुति परं
तदेवापीतं सन्नयनपदवीं नात्र तनुते ।

जिन महेश्वर को जाने विना सम्पूर्ण संसार के बन्धन आवागमन का छुट-कारा न होकर बार-बार दुःखों में ही पड़ना होता है और जिनको जानने से सम्पूर्ण भवचक्र से निवृत्ति हो जाती हैं ऐसे महामहिमशाली परम तत्त्व आपके स्वरूप को मैं नहीं जान पाया हूं, हे वेद्य शिव मैं आपको नति करता हूं।

जिनका मङ्गलकर स्वरूप न तो निगम विषय हुआ, न किसी ने साक्षात्कार किया, हे शम्भो! तब मेरे चित्त में अघ (पापों) की विकृति होने से भी कोई विषाद, दुःख नहीं हुआ; क्योंकि प्रयत्न सापेक्ष होनेपर कोई इष्ट प्राप्त नहीं भी होता। अतः हे पूर्ण शिव! आपको नमस्कार है।

आपके सर्वदा विस्पष्टतम श्रुतियों से अगम्य परतत्त्व को बराबर योगिहृत्पङ्कजा-वास होने योग्य होने से आँखों से साक्षात्कार नहीं किया जा सका। हे परा-

कदाचित्किञ्चिद्वा स्फुरतु कतिधा चेतसि तव
स्फुरद्रूपं भव्यं भवहर परावेद्य शिव ते ॥

त्वमिन्दुर्भानुस्त्वं हुतभुगसि वायुश्च सलिलं
त्वमेवाऽऽकाशोऽसि क्षितिरसि तथाऽऽत्माऽसि भगवन्।
ततः सर्वाकारस्त्वमसि भवतो भिन्नमनघा-
न्नतत्सत्यं सत्यं त्रिनयन नमोऽनन्त शिव ते ॥

विधुं धत्से नित्यं शिरसि मृदुकण्ठेऽपि गरलं
नवं नागाहारं भसितममलं भासुरतनुम्।
करे शूलं भाले ज्वलनमनिशं तत्किमिति ते
न तत्त्वं जानेऽहं भवहर नमः कूर्पशिव ते ॥

वेद्य भव ! आपके चित्त में भक्तजनानुग्रह करनेवाले इस भव्य स्वरूप को हम सब को दर्शन करने की इच्छा तो जागृत हो जिससे हम लोग कृतकृत्य होवें।

हे भगवन् ! आप ही चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी और आत्मा (यजमान स्वरूप) है, आप ही सर्वाकार हैं, आप जैसे पापरहित तत्त्व से भिन्न कोई भी वस्तु संसार में नहीं है और यदि है तो वह सत्य नहीं। हे अनन्त रूपों से संसार के भूतप्राणियों में व्याप्त शिव ! आपको मेरा नमस्कार है।

आप नित्य चन्द्रमा को शिर पर धारण करते हैं, आपने मृदुकण्ठ होनेपर भी उसमें विष पानकर उसे धारण किया है, नवीन नागों का हार पहने हुए भस्म से धूसरित आपका शुद्ध-बुद्ध शरीर है, हाथ में त्रिशूल लिये रात-दिन ज्ञानाग्नि से दीप्त तीसरा नेत्र खुला रहता है यह सब क्या वाणी से अगोचर आपका स्वरूप है हमें तो कुछ भी समझ में नहीं आता। हे संसार के दुःखों को हरनेवाले शंकर आपको नमस्कार है।

तवापाङ्गः शुद्धो यदि भवति भव्ये शुभकरः
कदाचित्कस्मिंश्चिल्लघुतरनरे विप्र भवति ।
स एवैतांल्लोकान् रचयितुमलं सापि च महा-
न्कृपाधारोऽयं ते सुखयति नमोऽनन्तशिव ते ॥

भवन्तं देवेशं शिवमितरगीर्वाणसदृशम्
प्रमादाद्यः कश्चिद्यदि वदति चित्तेऽपि मनुते ।
स दुःखं लब्ध्वाऽन्ते नरकमपि याति ध्रुवमिदं
ध्रुवं देवाराध्यामितगुण नमोऽनन्त शिव ते ॥

प्रदोषे रत्नाढ्ये मृदुलतरसिंहासनवरे
भवानीमारूढामसकृदपि सम्वीक्ष्य भवता ।
कृतं सम्यङ्नाट्यं प्रथितमिति वेदोऽपि वदति
प्रभावः को वाऽयं तव हर नमो दीपशिव ते ॥

किसी छोटे से आदमी के अन्दर आपका अपाङ्ग शुद्ध हो तो मङ्गलमय होने से वह शुभकारक होता है वही इन सम्पूर्ण लोकों को रचने में समर्थ है और वही कृपा का आधार सर्वत्र ही सुख देता है, हे अनन्त शिव! आपको प्रणाम है।

देवाधिदेव महादेव! आपको जो कोई अज्ञप्रमाद से दूसरे देवताओं के के समान ही मानता है और आपके प्रति मन में भी हीन भावना रखता है वह दुःख पाता है और अन्त में निश्चय ही नरकगामी होता है। हे देवाराध्य अमित गुण अनन्त स्वरूपाविच्छिन्न शिव! आपको नमस्कार है।

आपने प्रदोष समय में रत्नों से युक्त अत्यन्त कोमल सिंहासन पर बैठी हुई भवानी को बारम्बार देख यथाविधि नाट्य किया यह वेदों में भी प्रसिद्ध है। हे हर! यह आपका क्या प्रभाव है? हे प्रकाशमान् शिव! आपको नमस्कार है।

श्मशाने सञ्चारः किमु शिव न ते क्वापि गमनं
यतो विश्वं व्याप्याऽखिलमपि सदा तिष्ठति भवान्।
विभुं नित्यं शुद्धं शिवमुपहतं व्यापकमिति
श्रुतिः साक्षाद्वक्ति स्वयमपि नमः शुद्ध शिव ते ॥

धनुर्मेरुः शेषो धनुवरगुणो यानमवनि-
स्तवैवेदं चक्रं निगमनिकरा वाजिनिकरोः ।
पुरो लक्ष्यं यन्ता विधिरिषु हरिश्चेतिनिगमः
किमेवं त्वन्वेष्यो निगदति नमः पूर्ण शिव ते ॥

मृदुः सत्त्वं त्वेतद्भवमनघयुक्तं च रजसा
तमो युक्तं शुद्धं हरमपि शिवं निष्कलमिति ।

श्मशान में विचरने के अतिरिक्त हे शिव ! आपका कहीं पर भी गमन नहीं हैं फिर भी आप सदा ही सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं। साक्षात् श्रुति भी विभु, नित्य, शुद्ध, शिव एवं व्यापक नाम से पुकारती है। हे शुद्ध स्वरूप शिव आपको नमस्कार है।

आपका धनुष मेरु पर्वत है, शेषनाग उसकी प्रत्यञ्चा के गुण है, पृथ्वी यान है, आपका यह सब लीला विस्तारचक्र है, नियमों का समूह ही अश्वगण है, आगे चलना ही लक्ष्य है, उसका नियमन करनेवाले साक्षात् ब्रह्मा है, हरि (विष्णु) वाण है। इस प्रकार आप अन्वेषण योग्य हैं, हे पूर्ण शिव आपको प्रणाम है।

आपका स्वरूप रज और तमोगुण से युक्त होनेपर भी मृदु सत्त्व और निष्पाप है। तमोयुक्त रहते हुए भी शुद्ध निर्मल पापहर और निष्कल है, वेद एकमेव

वदत्येको वेदस्त्वमसि तदुपास्यं ध्रुवमिदं
त्वमोङ्काराकारो ध्रुवमिति नमोऽनन्तशिव ते ॥

जगत्सुप्तिं बोधं व्रजति भवतो निर्गतमपि
प्रवृत्तिं व्यापारं पुनरपि सुषुप्तिं च सकलम् ।
त्वदन्यं त्वत्प्रेक्ष्यं व्रजति शरणं नेति निगमो
वदत्यद्धा सर्वं शिव इति नमःस्तुत्य शिव ते ॥

त्वमेवालोकानामधिपतिरुमानाथ जगतां
शरण्यः प्राप्यस्त्वं जलनिधिरिवानन्तपयसाम् ।
त्वदन्यो निर्वाणं तट इति च निर्वाणयति रेऽ-
प्यतः सर्वोत्कृष्टस्त्वमसि हि नमो नित्य शिव ते ॥

आपको ही उपास्य कहते हैं, आप ओङ्कार के आकार के हैं। हे अनन्त महिमा-मय शिव ! आपको प्रणाम है ।

संसार में सुप्ति (सोना) और बोध आप से ही होते हैं, पुनः प्रवृत्ति और व्यापार फिर सम्पूर्ण सृष्टि की सुषुप्ति के मूलकारण आप ही हैं। आपसे अन्य कोई भी संसार में ऐसे देवाधिदेव नहीं जिनकी शरण में जाया जाय, ऐसे निगम कहते हैं, अतः सम्पूर्ण शिवमय है। हे स्तुति योग्य भगवन् शंकर ! आपको प्रणाम है ।

हे उमानाथ शंकर ! आप ही सम्पूर्ण प्रकाशमय लोकों के अधिपति हैं, जैसे अनन्त जलराशि का एकमात्र शरण समुद्र है, वैसे ही आप सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम सृष्टि के शरण्य एवं प्राप्य हैं, आपके अतिरिक्त यदि कोई निर्वाण कहता है है तो वह तट को निर्वाण नाम देता है, अतः हे शिव ! सम्पूर्ण लोकों से उत्कृष्ट आप ही हैं, हे नित्य शिव ! आपको प्रणाम है ।

तवैवांशो भानुस्तपति विधुरभ्येति पवनः
पवत्येपोऽग्निश्च ज्वलति सलिलं च प्रवहति ।
तवाऽऽज्ञाकारित्वं सकलसुरवर्गस्य सततं
त्वमेकः स्वातन्त्र्यं वहसि हि नमोऽनन्त शिव ते ॥

स्वतन्त्रोऽयं सोमः सकलभुवनैकप्रभुरयं
नियन्ता देवानामपि हर नियन्ताऽसि न परः ।
शिवः शुद्धो मायारहित इति वेदोऽपि वदति
स्वयं तामाशास्य त्रय हर नमोऽनन्त शिव ते ॥

नमो रुद्रानन्तामरवर नमः शंकर विभो
नमो गौरीनाथ त्रिनयन शरण्याङ्घ्रिकमल !

आपके ही अंश स्वरूप सूर्य तपता है, चन्द्र प्रकाशित होता है, पवन चलता है, अग्नि जलती है, जल बहता है। आपकी ही आज्ञाकारिता में सम्पूर्ण देव-असुर मनुष्यादि सङ्घ हैं और सम्पूर्ण देवगण में केवल आप ही स्वातन्त्र्य वहन करते हैं, हे अनन्त शिव ! आपको नमस्कार है।

यह सोम स्वतन्त्र है, सम्पूर्ण भुवनों का अधिपति है, देवताओं का नियन्ता है ; परन्तु सब कुछ आप ही हैं, आप से पर (अन्य) तत्त्व कोई नहीं। आपको वेद भी शिव, शुद्ध और मायारहित कहते हैं, सब को शासन कर आप त्रिगुण हर हैं, हे अनन्तस्वरूप ! अनन्त महिमा सम्पन्न ! आपको नमस्कार है।

हे रुद्र ! अनन्त ! अमरवर ! शङ्कर ! विभो ! गौरीनाथ ! त्रिनयन ! शरण्य अङ्घ्रिकमल ! सर्व श्रीमन् ! अनघ ! महदैश्वर्य निलय स्मरारे (कामदेव के शत्रो)

नमः शर्व श्रीमन्ननघ महदैश्वर्यनिलय
स्मरारे पापारे जय जय नमः सव्यशिव ते ॥

महादेवामेयानघ गुणगणाग्रामसवत-
न्नमोभूयो भूयः पुनरपि नमस्ते पुनरपि ।
पुराराते शम्भो पुनरपि नमस्ते शिव विभो
नमो भूयो भूयः शिवशिव नमोऽनन्त शिव ते ॥

कदाचिद्गण्यन्ते निविडनियतं वृष्टिकणिकाः
कदाचित्तत्क्षेत्राण्यपि सिकतलेशं कुशलिना ।
अनन्तैराकल्पं शिवगुणगणाश्चारुरसनै-
र्नशक्यन्ते नूनं गणयितुमुपित्वाऽपि सततम् ॥

पापारे (पापियों के शत्रो), आपको नमस्कार है। हे सव्य शिव ! आपकी जय हो जय हो।

हे महादेव ! अमेय अनघगुणगणाग्राम सव आपको बार-बार नमस्कार है। हे पुराराते ! हे शम्भो ! हे शिव ! हे विभो आपको पुनः नमस्कार है। हे शिव शिव अनन्तमहिमाशालिन् ! आपको वारम्वार नमस्कार है।

कदाचित् निविड़मेघ में नियत वृष्टि की कणिकाओं की भी गणना की जाय कभी कुशल व्यक्तियों द्वारा क्षेत्रों की भी सिकतलेश गणना हो जाय, परन्तु असंख्य चारु रसनाओंवाले कवियों द्वारा यदि कल्पान्त स्थायी होकर आपके गुणगण को अनवरत गाने की चेष्टा की जाय तो भी पार नहीं पाया जा सकता।

मया विज्ञायैषाऽनिशमपि कृता जेतुमनसा
सकामेनामेया सततमपराधा बहुविधाः ।
त्वयैते क्षन्तव्याः क्वचिदपिशरीरेणवचसा
कृतैर्नैतैर्नूनं शिवशिव कृपासागरविभो ॥

प्रमादाद्ये केचिद्वितततमपराधा विधिहताः
कृताः सर्वे तेऽपि प्रशममुपयान्तु स्फुटतरम् ।
शिवः श्रीमच्छम्भो शिवशिवमहेशेति च जपन्
क्वचिल्लिङ्गाकारे शिवहर वसामि स्थिरतरम् ॥

इति स्तुत्वा शिवं विष्णुः प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।
निर्विण्णोन्यवसन्नूनं कृताञ्जलिपुटः स्थिरम् ॥

इसी को जानकर सकाम मैंने दिन-रात अनगिनत बहुत प्रकार के अपराध किये। अतः शारीरिक, वाचिक और किसी प्रकार के अपराध जो मेरे से बने हों उन्हें हे कृपा के सागर शङ्कर भगवन्! आप क्षमा कीजिये।

प्रमाद से जो कुछ भी अपराध भाग्यहीन मैंने किये हों वे आपकी चरणरज के प्रसाद से शीघ्र शमन हो जावें। किस प्रकार हों ? मैं शिव, श्रीमच्छम्भो शिव शिव, महेश, इन नामों का निरन्तर जप करता जाऊं और कहीं ज्योतिर्लिङ्गाकार में स्थिरतर होकर निवास करूं।

इस प्रकार विष्णु भगवान् ने शङ्करजी को बार-बार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े निर्विण्ण (चुपचाप) हो खड़े हो गये।

तदा शिवः शिवं रूपमादायोवाच सर्वगः ।
भीषयन्नखिलान्भूतान्घनगम्भीरया गिरा ॥
मदीयं रूपममलं कथं ज्ञेयं भवादृशैः ।
यत्तु वेदैरविज्ञातमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे शिवः ॥
ततः पुनर्विधिस्तत्र तपस्तप्तुं समारभत् ।
विष्णुश्च शिवतत्त्वस्य ज्ञानार्थमतियत्नतः ॥
तादृशी शिव ! मे वाञ्छा पूजयित्वा वदाम्यहम् ।
नान्यो मयाऽर्च्यो देवेषु विना शम्भुं सनातनम् ॥
त्वयाऽपि शाङ्करं लिङ्गं पूजनीयम्प्रयत्नतः ।
विहायैवान्यदेवानां पूजनं शेष सर्वदा ॥

॥ इति स्कन्दपुराणान्तर्गतं विष्णुरचितं शिवमहिमस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

तब शिवजी ने शिव रूप को धारण कर सम्पूर्ण प्राणियों को भयभीत व कम्पित करनेवाली मेघ गम्भीर वाणी से कहा ।

मेरा अमलरूप आप जैसों से कैसे जाना जा सकता है ; क्योंकि इसे स्वयं वेद भी अविज्ञात कहते हैं ।

ऐसा कहकर भगवान् शङ्कर अन्तर्हित कर गये । फिर ब्रह्मा ने वहां तप करना आरम्भ किया और विष्णु भगवान् ने अति यत्नपूर्वक शिव तत्त्व के ज्ञान के लिये ही एक मात्र मेरी इच्छा है यह कह तप किय । अतः शंकर की पूजा कर इसे कहता हूं।

शम्भु के विना देवताओं में अन्य मेरे द्वारा पूज्य नहीं आपको भी शंकर लिङ्ग की प्रयत्न से पूजन करनी चाहिये । हे शेष अन्य देवों को छोड़ो यही पूजन सर्वोत्तम है ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः ।
वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः ॥
शङ्करः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः ।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः ॥
भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः ।
उग्रः कपाली कामारिरन्धकासुरसूदनः ॥
गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः ।
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः ॥
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः ।
वृषाङ्को वृषमारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥
सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः ।
सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः ॥
हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः ।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः ॥
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः ।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः ॥

कृत्तिवासाः पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः ।
मृत्युञ्जयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः ॥
व्योमकेशो महासेनजनकश्चारुविक्रमः ।
रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः ॥
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः ।
शाश्वतः खण्डपरशुरजः पाशविमोचनः ॥
मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययो हरिः ।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः ॥
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः ॥

॥ इति श्रीशिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अथ उपमन्युकृतं शिवस्तोत्रम्

जय शङ्कर ! पार्वतीपते ! मृड ! शम्भो ! शशिखण्डमण्डन ! ।
मदनान्तक भक्तवत्सल प्रिय कैलास दयासुधाम्बुधे ॥

हे शङ्कर ! हे पार्वतीपते ! हे मृड ! हे बालचन्द्र को धारण करनेवाले ! मदन (कामदेव) का नाश करनेवाले ! भक्तवत्सल कैलास जिन्हें प्रिय हैं, दयारूपी अमृत के सागर आपकी जय हो ।

सदुपायकथास्वपण्डितो हृदये दुःखशरेण खण्डितः ।
शशिखण्डशिखण्डमण्डनं शरणं यामि शरण्यमीश्वरम् ॥

महतः परितः प्रसर्पतस्तमसो दर्शनभेदिनो भिदे ।
दिननाथ इव स्वतेजसा हृदयव्योम्नि मनागु देहिनः ॥

न वयं तव चर्मचक्षुषा पदवीमप्युपवीक्षितुं क्षमाः ।
कृपयाऽभयदेन चक्षुषा सकलेनेश ! विलोकयाऽऽशुनः ॥

त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्ता न हि वक्तुमीश ! सा ।
मधुरं हि पयः स्वभावतो ननु कीदृक्सितशर्करान्वितम् ॥

हे शिव ! सुन्दर उपायों की कथा में नितान्त अनभिज्ञ इसी लिये दुःखरूपी बाण से हृदय विंध गया है, अब भगवान् शशिशेखर शरण में जाने योग्य चन्द्र-मौलीश्वर की शरण में जाता हूं ।

चारों ओर फैले हुए महा घोर अन्धकार को भेदनेवाले आप सूर्य के समान अपने तेज से मेरे हृदयरूपी आकाश को आलोकित कीजिये ।

हम आपके स्थान को इस लौकिक चर्म की आँखों से नहीं देख पाते, अतः हे ईश ! आप ही अभय देनेवाले नेत्रों के विलास से हमें देखिये और शीघ्र भयमुक्त कीजिये ।

हे भगवन् ! आपकी अनुस्मृति पवित्र करनेवाली है, हम स्तुतियुक्त उस स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकते दूध स्वभाव से ही मधुर होता है; यदि उसमें सफेद मिश्री दे दी जाय तो फिर उसके माधुर्य का क्या पूछना ।

सविषोऽप्यमृतायते भवाञ्छवमुण्डाभरणोऽपि पावनः ।
भव एव भवान्तकः सतां समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन् ॥
अपि शूलधरो निरामयो दृढवैराग्यरतोऽपि रागवान् ।
अपि भैक्ष्यचरो महेश्वरश्चरितं चित्रमिदं हि ते प्रभो ॥
वितरत्यभिवाञ्छितं दृशा परिदृष्टः किल कल्पपादपः ।
हृदये स्मृत एव धीमते नमतेऽभीष्टफलप्रदो भवान् ॥
सहसैव भुजङ्गपाशवान् विनिगृह्णाति न यावदन्तकः ।
अभयं कुरु तावदाशु मे गतजीवस्य पुनः किमौषधैः ॥

आप विष धारण करने पर भी अमृत का आप्यायन करते हैं, मृतकों के मुण्डों की माला धारण कर भी आप पवित्र हैं। भव आपका नाम है, फिर भी संसार के संहारकर्ता हैं, आपकी तीन दृष्टि विषम नेत्र है फिर भी आप सब पर एक समान कृपादृष्टि रखते हैं।

आप शूलधारी होनेपर भी आधिव्याधि से रहित हैं, दृढ़ वैराग्य रत होनेपर भी रागवान् हैं, (भक्तों में अनुराग करते हैं)। भिक्षा लेकर रहते हैं, फिर भी महेश्वर हैं, हे प्रभो ! आपके सभी चरित्र विलक्षण हैं।

कल्पवृक्ष को देखनेमात्र से अभिवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है, आप तो हृदय में स्मरण करने से तथा बुद्धिमान् नतमस्तक होते हैं उन्हें अभीष्ट फल देते हैं, यही विलक्षण है।

हे भगवन् जब तक यमराज सर्पों की पाश न लाकर अकस्मात् मुझे पकड़कर नहीं ले जाता तब तक आप शीघ्र ही मुझे अभय कीजिये। जब मनुष्य में से जीव निकल गया तो फिर औषधियों से क्या ?

सविषैरिव भीमपन्नगैर्विषयैरेभिरलं परीक्षतम् ।
अमृतैरिव सम्भ्रमेण मामभिषिञ्चाऽऽशु दयावलोकनैः ॥

मुनयो बहवोऽद्य धन्यतां गमिताः स्वाभिमतार्थदर्शिनः ।
करुणाकर ! येन तेन मामवसन्नं ननु पश्य चक्षुषा ॥

प्रणमाम्यथ यामि चाऽपरं शरणं कं कृपणाऽभयप्रदम् ।
विरहीव विभो प्रियामयं परिपश्यामि भवन्मयं जगत् ॥

बहवो भवताऽनुकम्पिताः किमितीशान! न माऽनुकम्पसे ।
दधता किमु मन्दराचलं परमाणुः कमठेन दुर्धरः ॥

इन विष भरे महा भयंकर विषयों के सर्पों से अब बस कीजिये अब जल्दी ही अमृतरूपी दयादृष्टि से हम सबपर अनुग्रह कीजिये जिससे कल्याण हो ।

आपके भक्त मुनिजन अभिमतार्थ को देखनेवाले धन्य हो गये । हे करुणाकर ! मुझ दुःखी पर भी आप वैसी ही दया कीजिये जिससे मैं कृपाकटाक्ष से सुखी होऊँ ।

मैं आपको छोड़ किसे प्रणाम करूं वा शरण में जाऊँ जिससे अभयदायक कृपा हो । मैं विरही नायक के समान सम्पूर्ण जगत् को प्रियामय देखने के रूप में आप ही में व्याप्त संसार को देखता हूं ।

आपने हजारों लाखों के ऊपर कृपा की, हे ईशान ! क्या मुझपर आप कृपा न करेंगे । मन्दराचल को धारण करनेवाले कच्छप के लिये क्या परमाणु का भी बोझ असह्य होगा ? ।

अशुचिं यदि माऽनुमन्यसे किमिदं मूर्ध्नि कपालदाम ते ।
उत शाठ्यमसाधुसङ्गिनं विषलक्ष्माऽसि न किं द्विजिह्वधृक् ॥

क्व दृशं विदधामि किं करोम्यनुतिष्ठामि कथं भयाकुलः ।
क्व नु तिष्ठसि रक्ष रक्ष मामयि शम्भो शरणागतोऽस्मि ते ॥

विलुठाम्यवनौ किमाकुलः किमुरो हन्मि शिरश्छिनद्मि वा ।
किमु रोदिमि रारटीमि किं कृपणं मां न यदीक्षसे प्रभो ॥

शिव ! सर्वग ! शर्व ! शर्मद ! प्रणतो देव ! दयां कुरुष्व मे ।
नम ईश्वर ! नाथ ! दिक्पते ! पुनरेवेश ! नमो नमोऽस्तु ते ॥

यदि कहें कि मैं अपवित्र हूं तो आपके शिर पर यह मुण्डमाला क्यों है या मुझे आप असाधुजनों का सङ्ग करनेवाला शठ समझते हैं तो आपके गले में विष का चिह्न हैं और द्विजिह्व सर्पों (शाब्दिक अर्थ मुँह पर कुछ कहनेवाले पीछे से दूसरी बात कहनेवाले दुष्ट पुरुष) को भी आप धारण करते हैं ।

मैं अब संसार से भयभीत होकर कहां दृष्टि लगाऊँ, क्या करूँ, क्या उपाय सोचूं ? हे शम्भो ! क्या मेरे लिये आप कृपा नहीं करेंगे ? हे शंकर ! मेरे ऊपर दया कीजिये मैं आपकी शरण में आया हूं ,

अब क्या मैं व्याकुल होकर पृथ्वीपर लौटूं या छाती या शिर पीटूं ? क्या मैं रोता रहूं या आपको अहर्निश पुकारा करूँ ? हे प्रभो ! क्या आप अब भी कृपा न करेंगे ?

हे शर्व ! हे सर्वग ! शर्व ! शर्मद ! अब बहुत हो चुकी मैं आपके चरणों में साष्टांग दण्डवत् करता हूं । मेरे ऊपर दया कीजिये । हे ईश्वर ! हे नाथ ! दिक्पते ! हे ईश ! आपको वार-वार नमस्कार है ।

शरणं तरुणेन्दुशेखरः शरणम्मे गिरिराजकन्यका ।
शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥

उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं जपतः शम्भुसमीपवर्त्तिनः ।
अभिवाञ्छितभाग्यसम्पदः परमायुः प्रददाति शङ्करः ॥

उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं प्रजपेद्यस्तु शिवस्य सन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्य सोऽचिरात्सह तेनैव शिवेन मोदते ॥

॥ उपन्युकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

हे चन्द्रमौलीश्वर आप ही की मैं शरण में हूं और माता पार्वतीजी की शरण में हूं, मेरे तो आराध्य केवल आप ही हैं आपको छोड़ मैं दूसरे देव की शरण में नहीं जाऊँगा।

उपमन्युकृत इस श्रेष्ठ स्तोत्र को जो भगवान् शम्भु के निकट बैठकर स्तुति करते हैं उनको शंकर अभिवाञ्छित भाग्य सम्पति और परमायुष्य (दीर्घायु) देते हैं।

जो व्यक्ति उपमन्युकृत इस श्रेष्ठ स्तोत्र को भगवान् शिव के निकट जपरूप में करता है वह शीघ्र ही शिवलोक में जाकर उनके साथ ही आनन्द करता है।

असितकृतं शिवस्तोत्रम्

असित उवाच ।

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च ।
योगीन्द्राणाञ्च योगीन्द्रं गुरूणां गुरवे नमः ॥
मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन !
मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युञ्जय नमोऽस्तु ते ॥
कालरूपं कलयतां कालकालेशकारणः ।
कालादतीतकालस्य कालकाल नमोऽस्तु ते ॥
गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक ।
गुणेश गुणिनां बीज गुणिनां गुरवे नमः ॥
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावे च तत्पर ! ।
ब्रह्मबीज स्वरूपेण ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते ॥
इति स्तुत्वा शिवं नत्वा पुरस्तस्थौ मुनीश्वरः ।
दीनवत्साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥
असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ।
वर्षमेकं हविष्याशी शङ्करस्य महात्मनः ॥
स लभेद्वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् ।
भवेद्धनाढ्योऽदुःखी च मूको भवति पण्डितः ॥

अभार्यो लभते भार्यां सुशीलाञ्च पतिव्रताम् ।
इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसन्निधिम् ॥
इदं स्तोत्रं पुरा दत्तं ब्रह्मणा च प्रचेतसे ।
प्रचेतसा स्वपुत्रायाऽसिताय दत्तमुत्तमम् ॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे असितकृतं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अथ हिमालयकृतं शिवस्तोत्रम्

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः ।
त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः ॥
त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः ।
प्रकृतः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः ॥
नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे ।
येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपान्(श्च)बिभर्षि च ॥
सूर्य्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम् ।
सोमस्त्वं शस्यपाता च सततं शीतरश्मिनः ॥
वायुस्त्वं वरुणस्त्वञ्च त्वमग्निः सर्वदाहकः ।
इन्द्रस्त्वं देवराजश्च काले मृत्युर्यमस्तथा ॥

मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः ।
वेदस्त्वं वेदकर्त्ता च वेदवेदाङ्गपारगः ॥
विदुषां जनकस्त्वञ्च विद्वांश्च विदुषां गुरुः ।
मन्त्रस्त्वं हि दमस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः ॥
वाक्त्वं वागाधिदेवी त्वं तत्कर्त्ता तद्गुरुःस्वयम् ।
अहो सरस्वतीबीजं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥
इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वा पदाम्बुजम् ।
तत्रोवास तमाबोध्य चावरुह्य वृषाच्छिवः ॥
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं मासमेकं पठेद्यदि ।
भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुमनोहराम् ॥
चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम् ।
राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं शङ्करस्य प्रसादतः ॥
कारागारे श्मशाने च शत्रुग्रस्तेऽतिसङ्कटे ।
गम्भीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोते विषादने ॥
रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते ।
सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शङ्करस्य प्रसादतः ॥

॥ इति हिमालयकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

दारिद्र्यदहनस्तोत्रम्

विश्वेश्वराय नरकार्णवतारणाय कर्णामृताय शशिशेखरधारणाय ।
कर्पूरकान्तिधवलाय जटाधराय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ॥
गौरीप्रियाय रजनीशकलाधराय कालान्तकाय भुजगाधिपकङ्कणाय ।
गङ्गाधराय गजराजविमर्दनाय दारिद्र्यदुःखदहनाय० ॥
भक्तिप्रियाय भवरोगभयापहाय उग्राय दुर्गभवसागरतारणाय ।
ज्योतिर्मयाय गुणनामसुनृत्यकाय दारिद्र्यदुःखदहनाय० ॥
चर्माम्बराय शवभस्मविलेपनाय भालेक्षणाय मणिकुण्डलमण्डिताय ।
मञ्जीरपादयुगलाय जटाधराय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ॥

विश्वेश्वर नरक के समुद्र से पार उतारनेवाले, कर्णामृत मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करनेवाले, कर्पूर के समान शुद्ध श्वेत शोभावाले, जटाधारी, दरिद्रता के दुःख को नाश करनेवाले भगवान् शङ्कर को प्रणाम करते हैं।

भगवती पार्वतीजी के प्रिय, चन्द्रमा की कला को धारण करनेवाले, कालान्तक सर्पराज का कङ्कण धारे हुए, गङ्गाधर गजराज का विभर्दन करनेवाले दारिद्र्य-दुःख को हरनेवाले श्रीमद्भगवच्चरण शङ्कर को नमस्कार है।

भक्तिप्रिय, भव (संसार) के रोग के भय को हटानेवाले, उग्र, दुर्गम संसाररूपी सागर से तारनेवाले, ज्योतिर्मय, गुण और नाम के अनुरूप ही सुनृत्य करनेवाले, भगवान् शङ्कर को नमस्कार है जिन्होंने दरिद्रतारूपी दुःख का दहन कर दिया।

चर्माम्बर, शव के भस्म करा विलेपन करनेवाले, भालेक्षण (भाल में जिस के आंख है) मणि और कुण्डल से सुशोभित, दोनों पैरों में मञ्जीर धारण किये हुए जटाधारी दरिद्रतारूपी दुःख को नाश करनेवाले भगवान् शंकर को प्रणाम है।

पञ्चाननाय फणिराजविभूषणाय हेमांशुकाय भुवनत्रयमण्डिताय ।
आनन्दभूमिवरदाय तमोमयाय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ॥
भानुप्रियाय भवसागरतारणाय कालान्तकाय कमलासनपूजिताय ।
नेत्रत्रयाय शुभलक्षणलक्षिताय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ॥
रामप्रियाय रघुनाथवरप्रदाय नामप्रियाय नरकार्णवतारकाय ।
पुण्येषु पुण्यभरिताय सुरार्चिताय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ॥
मुक्तेश्वराय फलदाय गणेश्वराय गीतप्रियाय वृषभेश्वरवाहनाय ।
मातङ्गचर्मवसनाय महेश्वराय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ॥

पांच मुखवाले, सर्पराज का आभूषण (गहना) वाले, स्वर्णमयी अंशुकवाले, तीनों लोकों के मण्डनरूप, आनन्द की भूमिवाले वरों को देनेवाले तमोमय, भगवान् शंकरजी को प्रणाम है जो दरिद्रतारूपी दुःख को जलानेवाले हैं।

सूर्यप्रिय, भवसागर से तारनेवाले, कालान्त करनेवाले, ब्रह्मा द्वारा पूजे गये तीन नेत्रधारी, शुभलक्षणों से लक्षित, दारिद्र्यदुःख का नाश करनेवाले, भगवान् शंकरजी को प्रणाम है।

राम जिन्हें प्रिय हैं, या राम के अनन्य आराध्य रघुनाथजी को वर देनेवाले, नाम संकीर्तन के प्रेमी सम्पूर्ण दुःखों के समुद्र से उद्धार करनेवाले पुण्यों में पुण्यमय देवताओं से अर्चित भगवान् शंकर को प्रणाम है जो दारिद्र्यदुःख को दहन करते हैं।

मुक्तेश्वर, फल देनेवाले, गणेश्वर, गीतप्रिय वृषभ की सवारीवाले, हाथी के चर्म का वस्त्र पहने, महेश्वर, दरिद्रतादुःख को जलानेवाले शंकरजी को प्रणाम है।

वशिष्ठेन कृतं स्तोत्रं सर्वरोगनिवारणम् ।
सर्वसम्पत्करं शीघ्रं पुत्रपौत्रादिवर्द्धनम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स हि स्वर्गमवाप्नुयात् ॥

॥ इति श्रीदारिद्र्यदहनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

शिवरक्षास्तोत्रम्

अस्य श्री शिवरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य याज्ञवल्क्यऋषिः श्रीसदाशिवो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । श्री सदाशिवप्रीत्यर्थं शिवरक्षास्तोत्रजपे विनियोगः ।

चरितं देवदेवस्य महादेवस्य पावनम् ।
अपारं परमोदारं चतुर्वर्गस्य साधनम् ॥
गौरीविनायकोपेतं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रकम् ।
शिवं ध्यात्वा दशभुजं शिवरक्षाम्पठेन्नरः ॥
गङ्गाधरः शिरः पातु भालमर्धेन्दुशेखरः ।
नयने मदनध्वंसी कर्णौ सर्पविभूषणः ॥
घ्राणं पातु पुरारातिर्मुखं पातु जगत्पतिः ।
जिह्वां वागीश्वरः पातु कन्धारं शितिकन्धरः ॥

वशिष्ठजी द्वारा किया गया यह स्तोत्र सब रोगों का निवारण करनेवाले और सम्पूर्ण सम्पत्ति को देनेवाले शीघ्र ही पुत्रादि को देनेवाले, इस स्तोत्र को तीनों सन्ध्याओं में इसे नित्य पढ़े वह स्वर्ग को प्राप्त करता है ।

श्रीकण्ठः पातु मे कण्ठं स्कन्धौ विश्वधुरन्धरः ।
भुजौ भूभारसंहर्त्ता करौ पातु पिनाकधृक् ॥
हृदयं शंकरः पातु जठरं गिरिजापतिः ।
नाभिं मृत्युञ्जयः पातु कण्ठं व्याघ्रजिनाम्बरः ॥
सक्थिनी पातु दीनार्तशरणागतवत्सलः ।
उरू महेश्वरः पातु जानुनी जगदीश्वरः ॥
जङ्घे पातु जगत्कर्ता गुल्फौ पातु गणाधिपः ।
चरणौ करुणासिन्धुः सर्वाङ्गानि सदाशिवः ॥
एतां शिवबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् ।
स भुक्त्वा सकलान् कामान् शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥
ग्रहभूतपिशाचाद्यास्त्रैलोक्येऽपि चरन्ति ये ।
दूरादाशु पलायन्ते शिवनामाभिरक्षणात् ॥
अभयङ्करनामेदं कवचं पार्वतीपतेः ।
भक्त्या बिभर्त्ति यः कण्ठे तस्य वश्यं जगत्त्रयम् ॥
इमां नारायणः स्वप्ने शिवरक्षां यथाऽऽदिशत् ।
प्रातरुत्थाय योगीन्द्रो याज्ञवल्क्यस्तथाऽलिखत् ॥
॥ इति याज्ञवल्क्यप्रोक्तं शिवरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ कूर्मपुराणोक्त

पारब्रह्मस्तवः
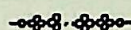
नमामि नित्यं परतः परस्तात् गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम् ।
व्रजामि योगेश्वरमीशितारमादित्यमग्निं कलिलाधिरूढम् ॥
त्वां ब्रह्मपारं हृदि सन्निविष्टं हिरण्मयं योगिनमादिहीनम् ।
व्रजामि रुद्रं शरणं दिविस्थं महामुनिं ब्रह्मपरं पवित्रम् ॥
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं सहस्रबाहुं तमसः परस्तात् ।
त्वां ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भुं हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम् ॥
यतः प्रसुप्तिर्जगतो विनाशो येनाहृतं सर्वमिदं शिवेन ।
त्वां ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भुं प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये ॥

हे योगेश्वर ! प्रत्येक जीवधारी के अधिष्ठाता ! सूर्य और अग्नि में प्रकाश पहुंचानेवाले ! परात्पर ! नित्य स्थायी ! पुराण पुरुष ! आपको प्रणाम है ।

हे परब्रह्म ! हृदयस्थ ! हिरण्यगर्भ ! अज अनादि ! योगीराज ! स्वर्ग के राजा परमपवित्र ! महामुने ! मैं आपकी शरण में हूं ।

हे विराट् पुरुष ! सहस्रपाद ! सहस्र नेत्र ! अनन्त मुख ! अनन्तबाहो ! प्रकाश पुंज ! हिरण्य गर्भ के भी अधिपते ! त्रिलोचन ! आपको प्रणाम है ।

हे सदाशिव ! समस्त सृष्टि के प्रलय और उत्पत्ति के विधातः ! शम्भो ! आपको प्रणाम है, मैं आपकी शरण में हूं ।

अलिङ्गमालोकविहीनरूपं स्वयं प्रभुश्चित् प्रतिमैकरूपम् ।
तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति ॥

यं योगिनस्त्यक्तसजीवयोगा लब्ध्वा समाधिं परमात्मभूताः ।
पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं तद्ब्रह्मपारं भवतः स्वरूपम् ॥

न यत्र नामानि विशेषतृप्तिर्न संदृशे तिष्ठति यत्स्वरूपम् ।
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं स्वयंभुवं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥

यद्वेदवेदाभिरता विदेहं सब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम् ।
पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं तद्ब्रह्मपारं प्रणमामि नित्यम् ॥

हे प्रभो ! आप अलिंग हैं "अर्थात् आपका कोई प्रधान परिचायक चिह्न नहीं जिससे सरलतया आपको पहिचाना जा सके।" इन चर्मचक्षुओं से सूर्य एवं अग्नि के प्रकाश में आपके रूप का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। आप मूर्तिरूप से स्वतः मुक्त हैं। हे प्रभो परब्रह्म ! मैं आप ही को नमस्कार करता हूं कारण आपके अतिरिक्त कोई है ही नहीं।

योगी लोग समाधिस्थ होकर जिस सदाशिव के दर्शन कर पाते हैं मैं उसी सर्वान्तर्यामी को बार-बार नमस्कार करता हूं।

जो स्वयम्भू दर्शन का विषय नहीं। अनेक नाम रखने पर भी जिसका कोई निश्चित नाम नहीं, उन देव देव को मैं प्रणाम करता हूं तथा उसी की शरण हूं।

वेदवेदान्त के श्रवण, मनन में लीन महात्मा लोग जिसको अभिन्न एक रूप तथा विदेह (देहरहित कहते हैं) उन अनेक रूप महामहिम प्रभु को मैं नित्य प्रणाम करता हूं।

यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो विवर्त्तये(ते) यं प्रणमन्ति देवाः ।
नमामि तं ज्योतिषि सन्निविष्टं कालं भवन्तं भवतः स्वरूपम् ॥

व्रजामि नित्यं शरणं महेशं स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम् ।
शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि ॥

हे पुराण पुरुष ! यह समस्त जगत् आप ही का विवर्त है, सूर्यमण्डल में सन्निविष्ट पुरुष आप ही हैं। मैं आपके कालनिर्माता रूप को प्रणाम करता हूं।

हे महेश ! स्थाणो ! गिरिश ! (हिमालय में सोनेवाले) मैं नित्य आपकी शरण हूं। हे शिव ! हर ! चन्द्रशेखर ! पिनाकी (धनुष धारण करनेवाले) मैं आपकी शरण हूं।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्राह्मोक्तं सर्वस्वरूपास्तोत्रम्
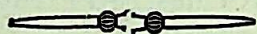
आद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मवीजम् ।
ऐश्वर्यविज्ञानविरोधधर्मैः समन्वितं देवि ! नतोऽस्मि रूपम् ॥
रूपं तवाशेषविकारहीनमगोचरं निर्म्मलमेकरूपम् ।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ॥
यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः ।
आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं तदेवरूपं शरणं प्रपद्ये ॥
अशेषभूतान्तरसन्निविष्टं प्रधानपुंयोगवियोगहेतुम् ।
तेजोमयं जन्मविनाशहीनं प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥

हे मातः ! आपके आद्यस्वरूप 'परमपुरुष' को मैं प्रणाम करता हूं जो इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति में स्थित है और जिस में श्रेयस्प्रेयस् तथा ऐश्वर्य विज्ञान एवं विद्या तथा अविद्या आदि परस्पर विरोधी धर्मों का समन्वय होता रहता है।

हे देवि ! तेरा वह पुरुषरूप आदि, मध्य, अन्तहीन है, अशेष विकार शून्य है, ज्ञानेन्द्रियों के अगोचर है। उसी ज्योतिर्मय सत्यस्वरूप को मैं प्रणाम करता हूं।

दर्शन शास्त्र के विद्वान् जिस सत्-चित्-आनन्दमय ब्रह्म को वेदान्त विज्ञान से सुनिश्चित कर पाते हैं उसी ओङ्कार वाच्य तेरे ब्रह्मरूप स्वरूप की मैं शरण हूं।

हे दुर्गे ! तुम्हारे प्राणनामक रूप को प्रणाम करता हूं जो इन जीवों के संयोग और वियोग (जन्म मरण) का कारण है और जो स्वयं तेजःस्वरूप तथा उत्पत्ति विनाश से हीन (रहित) है।

आद्यन्तहीनं जगदात्मरूपं विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात् ।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तथैव नमामि रूपं पुरुषाभिधानं ॥
सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम् ।
सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम् ॥
द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसंस्थं विचित्रभेदं पुरुषैकनाथम् ।
अनेकभेदैरधिवासितं ते नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसंज्ञम् ॥
अशेषवेदात्मकमेकमाद्यं त्वत्तेजसा पूरितलोकभेदम् ।
त्रिकालहेतुं परमेष्टिसञ्ज्ञं नमामि रूपं रविमण्डलस्थम् ॥
सहस्रबाहुं पुरुषाभिधानं शयानमन्तः सलिले तथैव ।
नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपं सहस्रमूर्धानमनन्तशक्तिम् ॥

हे देवि ! वेदान्ती जिसको अनादि, अनन्त, आत्मा, परात्पर, कूटस्थ तथा अव्यक्त आदि नामों से स्मरण करते हैं, उन परमपुरुष स्वरूप को मैं प्रणामकरता हूं।

हे मातः ! तू सर्वाश्रया है अर्थात् सब का आधाररूपधरित्री तू ही है। जगत् की विधात्री तू ही है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त वायु तू ही है। सूक्ष्माति-सूक्ष्म अर्थात् आकाशस्वरूप तू ही है। तेरे इस त्रिगुणात्मक एक रूप को प्रणाम है।

हे दुर्गे ! चौदह भुवन निवासी अनेक कोटि जीवधारियों का आधारभूत जो ब्रह्माण्ड है वह तेरा ही स्वरूप है उसको मैं प्रणाम करता हूं।

हे देवि ! निखिल वेदविद्या को प्रकाशित करनेवाला तीन काल का निर्माता सूर्यमण्डलस्थ परमेष्ठिदेव तू ही है, तेरे इस स्वरूप को प्रणाम करता हूं।

मातः ! अनेक वाहु उदर मुंह नेत्र जो तेरा स्वरूप क्षीर समुद्र में शेषशय्या पर नारायण नाम से विराजमान हैं उसे मैं प्रणाम करता हूं।

दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवन्द्यं युगान्तकालानलकर्त्तृरूपम् ।
अशेषभूताण्डविनाशहेतुं नमामि रूपं तव कालरूप ! ॥
फणासहस्रेण विराजमानं भोगीन्द्रमुख्यैरपि पूज्यमानम् ।
जनार्दनारूढ़तनुं प्रसुप्तं नतोऽस्मि रूपं तव शेषसंञ्ज्ञम् ॥
अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं ब्रह्मामृतानन्दरसज्ञमेकम् ।
युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसंञ्ज्ञम् ॥
प्रहीणशोकं प्रविहीनरूपं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम् ।
सुकोमलं देवि ! विभासि शुभ्रं नमामि ते रूपमिदं भवानि ! ॥

॥ इति श्रीसर्वस्वरूपास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

हे महाकाले ! प्रलयकाल की अग्नि के तुल्य जाज्वल्यमान, तथा बड़ी-बड़ी दाढों से भयंकर अतएव सम्पूर्ण विनाश का कारण जो अखिल देववन्दनीय तेरा कालरूप स्वरूप है, उसको मैं प्रणाम करता हूं ।

हे सर्वस्वरूपे ! हजारों फणों से सुशोभित तथा प्रधान-प्रधान नागराजों द्वारा पूजित और विष्णु भगवान् का पर्यङ्करूप जो शेष नामक तेरा स्वरूप है, उसको मैं प्रणाम करता हूं ।

हे देवि ! अव्याहत सामर्थ्यवान्, ब्रह्मानन्द में मग्न, ताण्डवनृत्य तत्पर, तेरे उस त्रिलोचन रुद्रस्वरूप को प्रणाम करता हूं ।

हे जगदम्ब ! कहाँ तक वर्णन करूँ, तेरा स्वरूप समस्त शोकनाशक है । सब देव-दानव तेरे ही चरणकमल की पूजा करते हैं, उस तेरे स्वच्छ सुकोमल स्वरूप को मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं ।

अथ अग्निपुराणोक्तं लक्ष्मीस्तोत्रम्

इन्द्र उवाच ।

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्धिसंभवाम् ।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षस्थलस्थिताम् ॥
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी ।
संध्या रात्रिः प्रभाभूतिर्मेधाश्रद्धा सरस्वती ॥
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी ।
आन्विक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव हि ॥
सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितम् ।

मैं समस्त संसार की मातृरूपा समुद्रसुता श्री लक्ष्मी देवी को प्रणाम करता हूं जो भगवान् श्री विष्णु के वक्षःस्थल पर विराजमान हैं और प्रफुल्लित कमल के समान नेत्रोंवाली हैं ।

हे देवि ! तूं साधकों की मनोवाञ्छित सिद्धि है । पितरों की स्वधा अथ च देवताओं की स्वाहा तूं ही है । लोक को पवित्र करनेवाली सुधा (अमृत) तूं ही है । संध्याकाल की प्रभा तथा रात्रि की शोभा तूं है । विवेकी पुरुषों की बुद्धि, श्रद्धालुओं की श्रद्धा तथा वाग्देवी तेरा ही स्वरूप है ।

हे महालक्ष्मि ! मुक्तिदात्री वेदान्त विद्या तूं है और न्याय आदि दर्शन तथा श्रुति स्मृति तेरा ही स्वरूप हैं ।

हे मातः ! यह सम्पूर्ण जगत् तेरे ही शान्त एवं क्रान्तरूपों से परिपूर्ण हैं । तेरे

कात्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः ।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचित्यं गदाभृतः ॥

त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम् ।
विनष्टप्रायमभवत् त्वयेदानीं समेधितम् ॥

॥ इति श्रीलक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अथ वामनोक्तदुःखस्वप्ननाशनदेविस्तोत्रम्

नमोऽस्तु ते भगवति पापनाशनी नमोऽस्तु ते सुररिपुदर्पशातनी ।
नमोऽस्तु ते हरिहरराज्यदायिनी नमोऽस्तु ते मखभुजकार्यकारिणी ॥

विना कौन अन्य देवी, देवाधिदेव भगवान् विष्णु के यज्ञमय विग्रह पर अधिकार कर सकती है ।

हे देवि ! तेरे बिना ये तीनों भुवन क्षणभर में नष्ट प्रायः हो जाते हैं, तूंही इनको अहर्निश सम्वर्धित करती रहती है ।

हे पापनाशिनी भगवति ! तुम्हें प्रणाम । हे असुरों के अभिमान को चूर्ण करनेवाली ! तुम्हें प्रणाम । हे विष्णु और शंकर को आधिपत्य प्रदान करनेवाली तुम्हें प्रणाम । हे देवताओं कार्य सिद्ध करनेवाली ! तुम्हें प्रणाम ।

नमोऽस्तु ते त्रिदशरिपुक्षयङ्करि नमोऽस्तु ते शतमखपादपूजिते।
नमोऽस्तु ते महिषविनाशकारिणी नमोऽस्तु ते हरिहयभास्करस्तुते॥
नमोऽस्तुतेऽष्टादशबाहुशालिनी नमोऽस्तु ते शुम्भनिशुम्भघातिनी।
नमोऽस्तु ते चार्तिहरे त्रिशूलिनि नमोऽस्तु नारायणि चक्रधारिणी॥
नमोऽस्तु वाराहि सदा धराधरे त्वां नारसिंहि प्रणता नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु ते वज्रधरे गजध्वजे नमोऽस्तु कौमारि मयूरवाहिनी॥
नमोऽस्तु पैतामहि हंसवाहने नमोऽस्तु मालाविकटे सुकेशिनी।
नमोऽस्तु ते रासभपृष्ठवाहिनी नमोऽस्तु सर्वार्तिहरे जगन्मये॥

हे भगवती! देवताओं के शत्रु समूह को नष्ट करनेवाली, सौ यज्ञ करनेवाले महेन्द्र द्वारा पूजिते! महिषासुर का वध करनेवाली और भगवान् भास्कर से वन्दनीय, तुम्हें प्रणाम है।

हे अष्टादश भुजाओं से शोभिते! हे शुम्भ-निशुम्भ हन्त्री भगवती! तुम्हें प्रणाम है। अपने त्रिशूल से भक्तों के तापत्रय विनाशकर्त्री हे भगवति! तुम्हें प्रणाम। सुदर्शन चक्र धारण करनेवाली हे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है।

हे पृथ्वी को धारण करनेवाली वाराही देवि! तुम्हें प्रणाम। हे नृसिंहरूप धारिणी तुम्हें प्रणाम। हे वज्र धारण करनेवाली! ऐरावत पर विराजनेवाली ऐन्द्री देवी! तुम्हें प्रणाम। हे मयूरवाहिनी कौमारी देवी! तुम्हें प्रणाम।

हे हंसवाहिनी ब्रह्माणी देवि! तुम्हें प्रणाम। हे नर मुण्डमाल धारण करनेवाली सुकेशिनी देवि! तुम्हें प्रणाम। हे गर्दभवाहिनी शीतला देवि! तुम्हें प्रणाम। हे जगन्मये समस्त कष्टहर्त्री तुम्हें प्रणाम।

नमोऽस्तु विश्वेश्वरि ! पाहि विश्वं निषूदयारिं द्विजदेवतानाम् ।
नमोऽस्तु ते सर्वमपि त्रिनेत्रे नमो नमस्ते वरदे प्रसीद ॥

ब्रह्माणी त्वं मृडानी वरशिखिगमना शक्तिहस्ता कुमारी ।
वाराही त्वं सुवक्त्रा खगपतिगमना वैष्णवी त्वं च शार्ङ्गी ॥
दुर्दर्शा नारसिंही घुरघुरितरवा त्वं तथैन्द्री सवज्रा ।
त्वं मारी चर्ममुण्डा शवगमनरता योगिनी योगसिद्धा ॥

ओ३म् नमस्ते त्रिनेत्रे भगवति तव चरणानुच्छ्रिता
ये अहरहर्विनीतशिरोधरांशनम्राः ।
न हि न हि परमस्त्यशुभं सततं वलिस्तुति कुसुमकरा सततं ये ॥

हे मातः द्विज और देवताओं के शत्रुओं का विनाश करके इस विश्व की रक्षा करो ! हे सर्वस्वरूपे ! सूर्य, चन्द्र, अग्निरूप तीन नेत्रोंवाली भगवति ! प्रसन्न होकर हमें वरदान दो ।

हे देवि ! तूं ही ब्रह्माणी, मृडानी, कौमारी, वाराही और गरुड़ पर गमन करनेवाली वैष्णवी है ।

हे भगवति ! घोरगर्जन करनेवाली नारसिंही तथा वज्रधारिणी ऐन्द्री तूं ही है । हे मात. ! महामारी और शववाहना चर्ममुण्डा तथा सिद्धयोगिनी तूं ही है ।

हे भगवति ! तेरे चरणकमलों में मस्तक नवानेवाले जो अहर्निश वलि, पुष्प, तथा अन्य पूजोपकरण हाथ में लिये तेरा उपस्थान करते हैं उनका कभी अशुभ नहीं होता ।

एवं स्तुता सुरवरैः सुरशत्रुनाशिनी प्राह प्रहस्य सुरसिद्धमहर्षिवर्यान् ।
प्राप्तो मयाद्भुततमो भवतां प्रसादो संग्राममूर्ध्नि सुरशत्रुजयः प्रमर्दात् ॥
इमां स्तुतिं भक्तिपरा नरोत्तमा भवद्भिरुक्तामनुकीर्त्तयन्ति ये ।
दुःस्वप्ननाशो भविता न संशयो वरस्तथान्यो व्रियतामभीप्सितः ॥

॥ इति श्रीदुःखस्वप्ननाशनं देविस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अथ ब्रह्माकृतो देविस्तवः

देवि ! त्वमस्य जगतः किल कारणं हि
ज्ञातं मया सकलवेदवचोभिरम्ब !
यद्विष्णुरप्यखिललोकविवेककर्त्ता
निद्रा वशं च गमितः पुरुषोत्तमोऽद्य ॥

इस प्रकार देवी-देवताओं द्वारा स्तुति की गई भगवती प्रसन्न होकर कहने लगी। हे सिद्ध महर्षि गण ! मैं संग्राम में शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर तुम्हारी स्तुतियों से अत्यधिक प्रसन्न हुई।

हे देवताओं ! इस स्तुति का भक्त लोग पाठ करेंगे उनको दुःस्वप्नजन्य फल नहीं प्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं और दूसरा वर आप मांगिये।

हे मातः देवि ! तूं ही इस जगत् का निश्चित कारण है, समस्त वेदवाक्यों से मैंने तो यही जाना है, क्योंकि अखिललोकों में ज्ञान का संचार करनेवाला पुरुषोत्तम विष्णु भी तेरे प्रभाव से निद्रा के वशीभूत हो गया।

को वेद ते जननि मोहविलासलीलां
मूढोऽस्म्यहं हरिरियं विवशश्चशेते ।
ईदृक्तया सकलभूतमनोनिवासे
विद्वत्तमो विबुधकोटिषु निर्गुणायाः ।।
सांख्या वदन्ति पुरुषं प्रकृतिं च
यां तां चैतन्यभावरहितां जगतश्चकर्त्रीं ।
किं तादृशाऽसि कथमद्य जगन्निवास-
श्चैतन्यताविरहितो विहितस्त्वयाऽत्र ।।
नाट्यं तनोषि सगुणा विविधप्रकारं
नो वेत्ति कोऽपि तव कृत्यंविधानयोगम् ।
ध्यायन्ति यां मुनिगणा नियतं त्रिकालं
सन्ध्येति नाम परिकल्प्यगुणान् भवानि ! ।।

हे जननि ! तेरी माया को कौन जान सकता है, मैं (स्वयं ब्रह्मा) भी तेरी माया के सामने मूढ हो रहा हूं और यह विष्णु विवश होकर सोरहा है जो समस्त देवताओं में उत्तम कोटि का देवता है।

सांख्य शास्त्र के ज्ञाता तुम्हें जगत् की कर्त्री चेतनारहित प्रकृति नाम से पुकारते हैं किन्तु क्या तुम वस्तुतः वैसी ही हो जिसने इस जगन्निवास पुरुष को चेतनारहित कर दिया है।

हे मातः ! तू ही गुणों के साथ होकर विविध प्रकार के नाटक रचती है, तेरे विधान को कोई नहीं समझ पाता। ये ऋषि-मुनि नित्य सायं-प्रातः और मध्याह्न में सन्ध्या नाम से तेरी ही त्रिगुणात्मिका मूर्ति का ध्यान करते हैं।

बुद्धिर्हि बोधकरणा जगतां सदा त्वं
श्रीश्चापि देवि ! सततं सुखदा सुराणाम् ।
कीर्तिस्तथामतिधृतिः किल कान्तिरेव
श्रद्धारतिश्च सकलेषु जनेषु मातः ! ॥

नातः परं किल वितर्कशतैः प्रमाणं
प्राप्तं मया यदिह दुःखगतिं गतेन ।
त्वं चाऽत्र सर्वजगतां जननीति सत्यम्
निद्रालुतां वितरता हरिणाऽत्र दृष्टम् ॥

त्वं देवि वेद विदुषामपि दुर्विभाव्या
वेदोऽपि नूनमखिलार्थतया न वेद ।
यस्मात्त्वदुद्भव(···)श्रुतिराप्नुवाना
प्रत्यक्षमेव सकलं तव कार्यमेतत् ॥

जगत् में बोध करानेवाली बुद्धि तू ही है, देवताओं को सुख देनेवाली श्री तू ही है । हे मातः ! कीर्ति, मति द्युति, कान्ति, तथा सब मनुष्यों में श्रद्धा और रतिरूप से तू ही रहती है ।

हे जननि ! आपत्ति में मग्न मैं सैकड़ों तर्क करके भी तेरे कर्तृत्व में कोई प्रबल प्रमाण नहीं प्रस्तुत कर सकता केवल यही कहूंगा कि—हे जननि ! तू ही भुवनत्रय की जननी सत्य है ; क्योंकि तेरी ही गोद में विष्णु तक सो जाते हैं ।

हे देवि ! बड़े-बड़े वेदवित् विद्वानों के भी तू दुर्विभाव्य (अवर्णनीय) है, यथार्थ रूप में वेद भी तेरे विषय में अज्ञान है ; क्योंकि तेरे अनादि रूप का उद्भव (जन्म) वेदों (श्रुति) ने भी नहीं सुना, यह सब हे जननि ! तेरे से छिपा नहीं ।

कस्तेचरित्रमखिलं भुवि वेद धीमान्
नाहं हरिर्नच हरो न सुरास्तथाऽन्ये।
ज्ञातुं क्षमाश्च मुनयो न ममात्मजाश्च
दुर्वाच्य एव महिमा तव सर्वलोके ॥
यज्ञेषु देवि यदि नाम न ते वदन्ति
स्वाहेति वेदविदुषो हवने कृतेऽपि।
न प्राप्नुवन्ति सततं मखभागधेयम्
देवास्त्वमेव विबुधेष्वपि वृत्तिदाऽसि ॥
त्राता वयं भगवति! प्रथमं त्वया वै
देवारिसंभवभयादधुना तथैव।
भीतोऽस्मि देवि वरदे! शरणं गतोऽस्मि
घोरे निरीक्ष्य मधुना सह कैटभञ्च ॥

हे मा! कौन बुद्धिमान् तेरे समस्त चरित्र को (पृथ्वी पर) जान सकता है; क्योंकि मैं और विष्णु तथा महेश भी नहीं जानते हैं, अधिक क्या, तीनों लोकों में यावन्मात्र मुनि और मेरे पुत्र मरीच्यादि भी तेरी महिमा वर्णन करने में अशक्त हैं।

हे देवि! सारे देवता लोगों को तूं ही वृत्ति (जीविका) प्रदान करती है क्योंकि जब तक यज्ञों में स्वाहाकार (जो तेरा प्रधान नाम है) उच्चारित न हो देवताओं को हविः (भोजन) प्राप्त नहीं हो सकती अतः मनुष्य की तो कथा ही क्या? हे जननि! देवताओं तक में जीविका प्रदान करनेवाली तूं ही है।

हे माँ! पहिले जिस प्रकार राक्षसों से हमारी रक्षा की है वैसे ही इस समय भी रक्षा करो, मैं इस मधु के साथ कैटभ से बहुत भयभीत हूं।

नो वेत्ति विष्णुरधुना मम दुःखमेत-
ज्जाने त्वयाऽऽत्मविवशीकृतदेहयष्टिः ।
मुञ्चाऽऽदिदेवमथवाजहि दानवेन्द्रौ
यद्रोचते तव कुरुष्व महानुभावे ! ॥
जानन्ति देवि ! तव ये न परम्प्रभावं
ध्यायन्ति ते हरिहरावपि मन्दचित्ताः ।
ज्ञातं मयाऽद्य जननि ! प्रकटं प्रमाणं
यद्विष्णुरप्यतितरां विवशोऽद्य शेते ॥
सिन्धूद्भवाऽपि न हरिं प्रतिबोधितुं वै
शक्ता पतिं तव वशानुगमाद्यशक्त्या ।
मन्ये त्वया भगवति ! प्रसभं रमाऽपि
प्रस्वापिता न बुबुधे विवशीकृतेव ॥

हे जननि ! मेरे दुःख को यह विष्णु भी इस समय कैसे जाने, क्योंकि यह स्वयं निद्रा के वश हो रहा है अतः हे माँ ! क्या तो इस विष्णु को छोड़ दे नहीं तो इन राक्षसों को मार। इन दो में से जो रुचिकर हो सो करो।

हे देवि ! जो तेरे परम प्रभाव को नहीं जानते वे मन्दबुद्धि ही शिव, विष्णु की आराधना करते हैं। मैं (ब्रह्मा) आज तेरे पराक्रम को प्रत्यक्ष देखता हूं कि विष्णु तेरी माया के वशीभूत होकर निद्रा में मग्न हैं स्वेच्छा से जाग नहीं सकता।

लक्ष्मीजी भी अपने पति को तेरे वश में देखकर जगाने में असमर्थ हैं मैं तो यही मानता हूं कि रमा को भी तूं ने विष्णु के समान गाढ़ निद्रा में डाल दिया है जिससे वह जाग भी नहीं सकतीं।

धन्यास्त एव भुवि भक्तिपरास्तवांघ्रौ
त्यक्त्वाऽन्यदेवभजनं त्वयि लीनभावाः ।
कुर्वन्ति देवि ! भजनं सकलं निकामं
ज्ञात्वा समस्तजननीं किल कामधेनुम् ॥
धीकान्तिकीर्तिशुभवृत्तिगुणादयस्ते
विष्णोर्गुणास्तु परिहृत्य गताः क्व वाऽद्य ।
बन्दीकृतो हरिरसौ ननु निद्रयाऽत्र
शक्त्या तवैव भगवत्यतिमानवत्याः ॥
त्वं शक्तिरेव जगतामखिलप्रभावा
त्वन्निर्मितं च सकलं खलु भावमात्रम् ।
त्वं क्रीड़से निजविनिर्मितमोहजाले
नाट्ये यथा विहरते स्वकृते नटो वै ॥

हे मातः ! पृथ्वी पर वे ही मनुष्य धन्य हैं जो अन्यान्य देवताओं को छोड़ तेरी ही भक्ति करते हैं और मा को ही समस्त कामनापूर्ण करनेवाली कामधेनु मानते हैं ।

हे भगवति ! विष्णु में जो बुद्धि, कान्ति, कीर्ति तथा शुभ वृत्ति आदि गुण थे वे आज कहां चले गये ? यह तेरी ही माया है तूं ने ही प्रगाढ़ निद्रा निगड़ से विष्णु को बन्दी बना लिया है ।

हे जननि ! इस जगत् की शक्ति तू ही है ये दृश्यमान यावन्मात्र पदार्थ तेरे ही से जन्म पाते हैं ; जैसे कोई नट निज निर्मित नाटक में स्वयं ही अभिनय करता हो वैसे ही तूं भी स्वयं ही इस विश्व को रचकर उसमें विहार करती है ।

विष्णुस्त्वया प्रकटितः प्रथमं युगादौ
दत्ता च शक्तिरमला खलु पालनाय।
त्रातं च सर्वमखिलं विवशीकृतोऽद्य
यत्प्रोच्यते स तथाम्ब ! करोति नूनम् ॥

सृष्ट्वाऽत्र मां भगवति प्रविनाशितुञ्चे-
न्नेच्छास्ति ते कुरु दयां परिहृत्य मौनम्।
कस्मादिमौ प्रकटितौ किल कालरूपौ
यद्वा भवानि ! हसितुं नु किमिच्छसे माम् ? ॥

ज्ञातं मया तव विचेष्टितमद्भुतं वै
कृत्वाऽखिलं जगदिदं रमसे स्वतन्त्रा।
लीनं करोषि सकलं किल मां तथैव
हन्तुं त्वमिच्छसि भवानि ! किमत्र चित्रम् ॥

हे मा ! सृष्टि के आदि में विष्णु को तू ने ही प्रकट किया और उसको जगत्-रक्षा करने की शक्ति दी। आज वह तेरी जैसी आज्ञा होती है वैसा ही करता है।

हे देवि ! तुम ही ने तो मुझे जन्म दिया है अब यदि मुझे इस विनाश से बचाने की इच्छा है तो मौन छोड़कर दया करो। मैं जानता हूं, मेरे साथ हास्य करने के लिये ही इन कालरूप राक्षसों को प्रकट किया गया है।

हे मा ! मैंने तेरी अद्भुत चेष्टायें देखी, तू इस निखिल जगत् को रचकर स्वतन्त्र रूप से रमण करती है और स्वेच्छा से उसको अपने में लीन भी करती है। इसी प्रकार मेरा संहार ही करवाने की इच्छा हो तो क्या आश्चर्य है।

कामं कुरुष्व वधमद्य ममैव मात-
र्दुःखं न मे मरणजं जगदम्बिकेऽत्र ।
कर्त्ता त्वयैव विहितः प्रथमं स चाऽयं
दैत्याहतोऽथ मृत इत्ययशोगरिष्ठम् ॥
उत्तिष्ठ ! देवि कुरु रूपमिहाद्भुतं त्वं
मां वा त्विमौ जहि यथेच्छसि बाललीले ! ।
नोचेत्प्रबोधय हरिं निहनेदिमौ
यस्त्वत्साध्यमेतदखिलं किल कार्यजातम् ॥
एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ।
निस्सृत्य हरिदेहात्तु निःसृता पार्श्वतस्तदा ॥
त्यक्त्वाऽङ्गानि च सर्वाणि विष्णोरतुलतेजसः ।
निर्गता योगनिद्रा सा नाशाय च तयोस्तदा ॥
विस्पन्दितशरीरोऽसौ यदा जातो जनार्दनः ।
धाता परमिकां प्राप्तो मुदं दृष्ट्वा हरिन्ततः ॥

॥ इति श्रीब्रह्माकृतो देवीस्तवः सम्पूर्णः ॥

हे जगदम्ब ! यदि इच्छा हो तो मेरा वध आज ही करो, मुझे मरने की चिन्ता नहीं, किन्तु 'तुम्हारे द्वारा ही जो सर्वप्रथम जगत् का विधाता बनाया गया वह दैत्य से मारा गया' यह अपयश बहुत बड़ा है और बुरा भी।

हे देवि ! उठ और अपना अद्भुत रूप बना और मुझे मार या इन राक्षसों को मार जैसी इच्छा हो कर अथवा भगवान् विष्णु को जगा दे जो इन्हें नष्ट करे, यह सब कार्य तेरे आधीन है।

इस प्रकार जब ब्रह्माजी ने स्तुति की तो योगनिद्रा विष्णु को छोड़ बाहर आगई और भगवान् के शरीर को सचेष्ट देखकर ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए।

वेदकृता जगदम्बस्तुतिः

त्वं भूमिः सर्व भूतानां प्राणः प्राणवतां तथा ।
धीः श्रीः कान्तिः क्षमा शान्तिः श्रद्धा मेधा धृतिःस्मृतिः ।।

नमो देवि! महादेवि! विश्वोत्पत्तिकरे ! शिवे ! ।
निर्गुणे सर्वभूतेशि ! मातः ! शङ्करकामदे ! ।।

त्वमुद्गीथेऽर्धमात्राऽसि गायत्री व्याहृतिस्तथा ।
जया च विजया धात्री लज्जा कीर्तिः स्पृहा दया ।।

त्वां संस्तुमोऽम्ब ! भुवनत्रयसंविधान-
दक्षां दयारसयुतां जननीं जनानाम् ।
विद्यां शिवां सकललोकहितां वरेण्यां
वाग्बीजवासनिपुणां भवनाशकर्त्रीम् ।।

श्री शंकर भगवान् की कामनाओं को पूर्ण करनेवाली, हे समस्त भूतसंघ की अधिष्ठात्रि ! तथा जननि ! महादेवि ! दुर्गे ! तुम्हें नमस्कार है ।

गायत्री और व्याहृति तथा प्रणव, हे देवि ! तू ही है । लज्जा, कीर्ति तथा दया भी तेरा ही रूप है और तू ही जया, विजया तथा धात्री रूपी है।

हे जननि ! तीनों भुवनों की रचना करने में चतुरे ! तू ही दयार्द्र हृदया माता है, हम आज तुम्हारी ही स्तुति करते हैं ।

हे मातः ! लोक का हित करनेवाली कल्याणकारिणी विद्या तू ही हैं और वाग्बीज (ह्रीं) में तुम ही निवास करती हो ।

ब्रह्मा हरः सौरिसहस्रनेत्र-
वाग्वह्निसूर्या भुवनाधिनाथाः ।
ते त्वत्कृताःसन्ति ततो न मुख्या
माता यतस्त्वं स्थिरजङ्गमानाम् ॥
सकलभुवनमेतत्कर्तुकामा यतस्त्वं
सृजसि जननि ! देवान्विष्णुरुद्राजमुख्यान् ।
स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा
न खलु तव कथश्चिद्देवि ! संसारलेशः ॥
न ते रूपं वेत्तुं सकलभुवने कोऽपि निपुणो
न नाम्नां संख्या ते कथितुमिह योग्योऽस्ति पुरुषः ।
यदल्पं कीलालं कथयितुमशक्तः स तु नरः
कथं पारावाराकलनचतुरः स्याद्गतमतिः ॥

ब्रह्मा, सरस्वती तथा इन्द्रादि लोकपाल और सूर्यादि ग्रहमण्डल सब तेरे ही रचे हुए हैं क्योंकि तू ही स्थावरजंगमात्मक ब्रह्माण्ड की मा है ।

हे जननि ! समस्त भुवनों की रचना जब तू करना चाहती है तो तू ही ब्रह्मा, विष्णु महेश को उत्पन्न करती है ।

सृष्टि का सर्जन, पालन तथा संहार ये तेरी ही आज्ञा से करते हैं । हे मा ! तू उक्त तीनों गुणात्मक कर्मों से परे (गुणातीत) है ।

माँ ! इन सम्पूर्ण भुवनों में तेरा रूप जानने में कोई विरला ही निपुण है । तेरे नामों की गणना पुरुष की सामर्थ्य से परे है, क्योंकि छोटे से जलाशय का वर्णन करने में असमर्थ मनुष्य समुद्र का वर्णन कैसे कर सकता है ।

न देवानां मध्ये भगवति ! तवानन्तविभवं
विजानात्येकोऽपि त्वमिह भुवनैकासि जननि ! ।
कथं मिथ्या विश्वं सकलमपि चैका रचयसि
प्रमाणत्त्वं तस्मिन् निगमविहितं वेदवचनम् ॥
निरीहैवाऽसि त्वं निखिलजगतां कारणमहो
चरित्रं ते चित्रं भगवति ! मनो नो व्यथयति ।
कथङ्कारं वाच्यः सकलनिगमागोचरगुणं
प्रभावं स्वं यस्मात्स्वयमपि न जानासि परमम् ॥

॥ इति श्रीवेदकृता जगदम्बस्तुतिः सम्पूर्णम् ॥

हे माँ ! इस अनन्त तेरे विभव को देवताओं में भी कोई नहीं जानता कि समग्र ब्रह्माण्डवासी प्राणीमात्र की तूं ही एक मा है ।

वेदवेदान्तों के वचन भी इस विषय में अपूर्ण हैं कि तूं एकाकिनी इस मिथ्या जगत् प्रपंच को कैसे रचती है ।

यह आश्चर्य है कि तूं समस्त जगत् की जननी होती हुई भी इच्छा रहित है । हे मा ! तेरा चरित्र बड़ा विचित्र है जिसके मनन से मन निर्भय हो जाता है ।

समस्त शास्त्र भी जिसका वर्णन नहीं कर सकते वह तेरा(री) (महिमा) प्रभाव और तो कौन जान सकता है, तूं स्वयं भी नहीं जानती है ।

देवीभागवते इलाकृतो देविस्तवः

दिव्यं च ते भगवति प्रथितं स्वरूपं दृष्टं मया सकललोकहितानुरूपम् ।
वन्दे त्वदङ्घ्रिकमलं सुरसंघसेव्यं कामप्रदं जननि! चाऽपि विमुक्तिदञ्च ॥
को वेत्ति तेऽम्ब! भुवि मर्त्यतनुं निकामं मुह्यन्ति यत्र मुनयश्च सुराश्च सर्वे ।
ऐश्वर्यमेतदखिलं कृपणे दयाञ्च दृष्ट्वैव देवि! सकलं किल विस्मयो मे ॥
शम्भुर्हरिः कमलजो मघवा रविश्च वित्तेशवह्निवरुणाः पवनश्च सोमः ।
जानन्ति नैव वसवोऽपि हि ते प्रभावं बुध्येत्कथं तव गुणानुगुणो मनुष्यः ॥
जानाति विष्णुरमितद्युतिरम्ब!साक्षात् त्वां सात्विकीमुदधिजां सकलार्थदां च।
को राजसीं हर उमां किल तामसीं त्वां वेदाम्बिके!न तु पुनः खलु निर्गुणान्त्वाम्॥

हे भगवति! समस्त संसार का हित करनेवाला तेरा प्रसिद्ध स्वरूप मैंने देखा। हे जननि! भुक्ति और मुक्ति के दाता सकल सुरसमूह द्वारा सेवित तेरे चरणकमलों में मैं प्रणाम करता हूं।

हे अम्ब! पृथ्वी पर का कौन प्राणी तेरे स्वरूप को यथावत् जानता है जहाँ बड़े-बड़े देव और मुनि लोग ही मोह को प्राप्त हो जाते हैं। हे मा! तेरा इतना महान् ऐश्वर्य और निर्बल पर दया देखकर मुझे अत्यधिक आश्चर्य हो रहा है।

हे दुर्गे! ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं इन्द्र, सूर्य, अग्नि, कुबेर, वरुण, पवन और चन्द्रमा तथा वसु आदि प्रधान-प्रधान देवता भी तेरा गुणगान यथावत् नहीं कर सकते फिर मनुष्य की शक्ति ही क्या है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी हे अम्ब! तुम्हें महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती के रूप में ही जानते हैं। तेरे निर्गुण स्वरूप का उनको भी पता नहीं।

क्वाऽहं सुमन्दमतिरप्रतिमप्रभावः क्वाऽयं तवातिनिपुणो मयि सुप्रसादः ।
जाने भवानि! चरितं करुणासमेतं यत् तावकांश्च दयसे त्वयि भावयुक्तान् ॥

वृतास्त्वया हरिरसौ वनजेशयाऽपि नैवाचरत्यपि मुदं मधुसूदनश्च ।
पादौ तवादिपुरुषः किल याम्बकेन कृत्वा करोति च करेण शुभौ पवित्रौ ॥

वाञ्छत्यहो हरिरशोक इवाति कामं पादाहतिं प्रमुदितः पुरुषः पुराणः ।
तं त्वं करोषि रुषिता प्रणतं च पादे दृष्ट्वा पतिं सकलदेवनुतं स्मरार्तम् ॥

वक्षःस्थले वससि देवि! सदैव तस्य पर्यङ्कवत् सुचरिते विपुलेऽति शान्ते ।
सौदामिनीव सुघने सुविभूषिते च किन्तेन वाहनमसौ जगदीश्वरोऽपि ॥

हे मातः ! कहां तो मन्दबुद्धि मैं और कहां यह तेरा सुमधुर प्रसाद (प्रसन्नता)। हे जननि ! मैं जानता हूं तूं तेरे भक्तों पर इसी प्रकार दया किया करती है।

यह मधुसूदन भगवान् विष्णु, (जिसे तूं ने पतिरूप से स्वीकार किया है) तेरे चरणों का स्पर्श कर अपने हाथों को पवित्र मानता है।

हे मा ! जिस प्रकार अशोक वृक्ष सुन्दर युवति के पाद-प्रहार से कुसुमित हो जाता है उसी प्रकार भगवान् विष्णु भी प्रफुल्लित होने की कामना से, तेरे पाद-प्रहार की वाञ्छा किया करते हैं। अधिक क्या समस्त सुरसमूह का स्वामी विष्णु कामार्त्त होकर तेरे चरणों में लोटता है।

हे महालक्ष्मि ! भगवान् विष्णु के सुन्दर पलंग के सदृश विशाल वक्षःस्थल पर तूं निवास करती है जिस प्रकार श्यामघन में विद्युत चमकती हो। इससे जगत् का स्वामी विष्णु भी क्या तेरा वाहन नहीं हो गया है।

त्वं चेज्जहासि मधुसूदनमम्ब ! कोपान्नैवार्चितोऽपि स भवेत्किल शक्तिहीनः ।
प्रत्यक्षमेव पुरुषं स्वजनास्त्यजन्ति शान्तं श्रियोज्झितमतीव गुणैर्वियुक्तम् ॥

ब्रह्मादयः सुरगणाः न तु किं युवत्यो ये त्वत्पदाम्बुजमहर्निशमाश्रयन्ति ।
मन्ये त्वयैव विहिताः खलु ते पुमांसः किं वर्णयामि तव शक्तिमनन्तवीर्ये ! ॥

त्व न्नापुमान्न च पुमान् इति मे विकल्पो या काऽसि देवि सगुणा ननु निर्गुणा वा।
तां त्वां नमामि सततं किल भावयुक्तो वाञ्छामि भक्तिमचलां त्वयि मातरन्ते ॥

॥ इति श्रीइलाकृतो देविस्तवः सम्पूर्णः ॥

हे अम्ब ! यदि तूं इस विष्णु को त्याग दे तो कोई भी इसकी पूजा-अर्चा नहीं करेगा ; क्योंकि संसार में लक्ष्मीहीन पुरुष की कोई पूजा नहीं करता, कुटुम्बी भी छोड़ देते हैं, यह प्रत्यक्ष है ।

हे जननि ! ब्रह्मादिक समस्त देवता, तेरे ही चरणकमलों का आश्रय लिये हुए हैं । हे मा ! तूं ने ही उनको पुरुषरूप दिया है, अधिक क्या वर्णन करूं ।

हे देवि ! तूं पुरुष है या स्त्री है, यह मैं नहीं जान सका । तूं सगुण या निर्गुण है, यह भी मुझे पता नहीं । अन्त में मैं तेरे चरणों में बार-बार प्रणाम कर तेरी दृढ़ भक्ति मांगता हूं सो कृपा करके दे दे ।

देवी भाग० ८ स्कं० अ० १

मनुकृता देव्याःस्तुतिः

नमो नमस्ते देवेशि ! जगत्कारणकारणे ! ।
शंखचक्रगदाहस्ते ! नारायणहृदाश्रिते ! ॥
वेदमूर्ते ! जगन्मातः कारणस्थानरूपिणि ! ।
वेदत्रयप्रमाणज्ञे सर्वदेवनुते ! शिवे ! ॥
माहेश्वरि महाभागे महामाये महोदये ।
महादेवि प्रियावासे महादेवप्रियङ्करि ॥
गोपेन्द्रस्य प्रिये ज्येष्ठे महानन्दे महोत्सवे ।
महामारीभयहरे नमो देवादिपूजिते ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि! नारायणि! नमोऽस्तुते ॥

हे देवि ! जगत् के कारण ब्रह्मा का भी कारण तू है, विष्णु के वक्षःस्थल पर निवास करनेवाली शंख, चक्र, गदाधारिणी, हे वैष्णवीशक्ति ! तेरे लिये नमस्कार है ।

हे वेदमूर्ते ! ज्ञानस्वरूपे) हे जगत् की जननि ! हे कारणरूपिणि ! हे वेदत्रय तत्व को जाननेवाली ! हे सुरासुर वन्दनीये शिवे ! तेरे लिये नमस्कार है ।

हे महेश प्रिये ! हे महामाये ! हे महाभागे ! तू भगवान् श्री कृष्ण की भी पूर्वजा अर्थात् उनसे बड़ी है । हे आनन्दस्वरूपे ! इन्द्रादि पूजिते ! उत्सव कारिणि ! तेरे लिये नमस्कार है ।

समस्त मंगलों की मंगलकर्त्री ! सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध करनेवाली तथा भक्त-वत्सले ! हे शिवे ! हे नारायणि ! तेरे लिये नमस्कार है ।

यतश्चेदं यया विश्वमोतं प्रोतं च सर्वदा ।
तथा चैतन्यमाद्यन्तरहितं तेजसां निधिम् ॥
ब्रह्मा यदीक्षणात्सर्वं करोति च हरिः सदा ।
पालयत्यपि विश्वेशः संहर्ता यदनुग्रहात् ॥
मधुकैटभसंभूतः भयार्त्तः पद्मसंभवः ।
यस्याःस्तवेन मुमुचे घोरदैत्यभवाम्बुधेः ॥
त्वं ह्रीः कीर्तिः स्मृतिः कान्तिः कमला गिरिजा सती ।
दाक्षायणी वेदगर्भा बुद्धिदात्री सदाऽभया ॥
स्तोष्ये त्वां च नमस्यामि पूजयामि नमामि च ।
ध्यायामि भावये वीक्षे श्रोष्ये देवि ! प्रसीद मे ॥

जिससे यह प्रपंच (सृष्टि) उत्पन्न होता है एवं जो समस्त विश्व में व्यापक है, उस चैतन्य स्वरूपा तेजोमयी आद्यशक्ति को मैं नमस्कार करता हूं।

जिसके नेत्र-संकेत से ही ब्रह्मा सृष्टि करने लगता है और विष्णु पालन में प्रवृत्त होता है तथा महेश जिसकी कृपा से संहार में समर्थ होता है, उस जननी को नमस्कार है।

जिसकी स्तुति करके ब्रह्मा, मधुकैटभ के भय से मुक्त हुआ, उस भवभय-हारिणी को नमस्कार है।

हे पार्वति ! तूं लज्जा, कीर्ति, स्मरण शक्ति, सुन्दरता और लक्ष्मी है। तूं ही कमला, गिरिजा, सती, दक्षकन्या और बुद्धि देनेवाली वेदविद्या है।

हे मा, मैं तेरी ही स्तुति करूंगा, तेरी ही पूजा करूंगा, तेरे ही स्वरूप के मैं सर्वत्र दर्शन करूं, तुम्हें ही देखूं और सुनूं तथा अहर्निश तेरा ही ध्यान रहे। हे देवि ! मुझपर ऐसी कृपा कर।

ब्रह्मा वेदनिधिः कृष्णो लक्ष्म्यावासः पुरन्दरः।
त्रिलोकाधिपतिः पाशी यादसाम्पतिरुत्तमः ॥
कुबेरो निधिनाथोऽभूत् पयोजातः परेतराट् ।
नैर्ऋतो रक्षसां नाथो जातो सोमो ह्यपोमयः ॥
त्रैलोक(क्य)वन्द्यो लोकेशि ! महामाङ्गल्य दायिनि ! ।
नमस्तेऽस्तु पुनर्भूयो जगन्मातर्नमो नमः ॥

॥ इति श्रीमनुकृतं देव्याःस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अथ शंकरकृतो देव्याःस्तवः

ब्रह्मोवाच।

इत्युक्त्वा विरते विष्णौ देवदेवे जनार्दने।
उवाच शङ्करः शर्वः प्रणतः पुरतः स्थितः ॥

हे मा ! तेरी ही दया से ब्रह्मा वेदनिधि हो गया, कृष्ण भी लक्ष्मी का आश्रय हो गया, पुरन्दर (इन्द्र) तीनों लोकों का स्वामी बन गया, पाशधारी वरुण जल का स्वामी बन गया, कुबेर कोषाध्यक्ष हो गया, यम प्रेतराज बन गया, निर्ऋति राक्षसों का अधिपति हो गया और जलमय सोम त्रिलोकी में वन्दनीय हो गया। हे लोकेश्वरि ! मंगलकारिणी ! जगन्मातः ! तुम्हें बार-बार प्रणाम है।

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् विष्णु के स्तुति करके विरत होनेपर भगवान् शंकर देवी के सम्मुख हाथ जोड़ स्तुति करने लगे।

शिव उवाच ।

यदि हरिस्तव देवि विभावजस्तदनु पद्मज एव तवोद्भवः ।
किमहमत्र तवाऽपि न सद्गुणः सकललोकविधौ चतुरा शिवे ! ॥
त्वमसिभूः पवनः सलिलं तथा खमपि वह्निगुणाश्च तथा पुनः ।
जननि ! तानि पुनः करणानि च त्वमसि बुद्धिमनोऽप्यथहं कृतिः ॥
न च विदन्ति वदन्ति च येऽन्यथा हरिहराजकृतं निखिलं जगत् ।
तव कृतास्त्रय एव सदैव ते विरचयन्ति जगत् सचराचरम् ॥
न च विदन्ति वदन्ति च ये जना हरिहराजकृतं निखिलं जगत् ।
तव कृतास्त्रय एव सदैव ते विरचयन्ति जगत् सचराचरम् ॥
अवनिवायुखवह्निजलादिभिः सविषयैः सगुणैश्च जगद्भवेत् ।
यदि तदा कथमद्य च तत्स्फुटं प्रभवतीति तवाम्ब ! कलामृते ॥

शिवजी बोले—हे देवि ! यदि विष्णु भी तेरे विभाव (प्रभाव) से उत्पन्न हुआ है तो ब्रह्मा की उत्पत्ति भी तुझसे ही है और फिर क्या मैं तेरा ही गुणरूप नहीं हूं । हे जननि ! तूं भुवन-रचना में बड़ी चतुर है ।

हे जननि ! पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश और पवन तूं ही है । रूप, रस आदि गुण तथा मन, बुद्धि और अहंकार तेरे ही रूप हैं ।

जो लोग यह कहते हैं कि समस्त संसार के रचयिता ब्रह्मा, विष्णु और महेश ही हैं, वे कुछ नहीं जानते । वस्तुतः वे तीनों ही तेरे बनाये हुए हैं और तेरी आज्ञा से चराचर जगत् की रचना करते हैं ।

पंचमहाभूत और उनके गुण तथा विषय ही जगत् के कारण हैं यह सत्य है, किन्तु हे अम्ब ! तेरी कला बिना ये स्थावर जंगम प्राणी प्रकट नहीं हो सकते ।

भवसि सर्वमिदं सचराचरं त्वमजविष्णुशिवाकृतिकल्पितम् ।
विविधवेषविलासकुतूहलैर्विरमसे रमसेऽम्ब यथारुचि ॥

सकललोकसिसृक्षुरहं हरिः कमलभूश्च भवाय यदाऽम्बिके ।
तवपदाम्बुजपांशुपरिग्रहं समधिगम्य तदाननचक्रिम ॥

यदि दयार्द्रमना न सदाम्बिके कथमिदं बहुधा विहितं जगत् ।
सचिवभूपतिभृत्यजनावृतं बहुधनैरधनैश्च समाकुलम् ॥

तव गुणास्त्रय एव सदाक्षमा प्रकटनावनसंहरणेषु वै ।
हरिहरद्रुहिणाश्च क्रमात्त्वया विरचिता जगतां किल कारणम् ॥

हे मातः ! तू ही अपनी स्वेच्छा से ब्रह्मा, विष्णु महेश की कल्पना कर इस जगत् का रूप धारण कर लेती है। तू ही यथारुचि अनेक रूप धारण कर रमण करती है और विराम भी करती है।

हे जगज्जननि ! मैं और ब्रह्मा तथा विष्णु भी जब सृष्टि करने की इच्छा करते हैं तो तेरे चरणकमलों की रज को प्रथम शिर पर धरकर फिर कार्य प्रारम्भ करने में समर्थ होते हैं।

हे अम्बिके ! यदि तू दयालु हृदया नहीं होती तो क्योंकर नाना विध जगत् का निर्माण होता। कोई राजा, कोई मन्त्री तो कोई सेवक है तथा कोई निर्धन तो कोई धनी है, यही संसार का नानात्व है।

ये सत्व, रज, तम तेरे ही तीनों गुण ब्रह्मा, विष्णु, महेश का रूप धारण कर जगत् के कारण बन जाते हैं।

परिचितानि मया हरिणा तथा कमलजेन विमानगतेन वै।
पथिगतैर्भुवनानि कृतानि वा कथय केन भवानि! नवानि च॥
सृजसि पासि जगज्जगदम्बिके स्वकलया कियदिच्छसि नाशितुम्।
रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विद्म वयं शिवे!॥
जननि! देहि पदाम्बुजसेवनं युवति! भागवतानपि नः सदा।
पुरुषतामधिगम्य पदाम्बुजाद्विरहिताः क्व लभेम सुखं स्फुटम्॥
न रुचिरस्ति ममाम्ब! पदाम्बुजं तव विहाय शिवे भुवनेष्वलम्।
निवसितुं नरदेहमवाप्य च त्रिभुवनस्य पतित्वमवाप्य वै॥
सुदति! नास्ति मनागपि मे रतिर्युवतिभावमवाप्य तवाऽन्तिके।
पुरुषता क्व सुखाय भवत्यलं तव पदं न यदीक्षणगोचरः॥

हे भवानि! मैंने और ब्रह्मा विष्णु ने विमानों में बैठ कर हमारी परिचित सृष्टि से पृथक् अनेक भुवन देखे, कृपा कर बता वे किसके रचे हुए हैं।

हे शिवे! तू अपनी कला से ही संसार का सर्जन, पालन तथा संहार कर उस परम पुरुष (सदा शिव) को प्रसन्न करती रहती है, हम तेरी विभूति को नहीं जान सकते।

हे जननि! यद्यपि हम भगवान् के भक्त हैं, किन्तु तेरे चरणों की भक्ति तो अवश्य ही दे, क्योंकि पुरुषत्त्व को प्राप्त कर हम तेरे चरणककलों से विरहित हों तो सुख कैसे प्राप्त हो सकता है।

हे अम्ब! मनुष्य देह प्राप्त कर तीनों भुवनों का राज्य भी यदि मुझे प्राप्त हो, तोभी तेरे चरणकमलों को त्याग कर मेरी रुचि उस पर नहीं हो सकती।

हे अम्बिके! मेरी यह स्वच्छ कीर्ति तीनों लोकों में फैलती रहे कि 'मैं दुर्गा के चरणकमलों का प्रधान सेवक हूं' इसीसे मोक्ष की प्राप्ति है।

त्रिभुवनेषुभवत्त्वियम्बिके मम सदैव हि कीर्तिरनाविला ।
युवतिभावमवाप्य पदाम्बुजं परिचितं तव संसृतिनाशनम् ॥

भुवि विहाय तवान्तिकसेवनं क इह वाञ्छति राज्यमकण्टकम् ।
त्रुटिरसौ किल याति युगात्मतां न निकटं यदि तेऽङ्घ्रिसरोरुहम् ॥

तपसि ये निरता मुनयोऽमला तव विहाय पदाम्बुजपूजनम् ।
जननि ! ते विधिना किल वञ्चिताः परिभवो विभवे परिकल्पितः ॥

न तपसा न दमेन समाधिना न च तथा विहितैः क्रतुभिर्यथा ।
तव पदाब्जपरागनिषेवणात् भवति मुक्तिरजे - भगसागरात् ॥

कुरु दयां दयसे यदि देवि मां कथय मन्त्रमनाविलमद्भुतम् ।
समभवम्प्रजपन्सुखितो ह्यहं सुविशदं च नवार्णमनुत्तमम् ॥

हे दुर्गे ! कौन ऐसा अज्ञानी है जो तेरी सेवा को छोड़ अकंटक राज्य की कामना करता हो, तेरे चरणों से दूर रहना ही मानव-जीवन की प्रधान त्रुटि है।

जो ऋषि मुनि तेरे पादपद्मों को छोड़ तप में निरत हैं, हे जननि ! विधाता ने उनको ठग लिया है, वे भोले-भाले पराजय को ही विजय समझ रहे हैं।

हे अजे ! भवसागर से मुक्ति पाने का साधन, न तो तप ही है न इन्द्रियनिग्रह और न समाधि ही है जैसा कि तेरे चरणसरोरुह की सेवा।

हे देवि ! यदि मुझपर कुछ भी स्नेह है तो दया कर और मुझे अपना अद्भुत नवार्णव मंत्र उपदेश करो ज़िसको जपकर मैं सुखी होऊँ।

प्रथमजन्मनि चाधिगतो मया तदधुना न विभाति नवाक्षरः ।
कथय मां मनुमद्य भवार्णवाज्जननि ! तारय तारय तारके ! ॥

॥ इति श्रीशंकरकृतो देव्याःस्तवः सम्पूर्णम् ॥

ललितापञ्चकम्

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं विम्बाधरम्पृथुलमौक्तिकशोभिनासम् ।
आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम् ॥
प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं रक्ताङ्गुलीयलसदङ्गुलिपल्लवाढ्याम् ।
माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानां पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषुसृणीदधानाम् ॥

हे जननि ! हे तारे ! यह नवार्णव मन्त्र मैंने प्रथम जन्म में तो प्राप्त किया था, किन्तु अब स्मरण नहीं होता अतः कृपा कर उसको पुनः मुझे बतला और इस भवसागर से तार दे उद्धार कर दे ।

मैं प्रातःकाल श्री ललिता देवी के उस मनोहर मुखकमल का स्मरण करता हूं, जिसके विम्बसमान रक्तवर्ण अधर, विशाल मौक्तिक (मोती के बुलाक) से सुशोभित नासिका और कर्णपर्यन्त फैले हुए विस्तीर्ण नयन हैं, जो मणिमय कुण्डल और मन्द मुसकान से युक्त है तथा जिसका ललाट कस्तूरिका तिलक से सुशोभित है।

मैं श्रीललितादेवी की भुजारूपिणी कल्पलता का प्रातःकाल स्मरण करता हूं, जो लाल अंगूठी से सुशोभित सुकोमल अंगुलिरूप पल्लवोंवाली तथा रत्नखचित सुवर्णकङ्कण और अङ्गदादि से भूषित है एवं जिसने पुण्ड्र-ईख के धनुष, पुष्पमय वाण और अङ्कुश धारण किये हैं ।

प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम् ।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम् ॥
प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम् ।
विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूतां विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसातिदूराम् ॥
प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति ।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति ॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना विद्यां श्रियं विमलसौख्यमनन्तकीर्तिम् ॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यकृतं ललितापञ्चकं सम्पूर्णम् ॥

मैं श्री ललितादेवी के चरणकमलों को, जो भक्तों को अभीष्ट फल देनेवाले और संसार सागर के लिये सुदृढ़ जहाजरूप हैं तथा कमलासन श्री ब्रह्माजी आदि देवेश्वरों से पूजित और पद्म अङ्कुश, ध्वज एवं सुदर्शनादि मङ्गलमय चिह्नों से युक्त हैं, प्रातःकाल नमस्कार करता हूं।

मैं प्रातःकाल परमकल्याणकारिणी श्री ललिता भवानी की स्तुति करता हूं, जिनका वैभव वेदान्तवेद्य है, जो करुणामयी होने से शुद्धस्वरूपा हैं, विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय की मुख्य हेतु हैं, विद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं तथा वेद, वाणी और मन की गति से अति दूर हैं।

हे ललिते! मैं तेरे पुण्यनाम कामेश्वरी, कमला, महेश्वरी, शाम्भवी, जगज्जननी, परा, वाग्देवी तथा त्रिपुरेश्वरी आदि का प्रातःकाल अपनी वाणी द्वारा उच्चारण करता हूं।

माता ललिता के अति सौभाग्यप्रद और सुललित इन पांच श्लोकों को जो पुरुष प्रातःकाल पढ़ता है, उसे शीघ्र ही प्रसन्न होकर ललिता देवी विद्या, धन, निर्मल सुख और अनन्त कीर्ति देती हैं।

मीनाक्षीपञ्चरत्नम्

उद्यद्भानुसहस्रकोटिसदृशां केयूरहारोज्ज्वलां
बिम्बौष्ठीं स्मितदन्तपङ्क्तिरुचिरां पीताम्बरालङ्कृताम् ।
विष्णुब्रह्मसुरेन्द्रसेवितपदां तत्त्वस्वरूपां शिवां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारां निधिम् ।।

मुक्ताहारलसत्किरीटरुचिरां पूर्णेन्दुवक्त्रप्रभां
शिञ्जन्नूपुरकिङ्किणीमणिधरां पद्मप्रभाभासुराम् ।
सर्वाभीष्टफलप्रदां गिरिसुतां वाणीरमासेविताम् । मीनाक्षीं०।।

जो उदय होते हुए सहस्रकोटि सूर्यों के सदृश आभावाली हैं, केयूर और हार आदि आभूषणों से भव्य प्रतीत होती हैं, बिम्बाफल के समान अरुण ओठोंवाली हैं, मधुर मुसकानयुक्त दन्तावलि से जो सुन्दरी मालूम होती हैं तथा पीताम्बर से अलङ्कृता हैं ; ब्रह्मा, विष्णु आदि देवनायकों से सुसेवित चरणोंवाली उन तत्त्व-स्वरूपिणी कल्याणकारिणी करुणावरुणालया श्री मीनाक्षी देवी का मैं निरन्तर वन्दन करता हूं ।

जो मोती की लड़ियों से सुशोभित मुकुट धारण किये सुन्दरी मालूम होती हैं, जिनके मुख की प्रभा पूर्णचन्द्र के समान है, जो झनकारते हुए नूपुर (पायजेब), किङ्किणी (करधनी) तथा अनेकों मणियां धारण किये हुए हैं, कमल की-सी आभा से भासित होनेवाली, सब को अभीष्ट फल देनेवाली, सरस्वती और लक्ष्मी आदि से सेविता उन गिरिराजनन्दिनी करुणावरुणालया श्री मीनाक्षी देवी का मैं निरन्तर वन्दन करता हूं ।

श्रीविद्यां शिववामभागनिलयां ह्रींकारमन्त्रोज्ज्वलां
श्रीचक्राङ्कितविन्दुमध्यवसतिं श्रीमत्सभानायिकाम् ।
श्रीमत्षण्मुखविघ्नराजजननीं श्रीमज्जगन्मोहिनीम्। मीनाक्षीं०॥

श्रीमत्सुन्दरनायिकां भयहरां ज्ञानप्रदां निर्मलां
श्यामाभां कमलासनार्चितपदां नारायणस्यानुजाम् ।
वीणावेणुमृदङ्गवाद्यरसिकां नानाविधामम्बिकाम् ।मीनाक्षीं०॥

नानायोगिमुनीन्द्रहृत्सुवसतिं नानार्थसिद्धिप्रदां
नानापुष्पविराजिताङ्घ्रियुगलां नारायणेनार्चिताम् ।

जो श्री विद्या हैं, भगवान् शङ्कर के वामभाग में विराजमान हैं, 'ह्रीं' बीज-मन्त्र से सुशोभिता हैं, श्री चक्राङ्कित विन्दु के मध्य में निवास करती हैं तथा देवसभा की अधिनेत्री हैं, उन श्रीस्वामी कार्तिकेय और गणेशजी की माता जगन्मोहिनी करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षी देवी का मैं निरन्तर वन्दन करता हूं।

जो अति सुन्दर स्वामिनी हैं, भयहारिणी हैं, ज्ञानप्रदायिनी हैं, निर्मला और श्यामला हैं, कमलासन श्री ब्रह्माजी द्वारा जिनके चरणकमल पूजे गये हैं तथा श्री नारायण (कृष्णचन्द्र) की जो अनुजा (छोटी वहन) हैं, वीणा, वेणु, मृदङ्गादि वाद्यों की रसिका उन विचित्र लीलाविहारिणी करुणावरुणालया श्री मीनाक्षी देवी का मैं निरन्तर वन्दन करता हूं!

जो अनेकों योगिजन और मुनीश्वरों के हृदय में निवास करनेवाली तथा नाना प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति करानेवाली हैं, जिनके चरणयुगल विचित्र पुष्पों से सुशोभित हो रहे हैं, जो श्री नारायण से पूजिता हैं तथा जो नाद ब्रह्म-

नादब्रह्ममयीं परात्परतरां नानार्थतत्त्वात्मिकाम् । मीनाक्षीं० ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं मीनाक्षीपञ्चरत्नं सम्पूर्णम् ॥

भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता ।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ! ॥

भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः ।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाऽहम् । गतिस्त्वं० ॥

मयी, परे से भी परे और नाना पदार्थों की तत्त्वस्वरूपा हैं उन करुणावरुणालया श्री मीनाक्षी देवी का मैं निरन्तर वन्दन करता हूं।

हे भवानि ! पिता, माता, भाई, दाता, पुत्र, पुत्री, भृत्य, स्वामी, स्त्री, विद्या और वृत्ति—इनमें से कोई भी मेरा नहीं है। हे देवि ! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो।

मैं अपार भवसागर में पड़ा हुआ हूं, महान् दुःखों से भयभीत हूं, कामी, लोभी, मतवाला तथा घृणा योग्य संसार के बन्धनों में बंधा हुआ हूं. हे भवानि ! अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो।

न जानामि दानं न च ध्यानयोगं
न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्रमन्त्रम् ।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगम् । गतिस्त्वं ॥

न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं
न जानामि मुक्तिं लयम्वा कदाचित् ।
न जानामि भक्तिं व्रतं वाऽपि मातर्गतिस्त्वं० ॥

कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः
कुलाचारहीनः कदाचारलीनः ।
कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धः सदाऽहम् । गतिस्त्वं० ॥

हे देवि ! मैं न तो दान देना जानता हूं और न ध्यान मार्ग का ही मुझे पता है, तन्त्र और स्तोत्र-मन्त्रों का भी मुझे ज्ञान नहीं है, पूजा तथा न्यास आदि की क्रियाओं से तो मैं एकदम कोरा हूं, अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो।

न पुण्य जानता हूं और न तीर्थ, न मुक्ति का पता है एवं न लय का। हे मातः ! भक्ति और व्रत भी मुझे ज्ञात नहीं है, हे भवानि ! अब केवल तुम्हीं मेरा सहारा हो।

मैं कुकर्मी, बुरी संगति में रहनेवाला, दुर्बुद्धि, दुष्ट दास, कुलोचित सदाचार से हीन, दुराचारपरायण, कुत्सित दृष्टि रखनेवाला और सदा दुर्वचन बोलनेवाला हूं हे भवानि ! मुझ अधम की एकमात्र तुम्हीं गति हो।

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित् ।
न जानामि चान्यत् सदाऽहं शरण्ये !। गतिस्त्वं० ॥

विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये ।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि । गतिस्त्वं० ॥

अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो
महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः ।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाऽहम् । गतिस्त्वं० ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं भवान्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥

मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य किसी भी देवता को नहीं जानता, हे शरण देनेवाली भवानि ! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो ।

हे शरण्ये ! तुम विवाद, विषाद, प्रमाद, परदेश, जल, अनल, पर्वत, वन तथा शत्रुओं के मध्य में सदा ही मेरी रक्षा करो, हे भवानि ! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो ।

हे भवानि ! मैं सदा से ही अनाथ, दरिद्र, जरा-जीर्ण, रोगी, अत्यन्त दुर्बल, दीन, गूंगा, विपद्ग्रस्त और नष्ट हूं, अब तुम्हीं एकमात्र मेरी गति हो ।

श्रीभगवतीस्तोत्रम्

जय भगवति देवि नमो वरदे, जय पापविनाशिनि बहुफलदे ।
जय शुम्भनिशुम्भकपालधरे, प्रणमामि तु देवि निरार्तिहरे ।।
जय चन्द्रदिवाकरनेत्रधरे, जय पावकभूषितवक्त्रवरे ।
जय भैरवदेहनिलीनपरे, जय अन्धकदैत्यविशोषकरे ।।
जय महिषविमर्दिनि शूलकरे, जय लोकसमस्तकपापहरे ।
जय देवि पितामहविष्णुनुते, जय भास्करशक्रशिरोऽवनते ।।
जय षण्मुखसायुधईशनुते, जय सागरगामिनि शम्भुनुते ।

हे वरदायिनी देवि ! हे भगवति ! तुम्हारी जय हो । हे पापों को नष्ट करने-वाली और अनन्त फल देनेवाली देवि ! तुम्हारी जय हो । हे शुम्भ-निशुम्भ के मुण्डों को धारण करनेवाली देवि ! तुम्हारी जय हो । हे मनुष्यों की पीड़ा हरने-वाली देवि ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं ।

हे सूर्य-चन्द्रमारूपी नेत्रों को धारण करनेवाली ! तुम्हारी जय हो । हे अग्नि के समान देदीप्यमान मुख से शोभित होनेवाली ! तुम्हारी जय हो । हे भैरव-शरीर में लीन रहनेवाली और अन्धकासुर का शोषण करनेवाली देवि ! तुम्हारी जय हो, जय हो ।

हे महिषासुर का मर्दन करनेवाली, शूलधारिणी और लोक के समस्त पापों को दूर करनेवाली, भगवति ! तुम्हारी जय हो । ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और इन्द्र से नमस्कृत होनेवाली हे देवि ! तुम्हारी जय हो जय हो ।

सशस्त्र शङ्कर और कार्तिकेयजी के द्वारा वन्दित होनेवाली देवि ! तुम्हारी

जय दुःखदरिद्रविनाशकरे, जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे ॥
जय देवि समस्तशरीरधरे, जय नाकविदर्शिनि दुःखहरे ।
जय व्याधिविनाशिनि मोक्षकरे, जय वाञ्छितदायिनि सिद्धिवरे ॥

एतद्व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेन्नियतः शुचिः ।
गृहे वा शुद्धभावेन प्रीता भगवती सदा ॥

॥ इति श्रीव्यासकृतं श्रीभगवतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जय हो। शिव के द्वारा प्रशंसित एवं सागर में मिलनेवाली गङ्गारूपिणी देवि! तुम्हारी जय हो। दुःख और दरिद्रता का नाश तथा पुत्र-कलत्र की वृद्धि करनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो जय हो।

हे देवि! तुम्हारी जय हो। तुम समस्त शरीर को धारण करनेवाली स्वर्ग लोक का दर्शन करानेवाली और दुःखहारिणी हो। हे व्याधिनाशिनी देवि! तुम्हारी जय हो। मोक्ष तुम्हारे करतलगत है, हे मनोवाञ्छित फल देनेवाली अष्ट सिद्धियों से सम्पन्न परा देवि! तुम्हारी जय हो।

जो कहीं भी रहकर पवित्र भाव से नियमपूर्वक इस व्यासकृत स्तोत्र का पाठ करता है अथवा शुद्ध भाव से घरपर ही पाठ करता है उसके ऊपर भगवती सदा ही प्रसन्न रहती हैं।

महालक्ष्म्यष्टकम्

इन्द्र उवाच

नमस्तेऽस्तु महामाये ! श्रीपीठे ! सुरपूजिते ! ।
शङ्खचक्रगदाहस्ते ! महालक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥

नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि ।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि ।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

इन्द्र बोले—श्रीपीठपर स्थित और देवताओं से पूजित होनेवाली, हे महामाये ! तुम्हें नमस्कार है। हाथ में शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाली हे महालक्ष्मि ! तुम्हें प्रणाम है।

गरुड़पर आरूढ़ हो कोलासुर को भय देनेवाली और समस्त पापों को हरनेवाली हे भगवति महालक्ष्मि ! तुम्हें प्रणाम है।

सब कुछ जाननेवाली, सब को वर देनेवाली, समस्त दुष्टों को भय देनेवाली और सब के दुःखों को दूर करनेवाली, हे देवि महालक्ष्मि ! तुम्हें नमस्कार है।

सिद्धि, बुद्धि, भोग और मोक्ष देनेवाली हे मन्त्रपूत भगवति महालक्ष्मि ! तुम्हें सदा प्रणाम है।

आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्तिमहेश्वरि ।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्तिमहोदरे ।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि ।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते ।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
महालक्ष्म्यष्टकं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिमान्नरः ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा ॥

हे देवि ! हे आदि-अन्त-रहित आदिशक्ते ! हे महेश्वरि ! हे योग से प्रकट हुई भगवति महालक्ष्मि ! तुम्हें नमस्कार है ।

हे देवि ! तुम स्थूल, सूक्ष्म एवं एवं महारौद्ररूपिणी हो, महाशक्ति हो, महोदरा हो और बड़े-बड़े पापों का नाश करनेवाली हो । हे देवि ! महालक्ष्मि ! तुम्हें नमस्कार है ।

हे कमल के आसन पर विराजमान परब्रह्मस्वरूपिणि देवि ! हे परमेश्वरि ! हे जगदम्ब ! हे महालक्ष्मि ! तुम्हें मेरा प्रणाम है ।

हे देवि ! तुम श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली और नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषिता हो । सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त एवं अखिल लोक को जन्म देनेवाली हो ! हे महालक्ष्मि ! तुम्हें मेरा प्रणाम है ।

जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर इस महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्र का सदा पाठ करता है वह सारी सिद्धियों और राजवैभव को प्राप्त कर सकता है ।

एककाले पठेन्नित्यं महापापविनाशनम् ।
द्विकालं यः पठेन्नित्यं धनधान्यसमन्वितः ॥
त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम् ।
महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा ॥

॥ इतीन्द्रकृतं महालक्ष्म्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥

श्रीसरस्वतीस्तोत्रम्

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता ।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता ।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥

जो प्रतिदिन एक समय पाठ करता है, उसके बड़े-बड़े पापों का नाश हो जाता है। जो दो समय पाठ करता है वह धन-धान्य से सम्पन्न होता है।

जो प्रतिदिन तीन काल पाठ करता है उसके महान् शत्रुओं का नाश हो जाता है और उसके ऊपर कल्याणकारिणी वरदायिनी महालक्ष्मी सदा ही प्रसन्न होती हैं।

जो कुन्द के फूल, चन्द्रमा, हिम (वर्फ) और हार के समान श्वेत हैं, जो शुभ्र कपड़े पहनती हैं, जिनके हाथ उत्तम वीणा से सुशोभित हैं, जो श्वेत कमलासन पर बैठती हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं और जो सब प्रकार की जडता हर लेती हैं, वे भगवती सरस्वती मेरा पालन करें।

आशासु राशीभवदङ्गवल्लीभासैव-
दासीकृतदुग्धसिन्धुम् ।
मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं
वन्देऽरविन्दासनसुन्दरि! त्वाम् ॥

शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे! ।
सर्वदा सर्वदाऽस्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ॥

सरस्वतीं च तां नौमि वागधिष्ठातृदेवताम् ।
देवत्वं प्रतिपद्यन्ते यदनुग्रहतो जनाः ॥

पातु नो निकषग्रावा मतिहेम्नः सरस्वती ।
प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव करोति या ॥

हे कमलपर बैठनेवाली सुन्दरी सरस्वति! तुम सब दिशाओं में पुञ्जीभूत हुई, अपनी देहलता की आभा से ही क्षीरसमुद्र को दास बनानेवाली और मन्द मुसकान से शरदृतु के चन्द्रमा को तिरस्कृत करनेवाली हो, तुमको मैं प्रणाम करता हूं।

शरत्काल में उत्पन्न कमल के समान मुखवाली और सब मनोरथों को देनेवाली शारदा सब सम्पत्तियों के साथ मेरे मुख में सदा निवास करें।

उन वचन की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को प्रणाम करता हूं, जिनकी कृपा से मनुष्य देवता बन जाता है।

बुद्धिरूपी सोने के लिये लिये कसौटी के समान सरस्वती, जो केवल वचन से ही विद्वान् और मूर्खों की परीक्षा कर देती हैं, हमलोगों का पालन करें।

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥

वीणाधरे ! विपुलमङ्गलदानशीले !
भक्तार्तिनाशिनि ! विरञ्चिहरीशवन्द्ये ! ।
कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे ! महार्हे !
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥

श्वेताब्जपूर्णविमलासनसंस्थिते हे
श्वेताम्बरावृतमनोहरमञ्जुगात्रे ।
उद्यन्मनोज्ञसितपङ्कजमञ्जुलास्ये
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥

जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचार की परम तत्त्व हैं, जो सब संसार में फैल रही हैं, जो हाथों में वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, अभय देती हैं, मूर्खतारूपी अन्धकार को दूर करती हैं, हाथ में स्फटिकमणि की माला लिये रहती हैं, कमल के आसन पर विराजमान होती हैं और बुद्धि देनेवाली हैं, उन आद्या, परमेश्वरी भगवती सरस्वती की वन्दना करता हूं।

हे वीणा धारण करनेवाली, अपार मङ्गल देनेवाली, भक्तों के दुःख छुड़ानेवाली, ब्रह्मा, विष्णु और शिव से वन्दित होनेवाली, कीर्ति तथा मनोरथ देनेवाली, पूज्यवरा और विद्या देनेवाली सरस्वति ! तुमको नित्य प्रणाम करता हूं।

हे श्वेत कमलों से भरे हुए निर्मल आसन पर विराजनेवाली, श्वेत वस्त्रों से ढके सुन्दर शरीरवाली, खुले हुए सुन्दर श्वेत कमल के समान मञ्जुल मुखवाली और विद्या देनेवाली सरस्वति ! तुमको नित्य प्रणाम करता हूं।

मातस्त्वदीयपदपङ्कजभक्तियुक्ता
ये त्वां भजन्ति निखिलानपरान्विहाय ।
ते निर्जरत्वमिह यान्ति कलेवरेण
भूवह्निवायुगगनाम्बुविनिर्मितेन ॥
मोहान्धकारभरिते हृदये मदीये
मातः सदैव कुरु वासमुदारभावे ! ।
स्वीयाखिलावयवनिर्मलसुप्रभाभिः
शीघ्रं विनाशय मनोगतमन्धकारम् ॥
ब्रह्मा जगत् सृजति पालयतीन्दिरेशः
शम्भुर्विनाशयति देवि तव प्रभावैः ॥
न स्यात्कृपा यदि तव प्रकटप्रभावे
न स्युः कथञ्चिदपि ते निजकार्यदक्षाः ॥

हे मातः ! जो (मनुष्य) तुम्हारे चरणकमलों में भक्ति रखकर और सब देवताओं को छोड़कर तुम्हारा भजन करते हैं, वे पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश और जल—इन पाँच तत्त्वों के बने शरीर से ही देवता बन जाते हैं ।

हे उदार बुद्धिवाली मा ! मोहरूपी अन्धकार से भरे मेरे हृदय में सदा निवास करो और अपने सब अङ्गों की निर्मल कान्ति से मेरे मन के अन्धकार का शीघ्र नाश करो ।

हे देवि ! तुम्हारे ही प्रभाव से ब्रह्मा जगत् को बनाते हैं, विष्णु पालते हैं और शिव संहार करते हैं, हे प्रकट प्रभाववाली ! यदि इन तीनों पर तुम्हारी कृपा न हो, तो वे किसी प्रकार अपना काम नहीं कर सकते ।

लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः ।
एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति ! ॥
सरस्वत्यै नमो नित्यं भद्रकाल्यै नमो नमः ।
वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च ॥
सरस्वति महाभागे विद्ये कमललोचने ।
विद्यारूपे विशालाक्षि विद्यां देहि नमोऽस्तु ते ॥
यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि ! प्रसीद परमेश्वरि ! ॥

॥ इति श्रीसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

हे सरस्वति ! लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभ, धृति—इन आठ मूर्तियों से मेरी रक्षा करो ।

सरस्वती को नमस्कार है, भद्रकाली को नमस्कार है और वेद, वेदान्त, वेदाङ्ग तथा विद्याओं के स्थानों को प्रणाम है ।

हे महाभाग्यवती ज्ञानस्वरूपा कमल के समान विशाल नेत्रवाली, ज्ञानदात्री सरस्वति ! मुझको विद्या दो, मैं तुमको प्रणाम करता हूं ।

हे देवि ! जो अक्षर, पद अथवा मात्रा छूट गयी हो, उसके लिये क्षमा करो और हे परमेश्वरि ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ।

देवीभागवते सुबाहुकृतो देव्याःस्तवः

सुबाहुरुवाच ।

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः ।
दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः ॥

नमः शिवायै शान्त्यै ते मोक्षदायै नमो नमः ।
विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमो नमः ॥

नाहं गतिं तव धिया परिचिन्तयन्वै
जानामि देवि सगुणः किल निर्गुणायाः ।
किं स्तौमि विश्वजननि ! प्रकटप्रभावां
चाकीर्तिनाशनपरां परमाश्च शक्तिम् ॥

राजा सुबाहु ने अपने जामाता के पुनर्जीवन से कृतार्थ हो यह स्तुति की है— उस जगत् को धारण करनेवाली शिवा देवी के लिये निरन्तर नमस्कार है। समस्त मनोवाञ्छित प्रदान करनेवाली भगवती दुर्गा के लिये नमस्कार है ।

मोक्षदात्री शान्तिस्वरूपिणी शिवा के लिये नमस्कार है । विश्वभर में व्याप्त रहनेवाली हे जगन्मातः शिवे ! आपको नमस्कार है ।

हे देवि ! मैं बुद्धि से विचारता हुआ भी तेरे निगुण स्वरूप को नहीं जान पाया क्योंकि मैं सगुण हूं । हे विश्व जननि ! परमशक्ति ! मैं तेरी किस प्रकार स्तुति करूं ।

वाग्देवता त्वमसि सर्वगतैव बुद्धिः
विद्या मतिश्च गतिरप्यसि सर्वजन्तोः ।
त्वां स्तौमि किं त्वमसि सर्वमनोनियन्त्री
किं स्तूयते हि सततं खलु चात्मरूपम् ॥

ब्रह्माहरश्च हरिरप्यनिशं स्तुवन्तो
नान्तं गताः सुरवराः किल ते गुणानाम् ।
क्वाऽहं विभेदमतिरम्ब गुणैर्वृतो वै
वक्तुं क्षमस्तव चरित्रमहो प्रसिद्धः ॥

सत्संगतिः कथमहो न करोति कामं
प्रासंगिकाऽपि विहिता खलु चित्तशुद्धिम्।
जामातुरस्य विहितेन समागमेन
प्राप्तम्मयाऽद्भुतमिदन्तव दर्शनम्वै ॥

हे देवि ! वाणी की अधिष्ठात्री (सरस्वती) तूं ही है, समस्त प्राणियों की विद्या, बुद्धि, मति और गति तूं ही है। सब के मन की स्वामिनी जब तूं ही है तो अपने-आप की स्तुति किस प्रकार की जाय।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्रादि मुख्य-मुख्य देवता भी तेरे पार को नहीं पा सके। मैं मन्द बुद्धि तो तेरे गुणों का वर्णन कर ही कैसे सकता हूं।

सत्संगति यदि प्रसंगवश भी किसी को प्राप्त होती है तो उसका फल उत्तम ही हो जाता है। इस जामाता की कृपा ही से हे देवि ! तेरे दुर्लभ दर्शन मुझे प्राप्त हुए हैं।

ब्रह्माऽपि वाञ्छति सदैव हरो हरिश्च
सेन्द्राः सुराश्च मुनयो विदितार्थतत्त्वाः ।
यद्दर्शनं जननि ! तेऽद्य मया दुरापं
प्राप्तम्विना दमशमादिसमाधिभिश्च ॥

क्वाहं सुमन्दमतिराशु तवाऽवलोकं
क्वेदं ! भवानि भवभेषजमद्वितीयम् ।
ज्ञाताऽसि देवि! सततं किल भावयुक्ता!
भक्तानुकम्पनपराऽमरवर्यपूज्या ॥

किं वर्णयामि तव देवि चरित्रमेत-
द्यद्रक्षितोऽस्ति विषमेऽत्र सुदर्शनोऽयम् ।
शत्रू हतौ सुबलिनौ तरसा त्वया य-
द्भक्तानुकम्पिचरितं परमं पवित्रम् ॥

बड़ी तपस्या से ऋषि; मुनि और ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवता जिस तेरे स्वरूप का साक्षात् करते हैं उसको मैंने तेरी दया से सहज ही में पा लिया।

हे भवानि ! कहां तो मन्द मति मैं और कहां संसार रोग की परमौषध तेरे दर्शन, किन्तु तेरी भक्तवत्सलता ही इसका कारण है, यह मैंने भली प्रकार जान लिया।

हे देवि ! तेरे चरित्र का मैं क्या वर्णन करूं जो इस आपत्ति से तूं ने सुदर्शन को उबार लिया और बलिष्ठ शत्रुओं का नाश कर दिया यही तो तेरा भक्तों पर दया करनेवाला परम पवित्र प्रसिद्ध चरित्र है।

नाश्चर्यमेतदिति देवि! विचारितेऽर्थे
त्वं पासि सर्वमखिलं स्थिरजङ्गमं वै।
त्रातस्त्वया च विनिहत्य रिपुर्दयातः
संरक्षितोऽयमधुना ध्रुव सन्धिसूनुः॥
भक्तस्य सेवनपरस्य यशोऽतिदीप्तं
कर्तुं भवानिरचितं चरितं त्वयैतत्।
नो चेत् कथं सुपरिगृह्य सुतां मदीयां
युद्धे भवेत्कुशलवाननवद्यशीलः॥
शक्ताऽसि जन्ममरणादिभयान् विहन्तुं
किं चित्रमत्र किल भक्तजनस्य कामम्।
त्वं गीयसे जननि! भक्तजनैरपारा
त्वं पापपुण्यरहिता सगुणाऽगुणा च॥

हे देवि! इसमें आश्चर्य भी नहीं है, क्योंकि तूं ही तो समस्त स्थावर जंगमात्मक जगत् की रक्षा करती है। उसी स्वाभाविकी दया से तूं ने आज इस सुदर्शन की रक्षा की है।

हे भवानि! अपने भक्तों का यश उज्ज्वल करने के लिये तूं ही इन चरित्रों की रचना करती है अन्यथा मेरी पुत्री का पाणिग्रहण करनेवाला यह सुदर्शन सकुशल युद्ध नहीं जीत सकता था।

हे दुर्गे! जब जन्म-मरण सदृश समस्त भय को ही तूं दूर करती है तो और आपत्तियों की तो बात ही क्या है? हे जननि! तूं पाप-पुण्य से परे है, तूं सगुण-निर्गुण उभय स्वरूपा है, तूं अनन्त है, इसी प्रकार भक्त तेरा गुणगान करते हैं।

त्वद्दर्शनादहमहो सुकृती कृतार्थो
जातोऽस्मि देवि! भुवनेश्वरि! धन्यजन्मा ।
बीजं न तेन भजनं किल वेद्मि मात-
र्ज्ञातस्तवाऽद्यमहिमा प्रकटप्रभावः ॥

व्यास उवाच ।

एवं स्तुता तदा देवी प्रसन्नवदना शिवा ।
उवाच तं नृपं देवी वरं वरय सुव्रत ! ॥

॥ इति सुबाहुकृतो देव्याःस्तवः सम्पूर्णः ॥

हे भगवति ! तेरे दर्शन से मैं आज पुण्यवान् तथा कृतकृत्य हो गया । हे भुवनेश्वरि ! मेरा जन्म धन्य है । यद्यपि मैं तेरे वीज मंत्र को नहीं समझता हूं तथापि तेरी महिमा का प्रभाव मेरे सम्मुख प्रकट हो गया ।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करने पर भगवती ने प्रसन्न मुख होकर सुबाहु को वरदान माँगने के लिये कहा ।

आनन्द लहरी

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि ।
न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपतिः
तदाऽन्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः ॥

घृतक्षीरद्राक्षा मधुमधुरिमा कैरपि पदै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः ।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे ! ॥

मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला
ललाटे काश्मीरं विलसति गले मौक्तिकलता ।

हे भवानि ! प्रजापति ब्रह्माजी अपने चार मुखों से भी तेरी स्तुति करने में असमर्थ हैं, त्रिपुरारि भगवान् शंकर अपने पाँच मुखों से तुम्हारा गुणगान नहीं कर सकते, कार्तिकेय तो छः मुखों के रहते हुए भी असमर्थ हैं। हे जननि ! नाग राज शेष तो सहस्र मुखों से भी जब तेरा स्तवन करने में असमर्थ हैं तो इन इने-गिने मुखवाले मनुष्यों की तो सामर्थ्य ही क्या है।

घी, मधु, दाख और शहद की मधुरता का किसी भी शब्द द्वारा विशेष वर्णन नहीं किया जा सकता ; क्योंकि वह तो केवल जिह्वा का विषय है। इसी प्रकार तुम्हारा सौन्दर्य भी केवल महादेव के नेत्रों का ही विषय है, उसे हम क्योंकर वर्णन कर सकते हैं। हे देवि ! तुम्हारे गुणों का वर्णन तो वेद भी नहीं कर सकते।

मुख में तुम्हारे पान है, नेत्रों में काजल की पतली-सी रेखा है, ललाट में केशर की बेंदी है, गले में मोती का हार सुशोभित हो रहा है, कमर में सुनहली

स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी
भजामि(मस्त्वां)त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम्॥
विराजन्मन्दारद्रुमकुसुमहारस्तनतटी
नदद् वीणानादश्रवणविलसत्कुण्डलगुणा।
नताङ्गी मातङ्गी रुचिरगतिभङ्गी भगवती
सती शम्भोरम्भोरुहचटुलचक्षुर्विजयते॥
नवीनार्कभ्राजन्मणिकनकभूषापरिकरै-
र्वृताङ्गी सारङ्गी रुचिरनयनाङ्गी कृतशिवा।
तडित्पीता पीताम्बरललितमञ्जीरसुभगा
ममाऽपर्णा पूर्णा निरवधिसुखैरस्तु सुमुखी॥

साड़ी, जिस पर रत्नजटित मेखला (तागड़ी) शोभित हो रही है। ऐसी वेषभूषा से सुसज्जित, हे हिमालय की पुत्री गौरी मैं तुम्हें निरन्तर भजता हूं।

मन्दार कुसुम की माला की शोभित स्तनों के समीप बजती हुई वीणा के मधुर नाद को सुनते हुए जिसके कानों में कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जिसका अङ्ग झुका हुआ है, हथिनी की भांति जिसकी मन्द मनोहर चाल है, जिसके नेत्र कमल के समान सुन्दर और चञ्चल है, उस शम्भु प्रिया भगवती सती की जय हो।

जिसका अङ्ग उगते हुए सूरज के समान चमकीले मणिमय अभूषणों से भूषित हैं, मृगी के समान जिसके सुन्दर नेत्र हैं, शिव भगवान् को जिसने पतिरूप से स्वीकार किया। विजली के समान जिसकी पीत कान्ति है और जो पीतवस्त्र की प्रभा पड़ने से अधिक शोभित हुए नूपुर चरणों में धारण करके सुशोभित हो रही है वह निरतिशय आनन्दपूर्ण भगवती अपर्णा मुझपर प्रसन्न हों।

हिमाद्रेः सम्भूता सुललितकरैः पल्लवयुता
सुपुष्पा मुक्ताभिर्भ्रमरकलिता चाऽलकभरैः ।
कृतस्थाणुस्थाना कुचफलनता सूक्तिसरसा
रुजां हन्त्री गन्त्री विलसति चिदानन्दलहरी (लतिका) ॥

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति ।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम् ॥

विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नायजननी
त्वमर्थानां मूलं धनदनमनीयङ्घ्रिकमले ! ।

समस्त रोगों को नष्ट करनेवाली एक चलती-फिरती चिदानन्दमयी लता (उमा) सुशोभित हो रही है, वह हिमालय से उत्पन्न हुई हैं, सुन्दर हाथ ही उसके पल्लव हैं, मुक्ता का हार ही सुन्दर फूल है, काली-काली अलकें भ्रमरों की भांति उसे ढके हुए, स्थाणु भगवान् शंकर ही उसका आश्रय हैं, उरोज (स्तन) रूपी फलों के भार से झुकी हुई है और मधुर वाणीरूपी रस से भरी है ।

लोग कुछ ही गुणों (पुष्प, फल, पत्ते आदि) से युक्त लता का आदरपूर्वक सेवन करते हैं, परन्तु मेरी सम्मति तो यही है कि इस संसार में सभी को एकमात्र अपर्णा (पार्वती या पत्रहीन लता) की ही सेवा करनी चाहिये जिससे आच्छादित होकर स्थाणु (भगवान् शंकर अथवा ठूंठ) भी मोक्षरूप फल देने लगता है ।

सम्पूर्ण धर्मों की सृष्टि करनेवाली और समस्त आगमों को जन्म देनेवाली तुम्ही हो ! हे देवि ! कुबेर भी तुम्हारे चरणों की वन्दना करते हैं, तुम्हीं वैभव

त्वमादिः कामानां जननि! कृतकन्दर्पविजये!
सतां मुक्तेर्बीजं त्वमसि परमब्रह्ममहिषी ॥
प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनस-
स्त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽह मधुना ।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे
भृशं शङ्के कैर्वा विधिभिरनुनीता मम मतिः ॥
कृपापाङ्गालोकं वितर तरसा साधुचरिते!
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते ।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्लीपरिकरैः ॥

का मूल हो। हे कामदेव पर विजय पानेवाली मा! कामनाओं की आदि कारण भी तुम्ही हो, तुम परब्रह्म परमेश्वर की पटरानी हो अतः तुम्ही सन्तों के मोक्ष का वीज हो।

मेरा मन चञ्चल है इस लिये यद्यपि मैंने आपकी प्रचुर भक्ति नहीं की है तथापि आप (श्रीमती) को इस समय मुझ पर अवश्य ही दया की दृष्टि करनी चाहिये। चातक चाहे प्रेम करे या न करे पर मेघ तो उसके मुख में मधुर जल गिराता ही है। मुझे वड़ी शंका हो रही है कि मेरी वुद्धि किन विधियों से आप में अनुलीन हों, आपकी ओर लगे।

हे साधु चरित्रोंवाली मा! तुम वहुत शीघ्र अपनी कृपापूर्ण दृष्टि से मुझे निहारो मैं तुम्हारी शरण की दीक्षा ले चुका हूं अव मेरी उपेक्षा करना ठीक नहीं। यदि कल्पलता पद-पद पर अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति न कर सके तो अन्य साधारण लताओं से उसमें विशेषता ही क्या है।

महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्करुहयुगे
निधायाऽन्यन्नैवाऽऽश्रितमिह मया दैवतमुमे ! ।
तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायेत सदयं
निरालम्बो लम्बोदरजननि ! कं यामि शरणम् ॥

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्या पाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम् ।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णाऽऽसक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ॥

त्वदन्यस्मादिच्छा विषयफललाभेन नियम-
स्त्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे ।

हे गणेश की जननि ! मैंने तुम्हारे ही चरणारविन्द में विश्वास रखकर किसी अन्य देवता का आश्रय नहीं लिया, हे मातः ! अब भी यदि तेरी दया मुझपर नहीं हुई तो मैं किसकी शरण जाऊं।

जिस प्रकार लोहा पारस से छू जाने पर तत्काल सोना बन जाता है और गलियों के नाले का जल गंगा में पड़कर पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पापों से मलिन हुआ मेरा अन्तःकरण यदि तेरी भक्ति में आसक्त हो गया तो वह कैसे निर्मल नहीं होगा।

हे ईशानि ! तुमसे अन्य किसी देवता से मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो ही जाय ऐसा नियम नहीं है. परन्तु तुम तो पुरुषों को उनकी इच्छा से अधिक वस्तु भी

इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं नक्तंदिवमुचितमीशानि ! कुरु तत् ॥

स्फुरन्नानारत्नस्फटिकमयभित्तिप्रतिफल-
त्त्वदाकारं चञ्च(चण्ड)च्छशधरकलासौधशिखरम् ।
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रप्रभृतिपरिवारं विजयते
तवागारं रम्यं त्रिभुवनमहाराजगृहिणि ! ॥

निवासः कैलासे विधिशतमखाद्याः स्तुतिकराः
कुटुम्बं त्रैलोक्यं कृतकरपुटः सिद्धिनिकरः ।
महेशः प्राणेशस्तदवनिधराधीशतनये !
न ते सौभाग्यस्य क्वचिदपि मनागस्ति तुलना ॥

देने में समर्थ हो—इस प्रकार ब्रह्मादि प्राचीन पुरुष कहा करते हैं। इसलिये अब मेरा मन रात-दिन तुममें ही लगा रहता है, अब तुम जो उचित समझो करो।

हे त्रिभुवन केमहाराज शिव की गृहिणी शिवे ! जहां नाना प्रकार के रत्न और स्फटिक मणि की भीत्ति पर तुम्हारा आकार प्रतिविंवित हो रहा है, जिसके शिखर पर प्रतिबिम्वित होकर चन्द्रमा की कला सुशोभित हो रही है, विष्णु, ब्रह्मा, और इन्द्र आदि देवता जिसे घेर कर खड़े रहते हैं, ऐसे तुम्हारे सुन्दर भवन की जय हो।

हे गिरिराजनन्दिनि ! तुम्हारा कैलास में निवास है, ब्रह्मा, इन्द्र आदि तुम्हारी स्तुति किया करते हैं, समस्त त्रिभुवन ही तुम्हारा कुटुम्ब है, आठों सिद्धियों का समुदाय तुम्हारे सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहता है और महेश्वर तुम्हारे प्राण-नाथ हैं, तुम्हारे सौभाग्य की कहीं अल्प भी तुलना नहीं हो सकती।

वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं
श्मशानं क्रीड़ाभूर्भुजगनिवहो भूषणविधिः ।
समग्रा सामग्री जगति विदितैवं स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जनेनि ! सौभाग्यमहिमा ॥

अशेषब्रह्माण्डप्रलयविधिनैसर्गिकमतिः
श्मशानेष्वासीनः कृतभसितलेपः पशुपतिः ।
दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया
भवत्याः संगत्याः फलमिति च कल्याणि ! कलये ॥

त्वदीयं सौन्दर्यं निरतिशयमालोक्य परया
भियैवासीद्गङ्गाजलमयतनुः शैलतनये ! ।

हे जननि ! कामारि शिव का बूढा बैल ही वाहन है, विष ही भोजन है, दिशायें ही वस्त्र है, श्मशान ही रंगभूमि है और साँप ही आभूषण हैं। उनकी यह सारी सामग्री संसार में प्रसिद्ध है, फिर भी उनके पास जो ऐश्वर्य है वह तुम्हारे ही सौभाग्य की महिमा है।

हे कल्याणि ! जिनकी बुद्धि स्वभावतः समस्त ब्रह्माण्ड का संहार करने में प्रवृत्त होती है जो अंगों में राख पोत कर श्मशान में बैठे रहते हैं (ऐसे कठोर स्वभाववाले) पशुपति ने जो समस्त भूमण्डल पर दया करके कण्ठ में हालाहल विष धारण कर लिया, उसे मैं आपके सत्संग का ही फल समझता हूं !

हे शैलनन्दिनि ! आपके सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य को देखकर अत्यन्त भय के कारण ही गङ्गाजी ने जलमय शरीर धारण कर लिया। इससे गङ्गाजी के दीन मुख

तदेतस्यास्ताम्यद्वदनकमलं वीक्ष्य कृपया
प्रतिष्ठामात(तेने)न्वन्निजशिरसि वासेन गिरिशः ॥

विशालश्रीखण्डद्रवमृगमदाकीर्णघुसृण-
प्रसूनव्यामिश्रं भगवति ! तवाऽभ्यङ्गसलिलम् ।
समादाय स्रष्टा चलितपदपांसून्निजकरैः
समाधत्ते सृष्टिं विबुधपुरपङ्केरुहदृशाम् ॥

वसन्ते सानन्दे कुसुमितलताभिः परिवृते
स्फुरन्नानापद्मे सरसि कलहंसालिसुभगे ! ।
सखीभिः खेलन्तीं मलयपवनान्दोलितजले
स्मरेद्यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपीड़ाऽपसरति ॥

॥ इति श्रीआनन्दलहरी सम्पूर्णः ॥

कमल को देखकर दयावश शंकरजी उन्हें अपने शिरपर निवास देकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ा रहे हैं।

हे भगवति ! जिसमें विशाल चन्दन के रस, कस्तूरी और केसर के फूल मिले हुए हैं। ऐसे तुम्हारे अनुलेपन के जल को और चलते हुए तुम्हारे चरणों की धूलि को ही लेकर ब्रह्माजी सुरपुर की कमलनयनी वनिताओं (अप्सराओं) की सृष्टि करते हैं।

हे देवि ! वसन्त ऋतु में खिली हुई लताओं से मण्डित नाना कमलों से सुशोभित एवं हंसों की मण्डली से अलंकृत सरोवर के भीतर, जहां का जल मलयानिल से आन्दोलित हो रहा है (उसमें) सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुई आपका जो पुरुष ध्यान करता है उसकी ज्वर रोगजनित पीड़ा दूर हो जाती है।

देवैःकृता मातुःस्तुतिः

देवि ! प्रसीद परिपाहि सुरान् प्रतप्तान् वृत्रासुरेण समरे परिपीड़ितांश्च ।
दीनार्तिनाशनपरे ! परमार्थतत्त्वे ! प्राप्तास्त्वदङ्घ्रिकमलं शरणं सदैव ।।
त्वं सर्वजननी परिपालयाऽस्मान् पुत्रानिवातिपतितान्रिपुसंकटेऽस्मिन् ।
मातर्नतेऽस्त्यविदितं भुवनत्रयेऽपि कस्मादुपेक्षसि सुरानसुरप्रतप्तान् ।।

त्रैलोक्यमेतदखिलं विहितं त्वयैव
ब्रह्मा हरिः पशुपतिस्तव वासनोत्थाः ।
कुर्वन्ति कार्यमखिलं स्ववशा न ते
ते भ्रूभङ्गचालनवशाद्विहरन्ति कामम् ।।

हे देवि ! प्रसन्न हो और वृत्रासुर से पीड़ित इन देवताओं को बचा । हे जननि ! तूं दीनों का दुःख दूर करनेवाली है और ये देवता तेरे चरणकमलों की शरण आये हैं ।

हे मा ! तू सब की जननी है अतः शत्रु द्वारा संकट में पड़े हुए इन निर्बल पुत्रों की रक्षा कर । हे जननि ! तुमसे इनका संकट छिपा नहीं है फिर इनकी उपेक्षा क्यों करती हो ।

ये तीनों लोक तेरे ही रचे हुए हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तेरी ही इच्छा मात्र से उत्पन्न हुए हैं और तेरी ही आँख के संकेत से सब काम (सर्जन' पालन, संहार) करते हैं ।

माता सुतान् परिभवात् परिपाति दीनान्
रीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटापराधान् ।
कस्मान्न पालयसि देवि विनाऽपराधाद्-
स्मांस्त्वदङ्घ्रिशरणान् करुणारसाब्धे ! ॥

नूनं त्वदङ्घ्रिभजनाप्तपदाः किलैते
भक्तिं विहाय विभवे सुखभोगलुब्धाः ।
नेमे कटाक्षविषया इति चेन्न चैषा
रीतिः सुते जननकर्त्रि ! कदाऽपि दृष्टा ॥

दोषो न नोऽत्र जननि प्रतिभाति चित्ते
यत्ते विहाय भजनं विभवे निमग्नाः ।
मोहस्त्वया प्रभवत्यसौ नस्तस्मा-
त्स्वभावकरुणे ! दयसे कथं न ॥

माता अपने अपराधी पुत्रों की भी रक्षा करती है यह तेरी ही चलाई हुई रीति है। फिर इन निरपराध तथा तेरी शरण में आये देवताओं की रक्षा क्यों नहीं करती।

निश्चय ही इन्हें तुम्हारे चरणकमलों की सेवा करने से सुख प्राप्त हुआ है, किन्तु भक्ति को त्याग विभव में सुख एवं भोग से लुब्ध हो गये। हे जननकर्त्रि ! ये उपेक्षणीय नहीं हैं क्योंकि ऐसी रीति कभी भी नहीं देखी गई।

हे जननि ! जो तुम्हारी सेवा को छोड़ विभव में निमग्न हो गये, इस विषय में चित्त में दोष तो कुछ मालूम नहीं पड़ता है, क्योंकि यह मोह तुम्हारे से ही उत्पन्न हुआ है इसलिये हे स्वभाव करुणे ! दया क्यों नहीं करती हो।

पूर्वं त्वया जननि ! (हे नितरां) वलिष्ठो
व्यापादितो महिषरूपधरः किलाऽऽजौ ।
अस्मत्कृते सकललोकभयावहोऽसौ
वृत्रं कथं न भयदं विधुनोसि मातः ॥
शुम्भस्तथाऽतिबलवाननुजो निशुम्भस्तौ
भ्रातरौ तदनुजा निहता हतौ च ।
वृत्रं तथा जहि खलं प्रबलं दयार्द्रे !
मत्तं विमोहय तथा न भवेद्यथाऽसौ ॥
त्वं पालयाऽद्य विबुधानसुरेण मातः
सन्तापितातितरां भयविह्वलांश्च ।
नान्योऽस्ति कोऽपि भुवनेषु सुरार्तिहारी
यः क्लेशजालमखिलं निदहेत् स्वशक्त्या ॥

हे जननि ! पहले तुमने हमारे लिये सम्पूर्ण लोकों को भय देनेवाले महिषरूप दानव को युद्ध में मार दिया था। अब हे मातः ! भय देनेवाले वृत्रासुर को क्यों नहीं नष्ट करती हो ?

शुम्भ तथा अति वलवान् निशुम्भ दोनों भाइयों को तथा उनके अनुचरों को भी नष्ट किया था, वैसे ही वलवान् दुष्ट वृत्र को भी नष्ट करो। हे दया करने-वाली मा ! मत्त को ऐसा मोहित करो जो कि फिर मत्त न हो।

हे मातः ! असुर से संतापित एवं अत्यन्त भयभीत हुए देवों की पालना करो अन्य कोई भी देवों के दुःख को दूर करनेवाला नहीं है जो अपनी शक्ति से सम्पूर्ण क्लेशरूपी जाल को नष्ट कर दे।

२१

वृत्रे दया तव यदि प्रथिता तथापि
जह्य नमाशु जनदुःखकरं खलश्च ।
पापात् समुद्धर भवानि ! शरैः पुनाना
नो चेत् प्रयास्यति तमो ननु दुष्टबुद्धिः ॥

ते प्रापिताः सुखमहो विबुधारयो ये
हत्वा रणेऽपि विशिखैः किल पातितास्ते ।
त्राता न किं नरकपातभयाद्दयार्द्रे !
यच्छत्रवोऽपि नहि किं विनिहंसि वृत्रम् ॥

जानीमहे रिपुरसौ तव सेवको न
प्रायेण पीड़यति नः किल पापबुद्धिः ।
यस्तावकः किल भवेदमरानसौ किं
त्वत्पादपङ्कजरतान्ननु पीड़येद्वा ॥

यदि तुमने वृत्रासुर पर दया प्रकट की है तथापि मनुष्यों को दुःख करनेवाले दुष्ट को जल्दी ही नष्ट करो। हे भवानि ! बाणों से पवित्र करती हुई इस पापी से हमारा उद्धार करो अन्यथा यह दुष्टबुद्धि अन्धकार को प्राप्त हो जायेगा।

जो युद्ध में तुम्हारे बाणों से गिराये गये वे दानव सुख को प्राप्त हो गये। यह पापबुद्धि शत्रु प्रायः हमलोगों को दुःख देता है तुम्हारा सेवक नहीं है ऐसा हम जानते हैं क्योंकि जो तुम्हारा सेवक होगा वह तुम्हारी सेवा करनेवाले देवों को क्या कभी दुःख देता।

कुर्मः कथं जननि ! पूजनमम्ब ! तेऽद्य
पुष्पादिकं तव विनिर्मितमेव यस्मात् ।
मन्त्रा वयश्च सकलं परशक्तिरूपम्
तस्माद्भवानि ! चरणे प्रणताःस्म नूनम् ॥

॥ इति श्रीदेवैःकृतास्तुतिः सम्पूर्णा ॥

श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रम्

रविरुद्रपितामहविष्णुनुतं हरिचन्दनकुङ्कुमपङ्कयुतम् ।
मुनिवृन्दगणेन्द्रसमानकरं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥
शशिशुद्धसुधाहिमधामयुतं शरदम्बरविम्बसमानकरम् ।
बहुरत्नमनोहरकान्तियुतं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥

हे जननि ! हे मातः ! तुम्हारी क्या पूजा करें क्योंकि पुष्पादि, मन्त्र एवं हम सब आपके द्वारा ही रचे गये हैं इसलिये तुम्हारे चरणों में प्रणाम कर विरत होते हैं।

सूर्य, शिव और ब्रह्मा विष्णु जिनकी निरन्तर स्तुति करते रहते हैं। केशर चन्दन के अनुलेपन से जो सुगन्धित हैं निखिल ऋषि, मुनि और देवगण जिनका आदर करते हैं, ऐसे तेरे चरण-युगल में हे सरस्वति ! मैं प्रणाम करता हूं।

हे सरस्वति ! तेरे जो चरण-युगल चन्द्रमा, अमृत, तथा हिम और शरद् ऋतु के आकाश के समान स्वच्छ है और विविध रत्नों की कान्ति से जो मनोहर हैं, उन चरणों में मैं प्रणाम करता हूं।

कनकाम्बुजभूषितभुक्तिभवं भवभावविभाषितभिन्नपदम् ।
प्रभुचित्तसमाहितसाधुपदं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥

भवसागरमज्जनभीतिनुतं प्रतिपादितसन्ततिकारमिदम् ।
विमलाधिकस्वच्छविशुद्धपदं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥

मतिहीनजनाश्रय पाहि इदं सकलागमभाषितभिन्नपदम् ।
परिपूरितविश्वमनेकभवं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥

परिपूर्णमनोरथधामनिधिम् परमार्थविचार्यविवेकविधिम् ।
सुरयोषितसेवितभिन्नपदं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥

जो चरण सुनहले कमलों से भूषित हैं तथा भुक्ति-मुक्ति के देनेवाले हैं और भगवान् की भक्ति में चित्त को समाहित करते हैं, उन चरणकमलों में प्रणाम करता हूं।

इस संसाररूपी सागर में डूबने के भय से लोग जिन चरणों की स्तुति करते हैं जिनके अनुग्रह से मनोवाञ्छित सन्तति प्राप्त होती है उन स्वच्छातिस्वच्छ चरणों में मैं प्रणाम करता हूं।

हे जननि ! मैं बुद्धिहीन तेरे सर्वथा आश्रित हूं मेरी रक्षा करो और ऐसी कृपा करो कि समग्र वेदशास्त्र मेरी बुद्धि में स्वतः भाषित हों, मैं तेरे चरण-युगल में पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं।

जो चरण सकल मनोरथ पूर्ण करनेवाले तेज को धारण करते हैं जिनकी कृपा से मनुष्य परमार्थ ज्ञान (ब्रह्म-विद्या) को प्राप्त होता है और दिव्य सुन्दरियां जिनकी सतत सेवा करती हैं उन चरण-युगल को मैं प्रणाम करता हूं।

सुरमौलिमणिद्युतिशुभ्रकरं विषयादिमहाभयवर्णहरम् ।
निजकीर्तिविडम्बितचन्द्रकरं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥
स्वगुणैककुलस्थितिभीतिपदं गुणगौरवगर्वितसत्यपदम् ।
कमलोदरकोमलपादतलं तव नौमि सरस्वति ! पादयुगम् ॥
॥ इति श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्रीदेव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
नचाऽऽह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनम्
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥

देवताओं की मुकुटमणियों से जो शोभित हैं एवं विषय-बाधा का भय जिनकी कृपा से दूर होता है और अपनी कीर्ति की निर्मलता से जिनने चन्द्रमा की किरणों को भी तिरस्कृत कर दिया, उन चरणकमलों में हे सरस्वति ! मैं प्रणाम करता हूं ।

हे सरस्वति ! तेरे चरणकमलों का गौरव वर्णनातीत है । कमल के मध्यभाग से भी कोमल उन तेरे चरणकमलों में मैं बार-बार प्रणाम करता हूं ।

हे मातः ! मैं तेरा मन्त्र, यन्त्र, स्तुति, आवाहन, ध्यान, स्तुतिकथा, मुद्रा तथा विलाप कुछ भी नहीं जानता हूं, किन्तु तेरे चरणों की सेवा करने से सब क्लेश दूर होते हैं यह मैं जानता हूं ।

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणाऽलसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत्क्षन्तव्यं जननि ! सकलोद्धारिणि ! शिवे !
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि ! बहवः सन्ति सरलाः
परन्तेषाम्मध्ये विरलतरलोऽहं तव शिवे ! ।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे !
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥
जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि ! द्रविणमपि भूयस्तव मया
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरूपमं यत्प्रकुरुषे ॥कुपुत्रो०॥

सब का उद्धार करनेवाली हे कल्याणमयी मातः ! तुम्हारी आराधन विधि न जानने के कारण, धन के अभाव में, आलस्य से तथा विधेय कर्मों के करने में असमर्थ होने के कारण तेरी चरण-सेवा में त्रुटि रही तो उसको क्षमा करना ; क्योंकि पूत कपूत हो सकता है पर माता कभी कुमाता नहीं होती ।

मा ! भूमण्डल पर तुम्हारे सरल पुत्र तो अनेक हैं, परन्तु उनमें एक मैं विरला ही चञ्चल भी हूं । अतः हे शिवे ! कपूत समझ कर मुझे त्याग देना तुम्हारे लिये उचित नहीं है क्योंकि पूत कुपूत होता है, माता कभी कुमाता नहीं होती ।

हे जगदम्ब ! हे मातः ! मैंने तुम्हारे चरणों की सेवा नहीं की और न प्रचुर द्रव्य ही तुम्हारे समर्पण किया तो भी मुझपर जो इतना अनुपम स्नेह रखती हो इससे यही सत्य सिद्ध होती है कि पूत कुपूत हो जाता है पर माता कुमाता नहीं ।

परित्यक्ता(क्त्वा)देवा(न्) विविधविधिसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नाऽपि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि ! कं यामि शरणम् ॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः ।
तवाऽपर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।

हे जननि ! अनेक प्रकार की सेवा-विधियों से आकुल होकर अन्य सब देवताओं को छोड़ दिया है और अवस्था ८५ वर्ष से अधिक हो चुकी है इस समय यदि तेरी भी कृपा न होगी तो मैं आश्रयहीन किसकी शरण जाऊंगा ।

हे पार्वति ! तेरा मन्त्र कान में पड़ते ही चाण्डाल भी मधुरभाषी वक्ता बन जाता है और महा दरिद्र भी करोड़पति बनकर चिरकाल निर्भय विचरता है ; किन्तु हे जननि ! तेरे मन्त्र की जपविधि को कौन जानता है ? अर्थात् विरला ही जानता है ।

चिता की भस्म को लेपनकरनेवाले, हालाहल विष पान करनेवाले, जटाजूटधारी, दिगम्बर, नागराज का हार धारण कर हाथ में खप्पर (भिक्षापात्र) लिये

कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि ! त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटी फलमिदम् ॥

न मोक्षस्याऽऽकाङ्क्षा न च विभववाञ्छाऽपि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि ! सुखेच्छाऽपि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि ! जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥

नाराधिताऽसि विधिना विविधोपचारैः
किं रूक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।
श्यामे ! त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे !
धत्से कृपामुचितमम्ब ! परं तवैव ॥

भूतनाथ पशुपति (शिव) भी जो समस्त जगत् के स्वामी बन गये हैं यह सब हे भवानि ! तेरा हाथ पकड़ने का ही फल है ।

हे मातः ! मुझे न तो मोक्ष की इच्छा है और न सांसारिक वैभव की । न मुझे ज्ञान-विज्ञान की अभिलाषा है और न सुख की इच्छा है, मैं तो केवल तुमसे यही मांगता हूं कि मेरी सारी आयु शिव-शिव मृडानी, रुद्राणी, भवानी इन नामों के जपते-जपते ही बीत जाय ।

हे श्यामे ! मैंने अनेकों उपचारों से तुम्हारी सेवा नहीं की, प्रत्युत व्यर्थ झूठी चिन्ता और कठोर वचनों द्वारा अनर्थ ही किये हैं फिर भी मुझ अनाथ पर जो कुछ भी अनुग्रह करती हैं वह सब मा के लिये उचित ही है ।

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे ! करुणार्णवेशि !
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥

जगदम्ब ! विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणाऽस्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परावृतं नहि माता समुपेक्षते सुतम् ॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि ! यथा योग्यं तथा कुरु ॥

॥ इति श्रीदेव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

हे दुर्गे ! हे दयापूर्णे ! महेश्वरि ! जब भी मैं किसी विपत्ति में फँस जाता हूं उस समय तेरा ही स्मरण करता हूं इसको तुम मेरी दुष्टता मत समझना ; क्योंकि भूख-प्यास के समय बच्चे मा को ही याद किया करते हैं ।

हे जगज्जननि ! मुझपर तुम्हारी पूर्ण कृपा है इसमें आश्चर्य ही क्या है क्योंकि अपराधों से युक्त पुत्र को भी माता छोड़ कभी नहीं देती ।

हे महादेवि ! मेरे समान कोई पापी नहीं है और तुम्हारे समान कोई पाप नाश करनेवाली नहीं है, यह जानकर जैसा उचित समझो करो ।

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी ।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ! ॥

नानारत्नविचित्रभूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुम्भान्तरी ।
काश्मीरागुरुवासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी । भिक्षां०

योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी

नित्य आनन्द करनेवाली, अभय वरदान देनेवाली, सौन्दर्य का समुद्र, घोर तम पापों से मुक्त करनेवाली महेश्वर की साक्षात् अर्धाङ्गिनी; हिमालय के वंश को पवित्र करनेवाली, काशीपुरी की स्वामिनी, हे अन्नपूर्णे मातः ! मुझे तेरी दया की भिक्षा दे ।

अनेक प्रकार के रत्नजटित आभूषणों से सुशोभित, स्वर्ण सदृश देदीप्यमान पीताम्बर धारण करनेवाली, कलश के समान पयोधरों के मध्य में जिसके मोतियों का हार शोभित हो रहा है, केशर के अङ्गराज से जो सुवासित है, एतादृश हे मातः अन्नपूर्णे मुझे दया की भिक्षा दे ।

ब्रह्मानन्द को देनेवाली, शत्रुक्षयकारिणी, धर्मकृत्यों में निष्ठा कर(रा)नेवाली और

चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी ।
सर्वैश्वर्यसमस्तवाञ्छितकरी काशीपुराधीश्वरी ॥ भिक्षां० ॥

कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी उमाशङ्करी
कौमारी निगमार्थगोचरकरी ओङ्कारबीजाक्षरी ।
मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी ॥ भिक्षां० ॥

दृश्यादृश्यप्रभूतवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी ।
श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी ॥भिक्षां०॥

अर्थार्जन की बुद्धि देनेवाली, चन्द्र, सूर्य और अग्नि के समान तेजोयुक्त, तीनों लोकों की रक्षा करनेवाली, समस्त मनोवाञ्छित ऐश्वर्य्य प्रदान करनेवाली हे गौरि! शङ्करपत्नी उमे ! मुझे तेरी दया की भिक्षा दे।

कैलाश की कन्दराओं में निवास करनेवाली, वेद के गूढ़ अर्थ को प्रत्यक्ष कर देनेवाली, मुक्ति के द्वार को खोल देनेवाली, हे ओङ्कारस्वरूपे ! गौरि ! उमे ! अन्नपूर्णे ! मुझे तेरी दया की भिक्षा दे।

हे विश्वनाथ भगवान् के मन को प्रसन्न करनेवाली, काशीपुरी की अधीश्वरी अन्नपूर्णे ! तूं दृश्य-अदृश्य समस्त वाहनादि सम्पत्ति प्रदान करनेवाली है। ये कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड तेरे उदर में निवास करते हैं, तूं ही ब्रह्मविद्यारूप ज्ञानप्रदीप की जननी है जिससे इस दृश्यमान प्रपञ्चरूपी लीलामय नाटक सूत्र का भेदन होता है अर्थात् साधक माया से मुक्त हो जाता है, हे मातः ! तूं मुझे दया की भिक्षा दे।

उर्वी सर्वजनेश्वरी भगवती मातान्नपूर्णेश्वरी
वेणीनीलसमानकुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी ।
सर्वानन्दकरी नृणां शुभकरी काशीपुराधीश्वरी ।। भिक्षां० ।।

आदिक्षान्तसमस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरात्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरा शर्वरी।
कामाकाङ्क्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी ।।भिक्षां०।।

देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वामास्वादुपयोधरप्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी ।
भक्ताभीष्टकरी सदा(दशा)शुभकरी काशीपुराधीश्वरी ।।भिक्षां०।।

हे मातः! पृथ्वीस्वरूपा तूं ही है, अतः समस्त प्राणियों को अन्न देनेवाली तूं है, नील अलक की वेणी तेरे मस्तक पर अत्यन्त मनोहर लगती है। तूं मनुष्य मात्र का शुभ करनेवाली है, हे काशीपुराधीश्वरी भगवति ! मुझे दया की भिक्षा दे।

हे दुर्गे! आदि अकार से लेकर क्षत्रज्ञ तक समस्त वर्णों में आपका ही वर्णन होता है। शम्भु के तीनों भावों को बनानेवाली, काश्मीर (कौशेय) का वस्त्र धारण किये हुए काश्मीर में सिद्ध पीठेश्वरी! तीनों ही लोकों के जलीय तत्त्व पर शासन करनेवाली, तीनों लहरवाली, नित्याङ्कुर सम्पूर्ण प्राणियों का उत्पत्ति स्थान रात्रि रूप सम्पूर्ण प्राणियों को मोहनिद्रा में रखनेवाली कामनाओं और आकाङ्क्षाओं को पूर्ण करनेवाली, मनुष्यों का उदय करनेवाली काशीपुरी की स्वामिनी, हे अन्नपूर्णेश्वरी मातः कृपावलम्बनकरी ! मुझे जीवन-यात्रार्थ कृपा की भिक्षा दो।

हे देवि! दक्षपुत्री सुन्दर स्वरूपे ! तूं सदा विचित्र रत्नों से अलंकृत रहती है, अपने भक्तों को स्वादु स्तनपान करानेवाली है तथा सदा उनका अभीष्ट सिद्ध करनेवाली है, ऐसी हे सौभाग्यप्रदात्रि! महेश्वरपत्नि! अन्नपूर्णे मातः! मुझे तेरी कृपा की भिक्षा दे।

चन्द्रार्कानलकोटिकोटिसदृशा चन्द्रांशुबिम्बाधरी
चन्द्रार्काग्निसमानकुन्तलहरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी ।
मालापुस्तकपाशसाङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी ॥भिक्षां०॥

क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
साक्षान्मोक्षकरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शङ्कर प्राणवल्लभे ।
ज्ञानवैराग्य (आयुरारोग्य) सिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वती ॥

हे अन्नपूर्णे मा ! तेरे बिम्बाधर की प्रभा कोटि-कोटि सूर्य, चन्द्र और अग्नि के समान है, तेरा केश कलाप भी सूर्य, चन्द्रमा अग्नि के समान देदीप्यमान है। अधिक क्या कहूं, तेरा सम्पूर्ण अङ्ग कोटि-कोटि सूर्य सदृश प्रभावान् है, मालापुस्तक पाश अंकुशधारिणि हे काशीश्वरी मा ! मुझको अपनी कृपा की भिक्षा दे।

संग्राम में वीर क्षत्रियों की रक्षा करनेवाली, अभयदान देनेवाली, करुणा की सिन्धु, मोक्षदात्री, सदा कल्याण करनेवाली, श्री (शोभा, कान्ति) को धारण करनेवाली, दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करनेवाली, स्वास्थ्यप्रदे, हे काशीश्वरी मातः अन्नपूर्णे ! मुझको अपनी दया की भिक्षा दे।

हे अन्नपूर्णे ! तूं सदा पूर्ण है (तेरा भण्डार कभी रिक्त (खाली) नहीं होता) हे भगवान् शङ्कर की प्राणप्रिये ! तूं मुझे 'ज्ञान की सिद्धि के लिये' अपनी दया की भिक्षा दे।

माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः ।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥

॥ इति श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रम् सम्पूर्णः ॥

श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै नमः

भगवतीपुष्पाञ्जलिस्तोत्रम्

भगवति भगवत्पदपङ्कजं भ्रमरभूतसुरासुरसेवितम् ।
सुजनमानसहंसपरिस्तुतं कमलयाऽमलया निभृतं भजे ॥
अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनि विश्वविनोदिनि! नन्दनुते,
गिरिवरविन्ध्यशिरोधिनिवासिनि विष्णुविलासिनि जिष्णुनुते।

हे पार्वती ! तूं ही हमारी मा है, भगवान् महेश्वर ही हमारे पिता हैं, शिवभक्त हमारे बान्धव हैं और तीन भुवन हमारा देश है ।

मैं भगवान् शङ्कर और माता पार्वती के चरणकमलों को भजता हूं जिनपर समस्त सुर और असुर भ्रमर कीं तरह मंडराते (प्रणाम करते) रहते हैं और जो भक्तों के मनरूपी मानसरोवर में विराजते हैं तथा निर्मल स्वरूपा लक्ष्मी जिनमें निवास करती है ।

हे पर्वत पुत्री (नदी स्वरूपे) देवि ! तूं पृथ्वी को आनन्दित करनेवाली है, समस्त विश्व तुमसे ही आनन्दित होता है। नन्द बाबा के घर तुम्हीं ने जन्म धारण किया है। हे विन्ध्यवासिनि ! तूं ही विष्णु प्रिया लक्ष्मी स्वरूपा हो तथा

भगवति ! हे शितिकण्ठकुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूतिकृते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥
सुरवरवर्षिणि दुर्धरधर्षिणि दुर्मुखमर्षिणि हर्षरते
त्रिभुवनपोषिणि शङ्करतोषिणि किल्बिषमोषिणि घोषरते ।
दनुजनिरोषिणि दितिसुतरोषिणि दुर्मदशोषिणि सिन्धुसुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥
अयि जगदम्ब मदम्बकदम्बवनप्रियवासिनि(तोषिणि) हासरते
शिखरिशिरोमणितुङ्गहिमालयशृङ्गनिजालयमध्यगते ।
मधुमधुरे मधुकैटभगञ्जिनि कैटभभञ्जिनि रासरते ॥जय-२ हे०॥

इन्द्रादिदेव तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। हे भगवति ! भगवान् शङ्कर की गृहिणी विशाल कुटुम्बवाली, ऐश्वर्य को देनेवाली हे महिषासुर का मर्दन करनेवाली महालक्ष्मी पार्वती तेरी जय हो।

हे इन्द्र को समृद्ध बनानेवाली, दुर्धर और दुर्मुख नामक दैत्यों का संहार करनेवाली, सदा प्रसन्न रहनेवाली, भगवान् शङ्कर को सन्तुष्ट करनेवाली, पापनाशिके, तीन लोक का पालन करनेवाली, नादानुसन्धान परायणे, दैत्यों पर क्रोध करनेवाली, अहङ्कार को नष्ट करनेवाली, हे सिन्धु सुता महिषासुर का मर्दन करनेवाली लक्ष्मी ! तेरी जय हो।

हे मेरी मातः जगदम्ब ! तूं कदम्ब के वन में प्रेम से रहती है, सदा मन्द हास्यवती है, पर्वतराज हिमालय के उच्च शिखर (कैलास) पर तेरा स्थान है, मधुपान से सुन्दर दिखाई पड़नेवाली, मधु-कैटभ नाम के राक्षसों का संहार करनेवाली है हे सतत रासक्रीड़ा परायणे ! शंकर की प्रियपत्नी पार्वती, हे महिषासुर का मर्दन करनेवाली महालक्ष्मी तेरी जय हो।

अयि शतखण्डविखण्डितरुण्डवितुण्डितशुण्डगजाधिपते
रिपुगजगण्डविदारणचण्डपराक्रमशौण्डमृगाधिपते ।
निजभुजदण्डनिपातितचण्डविपातितमुण्डभटाधिपते ॥ जय० ॥

अयि रणदुर्मदशत्रुवधोद्धुरदुर्धरनिर्भरशक्तिभृते
चतुरविचारधुरीणमहाशयदूतकृतप्रमथाधिपते ।
दुरितदुरीहदुराशयदुर्मतिदानवदूतकृतान्तमते ॥जय-२ हे०॥

अयि शरणागतवैरिवधूवरवीरवराभयदायकरे
त्रिभुवनमस्तकशूलविरोधिशिरोधिकृतामलशूलधरे ।
दुमिदुमितामरदुन्दुभिनादमहोमुखरीकृततिग्मकरे ॥जय०॥

हे गजाधिपति के विना सूण्ड के धड़ के सौ टुकड़े करनेवाली, योद्धाओं में श्रेष्ठ चण्ड और मुण्ड नाम के दैत्यों को अपनी भुजाओं के बल से नष्ट करनेवाली, शत्रु के हाथी के गण्डस्थल को चीरने में उत्कट पराक्रमी सिंहवाहिनी, शंकर की प्रिय पत्नी पार्वती हे महिषासुर का मर्दन करनेवाली महालक्ष्मी तेरा जय-जयकार हो ।

हे जननि ! शत्रुवध के लिये उद्यत हुए देवताओं को तूं शक्ति प्रदान करती है, चतुर तथा ज्ञानियों में अग्रणी भगवान् शङ्कर तेरे सन्देशवाहक हैं । हे देवि ! पापी बुरी भावनावाले तथा बुरे विचारों को प्रोत्साहन देनेवाले मूर्ख दैत्यों के दूत से न जानी जा सकनेवाली महिमामयी, शंकर की प्रिय पत्नी हे महिषासुर मर्दिनि महालक्ष्मी तेरी जय हो ।

हे देवि ! शरण में आई हुई वैरियों की स्त्रियों के वीर पतियों को भी तूं अभयदान देती है, तीनों भुवनों के प्राणियों को पीड़ा देनेवाले दैत्यों और शत्रुओं के मस्तकों पर प्रहार करने योग्य तेज शूल को हाथ में धारण करनेवाली, दुम् दुम् ऐसे देवताओं की दुन्दुभि के शब्दों से दशों दिशाओं को गुञ्जानेवाली शङ्कर की प्रिय पत्नी पार्वती महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मी तेरी जय हो ।

अयि निजहुंकृतिमात्रनिराकृतधूम्रविलोचनधूम्रशते
समरविशोषितशोणितबीजसमुद्भवशोणितबीजलते ।
शिव शिव शुम्भनिशुम्भमहाहवतर्पितभूतपिशाच रते ।।जय०।।

धनुरनुषङ्गरणक्षणसङ्गपरिस्फुरदङ्गनटत्कटके
कनकपिशङ्गपृषत्कनिषङ्गरसद्भटशृङ्गहताबटुके ।
कृतचतुरङ्गबलक्षितिरङ्गघटद्बहुरङ्गरटद्बटुके ।। जय-जय हे० ।।

सुरललनाततथेयितथेयितथाभिनयोत्तरनृत्यरते
कृतककुथःककुथो दिड़दाडिकतालकुतूहलगानरते ।

हे धूम्रलोचन नाम के दैत्य को हुंकारमात्र से भस्म करनेवाली दुर्गे! रणभूमि में क्रुद्ध रक्तबीज नाम के दैत्य के अनेक उसी के समान पराक्रमी दैत्यों को उत्पन्न करने की शक्ति के खून को पी जानेवाली, शुम्भनिशुम्भ नाम के दैत्यों के संग्रामयज्ञ से कल्याणकारी शंकर भगवान् को प्रसन्न करनेवाली शंकर की प्रिय पत्नी पार्वति! महिषापुरमर्दिनि महालक्ष्मी तेरी जय हो।

हे रणोत्सव में धनुष लेकर अपने शरीर को हिलाने से ही सारे शत्रु-सैन्य को कम्पा देनेवाली, सोने के पीले तीर और तरकस से युक्त, गर्जन करनेवाले बड़े उद्भट योद्धाओं की गर्दन काटनेवाली, हाथी, घोड़ा रथ और पैदल चारों प्रकार की सेनाओं को मारकर रणभूमि में नाना प्रकार के शब्दों को करनेवाले बटुकों को उत्पन्न करनेवाली शंकर पत्नी, महिषासुरमर्दिनि महालक्ष्मी तेरी जय हो।

हे अप्सराओं के ततथा, था थै, थै. थक् आदि शब्दों से युक्त भावपूर्ण नृत्य में मग्न रहनेवाली, अनेक प्रकार के विभिन्न मात्राओंवाले तालों से गेय आश्चर्यजनक

धिमिकटधिक्कटधिकटधिमिध्वनिधीरमृदङ्गनिनादरते ।
जय जय हे महिषासुर मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ।।

जय जय जाप्य जये जय शब्दपरस्तुतितत्परविश्वनुते
झणझणझिंझिमझिंकृतनूपुरशिंजितमोहितभूतपते ।
नटितनटार्धनटीनटनायकनाटितनाट्यसुगानरते ।।जय०।।

अयि सुमनःसुमनःसुमनःसुमनःसुमनोहरकान्तियुते
श्रितरजनीरजनीरजनीरजनीरजनीकरवक्त्रवृते ।
सुनयनविभ्रमरभ्रमरभ्रमरभ्रमरभ्रमराधिपते ।। जय० ।।

गायनों को सुननेवाली धा किट धुम् किट् तिर किट आदि पखावज की गम्भीर-ध्वनि को सुननेवाली, शंकरपत्नी हे महिषासुरमर्दिनि ! महालक्ष्मी तेरी जय हो ।

हे जपमन्त्र की जयशक्ति तुम्हारी सदा जय हो । हे जय जयकार के साथ स्तुति करनेवाले सारे संसार के लोगों से प्रणाम की जानेवाली, अपने नूपुर के झन् झन् झिन् झिन् शब्दों से त्रिभुवनपति भगवान् शंकर को मोहनेवाली, अर्ध-नारीश्वर नटराजों में सर्वश्रेष्ठ शंकरजी के ताण्डव नृत्य से शोभित नाटक को देखने में मन लगानेवाली, शंकरपत्नी पार्वति ! महिषासुरमर्दिनि महालक्ष्मी तेरी जय हो ।

हे देवगणों द्वारा मनोहर, आनन्ददायक मनमोहक पुष्पों के शृङ्गार करने से मनोहर कान्तिवाली, पूर्ण शारदीय पूर्णिमा की रात्रि में प्रकाशित चन्द्रमा की कान्ति से अत्यधिक लावण्ययुक्त मुखवाली, अपने कर्णायत विशाल नेत्रों में आँजी हुई कज्जल-कला (रेखा) से भ्रमरपंक्ति की शोभा को भी तिरस्कृत करनेवाली, हे भगवान् शंकर की प्यारी पत्नी पार्वति ! महिषासुरमर्दिनि ! महालक्ष्मी तुम्हारी सदा जयहो ।

सहितमहाहवमल्लमतल्लिकमल्लितरल्लकमल्लरते
विरचितवल्लिकपल्लिकमल्लिकझिल्लिकभिल्लिकवर्गवृते ।
सितकृतफुल्लिसमुल्लसितारुणतल्लजपल्लवसल्ललिते ।।जय०।।

अविरलगण्डगलन्मदमेदुरमत्तमतङ्गजराजपते
त्रिभुवनभूषणभूतकलानिधिरूपपयोनिधिराजसुते ।
अयि सुदतीजनलालसमानसमोहनमन्मथराजसुते ।।जय०।।

कमलदलामलकोमलकान्तिकलाकलितामलभाललते
सकलविलासकलानिलयक्रमकेलिचलत्कलहंसकुले ।
अलिकुलसंकुलकुवलयमण्डलमौलिमिलद्बकुलालिकुले ।।जय०।।

हे महायुद्धों में पराक्रमशील योद्धाओं में विशिष्ट वीरपुङ्गवों में श्रेष्ठ शोभाशालिनि ! अपने चारों ओर वल्लिक मल्लिक झिल्लिक भिल्लिक आदि गणों से घिरी हुई, अत्यन्त विकसित नवीन आभावाले विकच पुष्प से भी अधिक कान्तिवाली मात: शंकर की प्रियपत्नी पार्वति महिषासुरमर्दिनि ! महालक्ष्मी ! तुम्हारी जय हो।

हे सतत मदभरे गण्डस्थलवाले मदोन्मत्त गजराज के समान मन्द गमन करनेवाली, तीनों लोकों को भूषित करनेवाली, चन्द्रमा के समान कान्तिवाली, सुन्दर दाँतवाली स्त्रियों के उत्कण्ठित मनों को मोह लेनेवाले कामदेव को उत्पन्न करनेवाली! क्षीर सागर की पुत्री हे शंकर की पत्नि! हे महिषासुर का मर्दन करनेवाली महालक्ष्मी तेरी जय हो ।

हे कमल के पत्ते के समान टेढे, कोमल और स्वच्छ कान्तिवाले एक कला के चन्द्रमा से सुशोभित ललाटवाली ! विलासिता के सम्पूर्ण सद्गुणों की स्थानभूत अपनी स्वाभाविक गति से हंसों को चाल सिखानेवाली, भौरों के समान काले और गहरे बालों की चोटी पर मौलसिरी की सुगन्ध से भ्रमरों का आकर्षण करनेवाली, शंकर पत्नि ! हे महिषासुरमर्दिनि महालक्ष्मी तेरी जय हो ।

करमुरलीरववीजितकूजितलज्जितकोकिलमञ्जुमते
मिलितमिलिन्दमनोहरगुञ्जितरञ्जितशैलनिकुञ्जगते ।
निजगुणभूतमहाशबरीगणसद्गुणसम्भृतकेलिरते ॥जय०॥
कटितटपीत दुकूलविचित्रमयूखतिरस्कृतचन्द्ररुचे
प्रणतसुरासुरमौलिमणिस्फुरदंशुलसन्नखचन्द्ररुचे।
जितकनकाचलमौलिमदोर्जितनिर्झरकुञ्जरकुम्भकुचे ॥जय०॥
विजितसहस्रकरैकसहस्रकरैकसहस्रकरैकनुते
कृतसुरतारकसङ्गरतारकसङ्गरतारकसूनुसुते ।

अपने हाथ में वंशी को लेकर किये गये मधुर कर्णप्रिय शब्द को सुनने सेअपना बोलना बन्द कर लज्जित हुई कोकिल पर प्रेम की बुद्धि रखनेवाली, भौरों के समूह से गुञ्जारित सुशोभित सुन्दर पर्वतप्रदेश के कुञ्जों में विहार करनेवाली अपने भिल्लिनी, किरातिनी आदि गणों के नर्तनयुक्त विचित्र क्रीड़ाओं को देखकर प्रसन्न होनेवाली, शंकर की प्रियपत्नी, हे महिषासुरमर्दिनि महालक्ष्मि ! तेरी जय हो।

अपनी कमर पर पहनी हुई पीले रंग की साड़ी की प्रभूत चमक से सूर्य के तेज को निन्दित करनेवाली, प्रणाम करनेवाले देवतागण और दैत्यों के मस्तकों की मणियों की चमक से चमकनेवाले चन्द्रमा के समान चरणनखोंवाली, सुमेरु पर्वत की सोने की चोटियों पर मदोन्मत्त गर्जना करनेवाले हाथियों के गण्डस्थल के समान शोभावाले स्तनमण्डलवाली, हे महिषासुरमर्दिनि महालक्ष्मि ! तेरी जय हो।

हे देवि ! सहस्र करधारिणि तेरे हजारों भुजाओं की कान्ति सहस्र किरण सूर्य के समान है। रणभूमि में तारक दैत्य का संहार करनेवाले कार्तिकेय स्वामी की माता तेरी जय हो। सुरथ और समाधि वैश्य को वरप्रदान करनेवाली

सुरथसमाधिसमानसमाधिसमाधिसमाधिसुजातरते ।।जय०

पदकमलं करुणानिलये ! वरिवस्यति योऽनुदिनं सुशिवे .
अयि कमले कमलानिलये कमलानिलयः स कथं न भवेत् ।
तव पदमेव परम्पद मेमनु(मस्त्विति)शीलयतो मम किं न शिवे ।।जय०

कनकलसत्कलसिन्धुजलैरनुषिञ्चिनुतेगुणरङ्गभुवम्
भजति स किं न शचीकुचकुम्भतटीपरिरम्भसुखानुभवम् ।
तव चरणं शरणं करवाणि नतामरवाणिनिवासि शिवम् ।।जय०।।

देवि ! तेरी जय हो । हे भगवान् शंकर की प्रियपत्नी पार्वति ! महिषासुरमर्दिनि महालक्ष्मि ! तेरी जय हो ।

हे दयामयि शिवे ! तेरे चरणकमलों की जों प्रतिदिन सेवा करता है, हे कमल में रहनेवाली महालक्ष्मी ! उसके घर में लक्ष्मी का वास क्यों न होगा, अर्थात् अवश्य ही होगा । हे गिरिजे ! तेरा चरण कमल ही मेरा परम पुरुषार्थ मोक्ष है ऐसी दृढ़ भावना रखनेवाले मुझे किस बात की कमी हो सकती है अर्थात् किसी बात की कमी नहीं रह सकती। हे शंकर की प्रिय पत्नी पार्वती, हे महिषासुर का मर्दन करनेवाली महालक्ष्मी तेरा जयजयकार हो ।

सोने के चमकनेवाले घड़ों के जल से जो तुम्हारे मन्दिर के आंगन को धोकर साफ करता है क्या वह इन्द्राणी के समान बड़े-बड़े स्तनवाली सुन्दरी को आलिङ्गन करने के सुख का अनुभव नहीं करता है अर्थात् अवश्य करता है। हे सरस्वति ! तेरे चरण को ही मैं अपनी शरण बनाऊँ। हे मातः ! मुझे कल्याण-दायक मार्ग दिखा। हे शंकर की प्रियपत्नी पार्वती ! हे महिषासुर का मर्दन करनेवाली महालक्ष्मि ! तेरा जयजयकार हो ।

तव विमलेन्दुकलं वदनेन्दुमलं सकलं ननु कूलयते
किमु पुरुहूतपुरीन्दुमुखीसुमुखीभिरसौविमुखीक्रियते ।
मम तु मतं शिवनाम(मान)धने भवती कृपया किमुत क्रियते
जय जय हे महिषापुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥
अयि मयि दीनदयालुतया कृपयैव त्वया भवितव्यमुमे
अयि जगतोजननी(ति)कृपयाऽसि यथासि(मयाऽपि)तथानुमितासिरमे
यदुचितमत्र भवत्युररी (भवत्पुरगं) कुरुतादुरुतापमपाकुरुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥

तेरे स्वच्छ चन्द्रमा के समान शोभावाले मुखचन्द्र को जो सतत सेवा करके अपने अनुकूल बना लेता है क्या उसको इन्द्रदेव की अमरावती नगरी की रहने-वाली चन्द्रवदनी अप्सरायें कभी भी निराश कर सकती हैं ? अर्थात् कभी नहीं। हे शंकर भगवान् के सन्नाम(म्मा) को अपना सर्वस्व समझनेवाली ! मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि तेरी कृपा से ऐसा कोई कार्य नहीं है जो सिद्ध न हो सके। हे शंकर की प्रिय पत्नी पार्वती ! हे महिषासुर का मर्दन करनेवाली महालक्ष्मी तेरा जयजयकार हो।

हे उमे ! तू सदैव दीनों पर दया करनेवाली है इसलिये मेरे पर भी तू सदा कृपा ही कर। हे महालक्ष्मी ! तू संसार के सभी जीवों की मा है इसलिये मेरी भी तू मा हैं ऐसी मेरी मान्यता हूं। जो तेरे को उचित मालूम पड़े तो तू मुझे भी अपने मणिद्वीप नगर का निवासी बना। हे शाम्भवि देवि ! मेरे ऊपर दया कर। हे शंकर की प्रियपत्नी पार्वति, हे महिषासुर का मर्दन करनेवाली महा-लक्ष्मि ! तेरा जयजयकार हो।

स्तुतिमितस्तिमितः सुसमाधिना नियमतोऽयमतोऽनुदिनं पठेत् ।
परमया रमयाऽपि निषेव्यते परिजनोऽरिजनोऽपि च तं भजेत् ॥

॥ इति श्रीभगवतीपुस्पाञ्जलिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो मनुष्य इस स्तोत्र का ध्यानपूर्वक एकाग्रचित्त से ब्रह्मचर्य, दया, शान्ति, दान, सत्य, अपरिग्रह, अहिंसा, अस्तेय, माधुर्य और दम इन व्रतों को पालन करते हुए नियम से प्रतिदिन पाठ करेगा उसके पास सदैव विपुल धन रहेगा और अपने आत्मीय तथा सभी उसको चाहेंगे ।

पुनश्च—ये श्लोक आरम्भ में स्तुति के प्रथम श्लोक के बाद मिलते हैं ।

ते उभे अभिवन्देऽहं विघ्नेशकुलदैवते । नरनागाननस्त्वेको नरसिंह नमोऽस्तु ते ॥

हरिगुरुपदपद्मं शुद्धपद्मेऽनुरागाद्विगतपरमभागे सन्निधायाऽऽदरेण ।
तदनुचरि! करोमि प्रीतये भक्तिभाजां भगवति पदपद्मे पद्यपुष्पाञ्जलिन्ते ॥

केनैते रचिताः कुतो न निहिताः शुम्भादयो दुर्मदा
केनैते तव पालिता इति हि तत्प्रश्ने किमाचक्ष्महे ।
ब्रह्माद्या अपि शङ्किताः स्वविषये यस्याः प्रसादावधि
प्रीता सा महिषासुरप्रमथिनि च्छिन्द्यादवद्यानि मे ॥

पातु श्रीस्तु चतुर्भुजा किमु चतुर्बाहोर्महौजान्भुजाम्(न्)
धत्तेऽष्टादशधा हि कारणगुणाः कार्ये गुणारम्भकाः ।
सत्यं दिक्पतिदन्तिसंख्यभुजभृच्छम्भुः स्वयम्भूः स्वयं
धामैकम्प्रतिपत्तये किमथवा पातुं दशाष्टौ दिशः ॥

प्रीत्याऽष्टादशसम्मितेषु युगपद् द्वीपेषु त्रातुं वरान्
त्रातुं वा भयतो बिभर्षि भगवत्यष्टादशैतान्भुजान् ।
यद्वाऽष्टादशधा भुजांस्तु बिभ्रतः काली सरस्वत्युभे
मीलित्वैकमिहानयोः प्रथयितुं सा त्वं रमे रक्ष माम् ॥

अन्त में पुष्पिका में ये २ श्लोक और मिलते हैं—

रमयति किल कर्षस्तेषु चित्तं नराणामवरजवरयस्माद्रामकृष्णः कवीनाम् ।
अकृतसुकृतगम्यं रम्यपद्यैकहर्म्यं स्तवनभवनहेतुं प्रीतये विश्वमातुः ॥
इन्दुरम्योमुहुर्बिन्दुरम्यो मुहुर्बिन्दुरम्यो यतः साऽनवद्यं स्मृतः ।
श्रीपतेः सूनुना कारितो योऽधुना विश्वमातुः पदे पद्यपुष्पाञ्जलिः ॥

यह स्तोत्र काशी के सङ्कटा घाट पर स्थित माता सङ्कटाजी के मन्दिर में दर्शनार्थी भक्तजन विशेषरूप से प्रार्थना रूप गेय पदों में गाते हैं। भावोत्कृष्टता के साथ कवित्व रचना विशेष रूप से प्रयोजनीय है।

अथ देव्याः कवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र ! सर्वभूतोपकारकम् ।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥

ॐ चण्डिका देवी को नमस्कार है ।

मार्कण्डेयजी ने कहा—पितामह ! जो इस संसार में परम गोपनीय तथा मनुष्यों की सब प्रकार से रक्षा करनेवाला है और जो अब तक आपने दूसरे किसी के सामने प्रकट नहीं किया हो, ऐसा कोई साधन मुझे बताइये ।

ब्रह्माजी बोले—ब्रह्मन् ! ऐसा साधन तो एक देवी का कवच ही है, जो गोपनीय से भी परम गोपनीय, पवित्र तथा सम्पूर्ण प्राणियों का उपकार करनेवाला है ! महामुने ! उसे श्रवण करो ।

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चण्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥

देवी की नौ मूर्तियां हैं, जिन्हें 'नवदुर्गा' कहते है। उनके पृथक्-पृथक् नाम बतलाये जाते है। प्रथम नाम शैलपुत्री१ है। दूसरी मूर्ति का नाम ब्रह्मचारिणी२ है। तीसरा स्वरूप चन्द्रघण्टा३ के नाम से प्रसिद्ध है। चौथी मूर्ति को कूष्माण्डा४ कहते हैं। पाँचवीं दुर्गा का नाम स्कन्दमाता५ है। देवी के छठे रूप को कात्यायनी६ कहते हैं। सातवाँ कालरात्रि७ और आठवां स्वरूप महागौरी८ के नाम से प्रसिद्ध है।

---

१ गिरिराज हिमालय की पुत्री 'पार्वती देवी'। यद्यपि ये सब की अधीश्वरी हैं, तथापि हिमालय की तपस्या और प्रार्थना से प्रसन्न हो कृपापूर्वक उनकी पुत्री के रूप में प्रकट हुईं। यह बात पुराणों में प्रसिद्ध है। २ ब्रह्म चारयितुं शीलं यस्याः सा ब्रह्मचारिणी—सच्चिदानन्दमय ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति कराना जिनका स्वभाव हो, वे 'ब्रह्मचारिणी' हैं। ३ चन्द्रः घण्टायां यस्याः सा—आह्लादकारी चन्द्रमा जिसकी घण्टा में स्थित हों, उस देवी का नाम 'चन्द्रघण्टा' है।

४ कुत्सितः ऊष्मा कूष्मा—त्रिविधतापयुतः संसारः, अण्डे मांसपेश्यामुदररूपायां यस्याः सा कूष्माण्डा। अर्थात् त्रिविध तापयुक्त संसार जिनके उदर में स्थित है, वे भगवती 'कूष्माण्डा' कहलाती है। ५ छान्दोग्यश्रुति के अनुसार भगवती की शक्ति से उत्पन्न हुए सनत्कुमार का नाम स्कन्द है। उनकी माता होने से वे 'स्कन्दमाता' कहलाती हैं। ६ देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये देवी महर्षि कात्यायन के आश्रम पर प्रकट हुईं और महर्षि ने उन्हें अपनी कन्या माना, इसलिये 'कात्यायनी' नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई। ७ सब को मारनेवाले काल की भी रात्रि (विनाशिका) होने से उनका नाम 'कालरात्रि' है। ८ इन्होंने तपस्याद्वारा महान् गौरवर्ण प्राप्त किया था, अतः 'महागौरी' कहलायीं।

नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्त्ताः शरणं गताः ॥
न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसंकटे ।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥

यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥

नवीं दुर्गा का नाम सिद्धिदात्री[1] है । ये सब नाम सर्वज्ञ महात्मा वेद भगवान् के द्वारा ही प्रतिपादित हुए है ।

जो मनुष्य अग्नि में जल रहा हो, रणभूमि में शत्रुओं से घिर गया हो, विषम संकट में फँस गया हो तथा इस प्रकार भय से आतुर होकर जो भगवती दुर्गा की शरण में प्राप्त हुए हों, उनका कभी कोई अमङ्गल नहीं होता ।

युद्ध के समय संकट में पड़ने पर भी उनके ऊपर कोई विपत्ति नहीं दिखायी देती उन्हें शोक दुःख और भय की प्राप्ति नहीं होती ।

जिन्होंने भक्तिपूर्वक देवी का स्मरण किया है, उनका निश्चय ही अभ्युदय होता है । देवेश्वरि ! जो तुम्हारा चिन्तन करते हैं, उनकी तुम निःसन्देह रक्षा करती हो ।

---

१ सिद्धि अर्थात् मोक्ष को देनेवाली होने से उनका नाम 'सिद्धिदात्री' है ।

प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना ।
ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ॥
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः ।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥
दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥

चामुण्डा देवी प्रेत पर आरूढ़ होती हैं। वाराही भैंसे पर सवारी करती हैं। ऐन्द्री का वाहन ऐरावत हाथी है। वैष्णवी देवी गरुड़ पर ही आसन जमाती हैं। माहेश्वरी वृषभ पर आरूढ़ होती हैं। कौमारी का वाहन मयूर है। भगवान् विष्णु की प्रियतमा लक्ष्मी देवी कमल के आसन पर विराजमान हैं और हाथों में कमल धारण किये हुए हैं।

वृषभ पर आरूढ़ ईश्वरी देवी ने श्वेत रूप धारण कर रक्खा है। ब्राह्मी देवी हंसपर बैठी हुई हैं और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं।

इस प्रकार ये सभी माताएं सब प्रकार की योगशक्तियों से सम्पन्न हैं। इनके सिवा और भी बहुत-सी देवियां हैं, जो अनेक प्रकार के आभूषणों की शोभा से युक्त तथा नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित हैं।

ये सम्पूर्ण देवियां क्रोध में भरी हुई हैं और भक्तों की रक्षा के लिये रथ पर बैठी दिखायी देती हैं। शङ्ख, चक्र, गदा, शक्ति, हल और मुसल, खेटक और

खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ॥
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये ! शत्रूणां भयवर्द्धिनि ! ।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥
दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी ।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥

तोमर, परशु तथा पाश, कुन्त और त्रिशूल एवं उत्तम शार्ङ्ग धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र अपने हाथों में धारण करती हैं ।

दैत्यों के शरीर का नाश करना, भक्तों को अभयदान देना और देवताओं का कल्याण करना—यही उनके शस्त्र-धारण का उद्देश्य है ।

[कवच आरम्भ करने के पहले इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—] महान् रौद्ररूप, अत्यन्त घोर पराक्रम, महान् बल और महान् उत्साहवाली देवि ! तुम महान् भय का नाश करनेवाली हो; तुम्हें नमस्कार है । तुम्हारी ओर देखना भी कठिन है । शत्रुओं का भय बढ़ानेवाली जगदम्बिके ! मेरी रक्षा करो ।

पूर्व दिशा में ऐन्द्री (इन्द्रशक्ति) मेरी रक्षा करे । अग्निकोण में अग्निशक्ति, दक्षिण दिशा में वाराही तथा नैर्ऋत्यकोण में खड्गधारिणी मेरी रक्षा करे । पश्चिम दिशा में वारुणी और वायव्यकोण में मृग पर सवारी करनेवाली देवी मेरी रक्षा करे ।

उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी ।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।
जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥
मालाधारी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥
शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी ॥

उत्तर दिशा में कौमारी और ईशानकोण में शूलधारिणी देवी रक्षा करे। ब्रह्माणि! तुम ऊपर की ओर से मेरी रक्षा करो और वैष्णवी देवी नीचे की ओर से मेरी रक्षा करे।

इसी प्रकार शव को अपना वाहन बनानेवाली चामुण्डा देवी दसों दिशाओं में मेरी रक्षा करे। जया आगे से और विजया पीछे की ओर से मेरी रक्षा करे।

वाम भाग में अजिता और दक्षिण भाग में पराजिता रक्षा करे। उद्योतिनी शिखा की ओर रक्षा करे। उमा मेरे मस्तक पर विराजमान होकर रक्षा करे।

ललाट में मालाधारी रक्षा करे और यशस्विनी देवी मेरी भौंहों का संरक्षण करे। भौंहों के मध्यभाग में त्रिनेत्रा और नथुनों की यमघण्टा देवी रक्षा करे।

दोनों नेत्रों के मध्यभाग में शङ्खिनी और कानों में द्वारवासिनी देवी रक्षा करे। कालिका देवी कपोलों की तथा भगवती शाङ्करी कानों के मूलभाग की रक्षा करे।

नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥
दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला ।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥
नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी ।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च ।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥

नासिका में सुगन्धा और ऊपर के ओठ में चर्चिका देवी रक्षा करे। नीचे के ओठ में अमृतकला तथा जिह्वा में सरस्वती रक्षा करे।

कौमारी दाँतों की और चण्डिका कण्ठप्रदेश की रक्षा करे। चित्रघण्टा गले की घाँटी की और महामाया तालू में रहकर रक्षा करे।

कामाक्षी ठोडी की, सर्वमङ्गला मेरी वाणी की रक्षा करे। भद्रकाली ग्रीवा में और धनुर्धरी पृष्ठवंश (मेरुदण्ड) में रहकर रक्षा करे।

कण्ठ के बाहरी भाग में नीलग्रीवा और कण्ठ की नली में नलकूबरी रक्षा करे। दोनों कन्धों में खड्गिनी और मेरी दोनों भुजाओं की वज्रधारिणी रक्षा करे।

दोनों हाथों में दण्डिनी और अंगुलियों में अम्बिका रक्षा करे। शूलेश्वरी नखों की रक्षा करे। कुलेश्वरी कुक्षि (पेट) में रहकर रक्षा करे।

स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः शोकविनाशिनी ।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥
नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ।
पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ।
जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी ।
पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥
नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी ।
रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥

महादेवी दोनों स्तनों की और शोकविनाशिनी देवी मन की रक्षा करे। ललिता देवी हृदय में और शूलधारिणी उदर में रहकर रक्षा करे।

नाभि में कामिनी और गुह्यभाग की गुह्येश्वरी रक्षा करे। पूतना और कामिका लिङ्ग की और महिषवाहिनी गुदा की रक्षा करे।

भगवती कटिभाग में और विन्ध्यवासिनी घुटनों की रक्षा करे। सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाली महाबला देवी दोनों पिण्डलियों की रक्षा करे।

नारसिंही दोनों घुट्टियों की और तैजसी देवी दोनों चरणों के पृष्ठभाग की रक्षा करे। श्रीदेवी पैरों के अङ्गुलियों में और तलवासिनी तलुओं में रहकर रक्षा करे।

अपनी दाढ़ों के कारण भयंकर दिखायी देनेवाली दंष्ट्राकराली देवी नखों की और ऊर्ध्वकेशिनी देवी केशों की रक्षा करे। रोमावलियों के छिद्रों में कौबेरी और त्वचा की वागीश्वरी देवी रक्षा करे।

रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥
पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥
शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ।
अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥
प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना ॥

पार्वती देवी रक्त, मज्जा, वसा, मांस, हड्डी और मेदे की रक्षा करे। आँतों की कालरात्रि और पित्त की मुकुटेश्वरी रक्षा करे।

मूलाधार आदि कमलकोषों में पद्मावती देवी और कफ में चूड़ामणि देवी स्थित होकर रक्षा करे। नख के तेज की ज्वालामुखी रक्षा करे। जिसका किसी भी अस्त्र से भेदना नहीं हो सकता, वह अभेद्या देवी शरीर की समस्त सन्धियों में रहकर रक्षा करे।

ब्रह्माणि! आप मेरे वीर्य की रक्षा करें। छत्रेश्वरी छाया की तथा धर्मधारिणी देवी मेरे अहंकार, मन और बुद्धि की रक्षा करे।

हाथ में वज्र धारण करनेवाली वज्रहस्ता देवी मेरे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान वायु की रक्षा करे। कल्याण से सुशोभित होनेवाली भगवती कल्याणशोभना मेरे प्राण की रक्षा करे।

रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा॥
आयूरक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी।
यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्याञ्च चक्रिणी॥
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी॥
पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता॥
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी॥

रस, रूप, गन्ध, शब्द और स्पर्श—इन विषयों का अनुभव करते समय योगिनी देवी रक्षा करे। तथा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की रक्षा सदा नारायणी देवी करे।

वाराही आयु की रक्षा करे। वैष्णवी धर्म की रक्षा करे तथा चक्रिणी (चक्र धारण करनेवाणी) देवी यश, कार्ति, लक्ष्मी, धन तथा विद्या की रक्षा करे।

इन्द्राणि! आप मेरे गोत्र की रक्षा करें। चण्डिके! तुम मेरे पशुओं की रक्षा करो। महालक्ष्मी पुत्रों की रक्षा करे और भैरवी पत्नी की रक्षा करे।

मेरे पथ की सुपथा तथा मार्ग की क्षेमकरा रक्षा करे। राजा के दरबार में महालक्ष्मी रक्षा करे तथा सब ओर व्याप्त रहनेवाली विजया देवी सम्पूर्ण भयों से मेरी रक्षा करे।

देवि! जो स्थान कवच में नहीं कहा गया है, अतएव रक्षा से रहित है, वह सब तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हो; क्योंकि तुम विजयशालिनी और पापनाशिनी हो।

पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।
कवचेनाऽऽवृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥
निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनाऽऽवृतः पुमान् ॥
इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥
दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ।

यदि अपने शरीर का भला चाहे तो मनुष्य बिना कवच के कहीं एक पद भी न जाय—कवच का पाठ करके ही यात्रा करे—कवच के द्वारा सब ओर से सुरक्षित मनुष्य जहाँ-जहाँ भी जाता हैं, वहाँ-वहाँ उसे धन-लाभ होता है तथा सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि करनेवाली विजय की प्राप्ति होती है ।

वह जिस-जिस अभीष्ट वस्तु का चिन्तन करता है, उस-उस को निश्चय ही प्राप्त कर लेता है। वह पुरुष इस पृथ्वी पर तुलनारहित महान् ऐश्वर्य का भागी होता है।

कवच से सुरक्षित मनुष्य निर्भय हो जाता है। युद्ध में उसकी पराजय नहीं होती तथा वह तीनों लोकों में पूजनीय होता है।

जो प्रतिदिन नियमपूर्वक तीनों सन्ध्याओं के समय श्रद्धा के साथ इसका पाठ करता है, उसे दैवी कला प्राप्त होती है तथा वह तीनों लोकों में कहीं भी पराजित

जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥
नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥
अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥

नहीं होता । इतना ही नहीं, अपमृत्यु[१] से रहित हो, सदा स्वस्थ अधिक वर्षों तक जीवित रहता है ।

मकरी, चेचक और कोढ़ आदि उसकी सम्पूर्ण व्याधियां नष्ट हो जाती हैं । कनेर, मांग, अफीम, धतूरे आदि का स्थावर विष, साँप और विच्छू आदि के काटने से चढ़ा हुआ जङ्गम विष तथा अहिफेन और तेल के संयोग आदि से बननेवाला कृत्रिम विष—ये सभी प्रकार के विष दूर हो जाते हैं, उनका कोई प्रभाव नहीं होता ।

इस पृथ्वी पर मारण-मोहन आदि जितने आभिचारिक प्रयोग होते हैं तथा इस प्रकार के जितने मन्त्र, यन्त्र होते हैं, वे सब इस कवच को हृदय में धारण कर लेने पर मनुष्य को देखते ही नष्ट हो जाते हैं ।

ये ही नहीं, पृथ्वी पर विचरनेवाले ग्रामदेवता, आकाशचारी देवविशेष, जल के सम्बन्ध से प्रकट होनेवाले गण, उपदेशमात्र से सिद्ध होनेवाले निम्नकोटि के देवता, अपने जन्म के साथ प्रकट होनेवाले देवता, कुलदेवता, माला (कण्ठमाला आदि), डाकिनी, शाकिनी, अन्तरिक्ष में विचरनेवाली अत्यन्त

---

१ अकाल-मृत्यु अथवा अग्नि, जल, बिजली एवं सर्प आदि से होनेवाली मृत्यु को अपमृत्यु कहते हैं ।

ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥

नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ॥

यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ॥

यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ॥

बलवती भयानक डाकिनियाँ, ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, ब्रह्मराक्षस, वैताल, कूष्माण्ड और भैरव आदि अनिष्टकारक देवता भी हृदय में कवच धारण किये रहने पर उस मनुष्य को देखते ही भाग जाते हैं ।

कवचधारी पुरुष को राजा से सम्मान-वृद्धि प्राप्त होती है। यह कवच मनुष्य के तेज की वृद्धि करनेवाला और उत्तम है।

कवच का पाठ करनेवाला पुरुष अपनी कीर्ति से विभूषित भूतल पर अपने सुयश के साथ-साथ वृद्धि को प्राप्त होता है ।

जो पहले कवच का पाठ करके उसके बाद सप्तशती चण्डी का पाठ करता है, उसकी जबतक वन, पर्वत और काननोंसहित यह पृथ्वी टिकी रहती है, तब तक यहाँ पुत्र-पौत्र आदि सन्तान परम्परा बनी रहती है ।

देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥
लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ॐ ॥

॥ इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम् ॥

अथार्गलास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः श्री महालक्ष्मीर्देवता श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय उवाच ।

फिर देह का अन्त होने पर वह पुरुष भगवती महामाया के प्रसाद से उस नित्य परमपद को प्राप्त होता है, जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ।

वह सुन्दर दिव्य रूप धारण करता और कल्याणमय शिव के साथ आनन्द का भागी होता है ।

ॐ चण्डिका देवी को नमस्कार है । मार्कण्डेयजी कहते हैं ।

ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥

जयन्ती,१ मङ्गला,२ काली,३ भद्रकाली,४ कपालिनी,५ दुर्गा,६ क्षमा,७ शिवा,८ धात्री,९ स्वाहा१० और स्वधा११—इन नामों से प्रसिद्ध जगदम्बिके! तुम्हें मेरा नमस्कार हो। हे देवि चामुण्डे! तुम्हारी जय हो।

---

१ जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते इति 'जयन्ती'—सब से उत्कृष्ट एवं विजयशालिनी। २ मङ्गं जननमरणादिरूपं सर्पणं भक्तानां लाति गृह्णाति नाशयति या सा मङ्गला मोक्षप्रदा—जो अपने भक्तों के जन्म-मरण आदि संसार-बन्धन को दूर करती है, उस मोक्षदायिनी मङ्गलमयी देवी का नाम 'मङ्गला' है। ३ कलयति भक्षयति प्रलयकाले सर्वम् इति काली—जो प्रलयकाल में सम्पूर्ण सृष्टि को अपना ग्रास बना लेती है, वह 'काली' है। ४ भद्रं मङ्गलं सुखं वा कलयति स्वीकरोति भक्तेभ्यो दातुम् इति भद्रकाली सुखप्रदा—जो अपने भक्तों को देने के लिये ही भद्र, सुख किंवा मङ्गल स्वीकार करती है, वह 'भद्रकाली' है। ५ हाथ में कपाल तथा गले में मुण्डमाला धारण करनेवाली। ६ दुःखेन अष्टाङ्गयोगकर्मोपासनारूपेण क्लेशेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा—जो अष्टाङ्गयोग, कर्म एवं उपासनारूप दुःसाध्य साधन से प्राप्त होती हैं, वे जगदम्बिका 'दुर्गा' कहलाती है। ७ क्षमते सहते भक्तानाम् अन्येषां वा सर्वानपराधान् जननीत्वेनाऽतिशयकरुणामयस्वभावादिति क्षमा—सम्पूर्ण जगत् की जननी होने से अत्यन्त करुणामय स्वभाव होने के कारण जो भक्तों अथवा दूसरों के भी सारे अपराध क्षमा करती हैं, उनका नाम 'क्षमा' है। ८ सब का शिव अर्थात् कल्याण करनेवाली जगदम्बा को 'शिवा' कहते हैं। ९ सम्पूर्ण प्रपञ्च को धारण करने के कारण भगवती का नाम 'धात्री' है। १० स्वाहा रूप से यज्ञभाग ग्रहण करके देवताओं का पोषण करनेवाली। ११ स्वधारूप से श्राद्ध और तर्पण को स्वीकार करके पितरों का पोषण करनेवाली।

जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥
मधुकैटभविद्रावि विधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देदि द्विषो जहि ॥
महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

सम्पूर्ण प्राणियों की पीड़ा हरनेवाली देवि ! तुम्हारी जय हो। सब में व्याप्त रहनेवाली देवि ! तुम्हारी जय हो। कालरात्रि ! तुम्हें नमस्कार हो।

मधु और कैटभ को मारनेवाली तथा ब्रह्माजी को वरदान देनेवाली देवि ! तुम्हें नमस्कार है। तुम मुझे रूप (आत्मस्वरूप का ज्ञान) दो, जय (मोह पर विजय) दो, यश (मोह-विजय तथा ज्ञान-प्राप्तिरूप यश) दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो।

महिषासुर का नाश करनेवाली तथा भक्तों को सुख देनेवाली देवि ! तुम्हें नमस्कार है। तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाशकरो।

रक्तबीज का वध और चण्ड-मुण्ड का विनाश करनेवाली देवि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो।

शुम्भ और निशुम्भ तथा धूम्रलोचन का मर्दन करनेवाली देवि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो।

वन्दिताङ्घ्रियुगे! देवि सर्वसौभाग्यदायिनि!।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

अचिन्त्यरूपचरिते! सर्वशत्रुविनाशिनि!।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

सब के द्वारा वन्दित युगल चरणोंवाली तथा सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाली देवि! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो।

देवि! तुम्हारे रूप और चरित्र अचिन्त्य हैं। तुम समस्त शत्रुओं का नाश करनेवाली हो। रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो।

पापों को दूर करनेवाली चण्डिके! जो भक्तिपूर्वक तुम्हारे चरणों में सर्वदा मस्तक झुकाते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो।

रोगों का नाश करनेवाली चण्डिके! जो भक्तिपूर्वकतु म्हारी स्तुति करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो।

चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके ! ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

चण्डिके ! इस संसार में जो भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

मुझे सौभाग्य और आरोग्य दो । परम सुख दो, रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

जो मुझसे द्वेष रखते हों, उनका नाश और मेरे बल की वृद्धि करो । रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

देवि ! मेरा कल्याण करो । मुझे उत्तम सम्पत्ति प्रदान करो । रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

अम्बिके ! देवता और असुर दोनों ही अपने माथे के मुकुट की मणियों को तुम्हारे चरणों पर घिसते रहते हैं । तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥
हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

अपने भक्तजन को विद्वान् यशस्वी और लक्ष्मीवान् बनाओ तथा रूप दो, जय दो, यश दो और उसके काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

प्रचण्ड दैत्यों के दर्प का दलन करनेवाली चण्डिके ! मुझ शरणागत को रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

चतुर्मुख ब्रह्माजी के द्वारा प्रशंसित चार भुजावाली परमेश्वरि ! रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो।

देवि अम्बिके ! भगवान् विष्णु नित्य-निरन्तर भक्तिपूर्वक तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं। तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

हिमालय-कन्या पार्वती के पति महादेवजी के द्वारा प्रशंसित होनेवाली परमेश्वरि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते ! परमेश्वरि ! ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

देवि ! प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि ! ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

देवि ! भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ! ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः ।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥

॥ इति देव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

शचीपति इन्द्र के द्वारा सद्भाव से पूजित होनेवाली परमेश्वरि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

प्रचण्ड भुजदण्डोंवाले दैत्यों का घमण्ड चूर करनेवाली देवि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

देवि अम्बिके ! तुम अपने भक्तजनों को सदा असीम आनन्द प्रदान करती रहती हो । मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो ।

मन की इच्छा के अनुसार चलनेवाली मनोहर पत्नी प्रदान करो, जो दुर्गम संसार सागर से तारनेवाली तथा उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हो ।

जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करके सप्तशतीरूपी महास्तोत्र का पाठ करता है, वह सप्तशती की जपसंख्या से मिलनेवाले श्रेष्ठ फल को प्राप्त होता है । साथ ही वह प्रचुर सम्पत्ति भी प्राप्त कर लेता है ।

अथ कीलकम्

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥
सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥

ॐ चण्डिकादेवी को नमस्कार है ।

मार्कंडेयजी कहते हैं—विशुद्ध ज्ञान ही जिनका शरीर है, तीनों वेद ही जिनके तीन दिव्य नेत्र हैं, जो कल्याण-प्राप्ति के हेतु हैं तथा अपने मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट धारण करते हैं, उन भगवान् शिव को नमस्कार है ।

मन्त्रों का जो अभिकीलक है अर्थात् मन्त्रों की सिद्धि में विघ्न उपस्थित करनेवाले शापरूपी कीलक का जो निवारण करनेवाला है, उस सप्तशतीस्तोत्र को सम्पूर्णरूप से जानना चाहिये (और जानकर उसकी उपासना करनी चाहिये), यद्यपि सप्तशती के अतिरिक्त अन्य मन्त्रों के जप में जो निरन्तर लगा रहता है, वह भी कल्याण का भागी होता है ।

सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥
न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते ।
विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥
समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥
स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः ।

उसके भी उच्चाटन आदि कर्म सिद्ध होते हैं तथा उसे भी समस्त दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है ; अर्थात् जो अन्य मन्त्रों का जप न करके केवल इस सप्तशती नामक स्तोत्र से ही देवी की स्तुति करते हैं, उन्हें स्तुतिमात्र से ही सच्चिदानन्दरूपिणी देवी सिद्ध हो जाती है।

उन्हें अपने कार्य की सिद्धि के लिये मन्त्र, औषधि तथा अन्य किसी साधन के उपयोग की आवश्यकता नहीं रहती। विना जप के ही उनके उच्चाटन आदि समस्त आभिचारिक कर्म सिद्ध हो जाते हैं।

इतना ही नहीं, उनकी सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएं भी सिद्ध होती हैं। लोगों के मन में यह शङ्का थी कि 'जब केवल सप्तशती की उपासना से अथवा सप्तशती को छोड़कर अन्य मन्त्रों की उपासना से भी समान रूप से सब कार्य सिद्ध होते हैं, तब इनमें श्रेष्ठ कौन-सा साधन है ?' लोगों की इस शङ्का को सामने रखकर भगवान् शंकर ने अपने पास आये हुए जिज्ञासुओं को समझाया कि यह सप्तशती नामक सम्पूर्ण स्तोत्र ही सर्वश्रेष्ठ एवं कल्याणमय है।

तदनन्तर भगवती चण्डिका के सप्तशती नामक स्तोत्र को महादेवजी ने गुप्त कर दिया। सप्तशती के पाठ से जो पुण्य प्राप्त होता है, उसकी कभी समाप्ति

समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवं न संशयः ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥
ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥

नहीं होती ; किन्तु अन्य मन्त्रों के जपजन्य समाप्ति हो जाती है। अतः भगवान् शिव ने अन्य मन्त्रों की अपेक्षा जो सप्तशती की ही श्रेष्ठता का निर्णय किया, उसे यथार्थ ही जानना चाहिये।

अन्य मन्त्रों का जप करनेवाला पुरुष भी यदि सप्तशती के स्तोत्र और जप का अनुष्ठान कर ले तो वह भी पूर्णरूप से ही कल्याण का भागी होता है, इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। जो साधक कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी अथवा अष्टमी को एकाग्रचित्त होकर भगवती की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है और फिर उसे प्रसादरूप से ग्रहण करता है, उसी पर भगवती प्रसन्न होती हैं ; अन्यथा उनकी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती*। इस प्रकार सिद्धि के प्रतिबन्धकरूप कीलक के द्वारा महादेवजी ने इस स्तोत्र को कीलित कर रक्खा है।

---

* यह निष्कीलन अथवा शापोद्धार का ही विशेष प्रकार है। भगवती का उपासक उपर्युक्त तिथि को देवी की सेवा में उपस्थित हो अपना न्यायोपार्जित धन उन्हें अर्पित करते हुए एकाग्रचित्त से प्रार्थना करे—'मातः! आज से यह सारा धन तथा अपने-आपको भी मैंने आपकी सेवा में अर्पण कर दिया। इसपर मेरा कोई स्वत्व नहीं रहा। फिर भगवती का ध्यान करते हुए यह भावना करे, मानो जगदम्बा कह रही है—'बेटा! संसार-यात्रा के निर्वाहार्थ तू मेरा यह प्रसादरूप धन ग्रहण कर।' इस प्रकार देवी की आज्ञा शिरोधार्य करके उस

यो निष्कीलां विधायैना नित्यं जपति संस्फुटम्।
स सिद्धः सगणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥
न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते।
नाऽपमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥
ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥

जो पूर्वोक्त रीति से निष्कीलन करके इस सप्तशती स्तोत्र का प्रतिदिन स्पष्ट उच्चारणपूर्वक पाठ करता है, वह मनुष्य सिद्ध हो जाता है, वही देवी का पार्षद होता है और वही गन्धर्व भी होता है।

सर्वत्र विचरते रहने पर भी इस संसार में उसे कहीं भी भय नहीं होता। वह अपमृत्यु के वश में नहीं पड़ता तथा देह त्यागने के अनन्तर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

अतः कीलन को जानकर उसका परिहार करके ही सप्तशती का पाठ आरम्भ करे। जो ऐसा नहीं करता, उसका नाश हो जाता है*। इसलिये कीलक और निष्कीलन का ज्ञान प्राप्त करने पर ही यह स्तोत्र निर्दोष होता है और विद्वान् पुरुष इस निर्दोष स्तोत्र का ही पाठ आरम्भ करते हैं।

धन को प्रसाद-बुद्धि से ग्रहण करे और धर्मशास्त्रोक्त मार्ग से उसका सद्व्यय करते हुए सदा देवी के ही अधीन होकर रहे। यह 'दानप्रतिग्रहकरण' कहलाता है। इससे सप्तशती का शापोद्धार होता है और देवी की कृपा प्राप्त होती है।

* यहां कीलक और निष्कीलन के ज्ञान की अनिवार्यता बताने के लिये ही 'विनाश होना' कहा है। वास्तव में किसी प्रकार भी देवी का पाठ करे, उससे लाभ ही होता है। यह बात वचनान्तरों से सिद्ध है।

सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥
शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः।
भवत्येव समग्राऽपि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥
ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥

॥ इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

स्त्रियों में जो कुछ भी सौभाग्य आदि दृष्टिगोचर होता है, वह सब देवी के प्रसाद का ही फल है। अतः इस कल्याणमय स्तोत्र का सदा जप करना चाहिये।

इस स्तोत्र का मन्दस्वर से पाठ करने पर स्वल्प फल की प्राप्ति होती है और उच्चस्वर से पाठ करने पर पूर्ण फल की सिद्धि होती है। अतः उच्चस्वर से ही इसका पाठ आरम्भ करना चाहिये।

जिनके प्रसाद से ऐश्वर्य, सौभाग्य, आरोग्य सम्पत्ति, शत्रुनाश तथा परम मोक्ष की भी सिद्धि होती है, उस कल्याणमयी जगदम्बा की स्तुति मनुष्य क्यों नहीं करते ?

अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः। विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥

अथैतद्रात्रिसूक्तं रात्रिदेवताप्रतिपादकं सा रात्रिदेवता द्वेधा जीवरात्रिरीश्वररात्रिश्च तत्राद्या प्रसिद्धा यस्यामस्मदादीनां जीवानाम्प्रतिदिनं व्यवहारो लुप्यते। द्वितीया तु यस्यामीश्वरव्यवहारलोपो भवति महाप्रलयकाले तदानीमन्यवस्त्वभावात्केवलम्ब्रह्म मायात्मकमेव वस्तु सर्वकारणमव्यक्तपदवाच्यं तिष्ठति सा द्वितीया रात्रिः ॥ तदुक्तं देवीपुराणे। "ब्रह्ममायात्मिका रात्रिः परमेशलयात्मिका। तदधिष्ठातृदेवी तु भुवनेशी प्रकीर्तिता" इति। तदेवं सर्वोत्तमदेवताप्रतिपादकस्य रात्रिसूक्तस्य भाष्यकारादिभिः कृतव्याख्यानस्याऽपि विस्पष्टं व्याख्यानं यथामति क्रियते। रात्रीति। यादेवीसर्ववस्तुद्योतनशीला पुरुत्राबहुषुदेशेषुसर्वदेशेषु अक्षभिः प्रकाशमानैरिन्द्रियैरुपलक्षणविधया महदादिभिस्तत्त्वैर्देवी सर्ववस्तुद्योतनशीला आयती आगच्छन्ती विद्यमानारात्रीर्ब्रह्ममायात्मिका व्यख्यत् स्वोत्पादितजगज्जालसदसत्कर्मादिकं प्रथमतोविशेषेण पश्यति। अनन्तरं तत्तत्कर्मानुरूपफलरूपाः विश्वाः सर्वाः श्रियः सा अध्यधितअधिधारयति ददातीत्यर्थः। अयं भावः। सर्वकारणभूता चिच्छक्ति पूर्वकल्पीयानन्तजीवानां सदसत्कर्माण्यपरिपक्कान्यवलोक्य तत्फलप्रदानसमयाभावात्सेश्वरं प्रपञ्चं स्वस्मिन्विलापयति यावत्फलप्रदानसमयम्। सा रात्रिरूपा चिच्छक्तिः फलप्रदानसमये प्राप्ते महदादिद्वाराप्रपञ्चं निर्माय तत्तत्प्राणिनान्तत्तत्कर्माण्यसंकरमवलोकयति पश्चात्तत्तत्कर्मफलंददातीत्यहो सर्वज्ञता भगवत्या रात्र्‌र्भुवनेश्वर्याः कियद्वर्णनीयेति। अस्मिन्नर्थे सर्वोप्युपनिषद्भागः प्रमाणमिति स्पष्टमेव तद्विदाम्।

महत्तत्त्वादिरूप व्यापक इन्द्रियों से सब देशों में समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करनेवाली ये रात्रिरूपा देवी अपने उत्पन्न किये हुए जगत् के जीवों के शुभाशुभ कर्मों को विशेष रूप से देखती हैं और उनके अनुरूप फल की व्यवस्था करने के लिये समस्त विभूतियों को धारण करती हैं।

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः । ज्योतिषा बाधते तमः ॥
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ॥

इत्थं प्रथमकृत्यम्वर्णयित्वा द्वितीयं कृत्यं वर्णयति । ओर्वप्रा इति । अमर्त्या मरण-रहिता सा देवी देवनशीला चिच्छक्तिर्भुवनेश्वरी रात्रिः उरुविस्तीर्णमन्तरिक्षमुपलक्ष-णविधया सर्वप्रपञ्चमाप्राः स्वस्वरूपेणापूरयति स्वाधिष्ठानरूपे स्वाभेदेन विद्यमानं कल्पयति । तथा प्रपञ्चगतान्निवतो नीचान्लतागुल्मादीन् उद्वत उच्छ्रितान्वृक्षादींश्च स्वकीयेन तेजसाऽधिष्ठानचैतन्येनाऽऽप्राः पूरयति । या रात्रिर्भुवनेश्वरी सा प्रपञ्चगता-नां प्राणिनां वेदोक्तानुष्ठानपराणां चित्तशुद्धिमवलोक्य तेषां तमोमूलाज्ञानं ज्योतिषा स्वाकारवृत्तिप्रतिबिम्बितस्वस्वरूपचैतन्यज्योतिषा बाधते नाशयति । अनेन पूर्वो-क्ताऽध्यारोपस्यापवाद उक्तः ।

केन प्रकारेण नाशयति तत्राऽऽह । निरुस्वसारमिति । आयतीआगच्छन्ती देव-नशीलारात्रिश्चिच्छक्तिर्भुवनेश्वरी स्वस्य स्वसारं भगिनीमुषसं प्रकाशरूपामविद्याया-आवरणशक्तिरूपां निरस्कृत निष्करोति दग्धबीजभावमापादयतीत्यर्थः । तस्यामुष-सि तथा जातायां प्रारब्धकर्मक्षये विक्षेपशक्तेर्नाशान्मूलाज्ञानरूपं तमः अपेदुहासते अपैवगच्छति शक्तिद्वयातिरिक्तस्वरूपावस्थानोपयोगाभावादर्थान्नष्टं भवतीत्यर्थः ।

ये देवी अमर हैं और सम्पूर्ण विश्व को, नीचे फैलनेवाली लता आदि को तथा ऊपर बढ़नेवाले वृक्षों को भी व्याप्त करके स्थित हैं; इतना ही नहीं, ये ज्ञान-मयी ज्योति से जीवों के अज्ञानान्धकार का नाश कर देती हैं।

परा चिच्छक्तिरूपा रात्रिदेवी आकर अपनी बहिन ब्रह्मविद्यामयी उषादेवी को प्रकट करती हैं, जिससे अविद्यामय अन्धकार स्वतः नष्ट हो जाता है ।

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि। वृक्षे न वसतिं वयः ॥
नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः। नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥
यावया वृक्यं वृकं यवयस्तेनमूर्म्ये। अथा नः सुतरा भव ॥

अथाऽस्या रात्रेःप्रार्थनामन्त्रमाह। सानोइति। अद्याऽस्मिन्काले नोऽस्माकं सा रात्रिदेवता चिच्छक्तिर्भुवनेश्वरी प्रसीदतु यस्या यामन्यामनिप्राप्तौसत्यां यत्प्रसादप्राप्तौ सत्यां वयं न्यविक्ष्महि निविशामहे सुखेन स्वस्वरूपे आस्महे। तत्र दृष्टान्तः। वयः पक्षिणः वृक्षेन यथा वृक्षे नीडाश्रये वसतिं रात्रिनिवासं कुर्वन्ति तथा निवसामइत्यर्थः।

निग्रामासोइति। ग्रामासः ग्रामाः तत्स्थाः सर्वेजनाः पामरा अपामराआङ्गोंपाङ्गनं न्यविक्षत तस्याश्चिच्छक्तिरूपायां रात्र्यांविद्यमानायां निविशन्ते सुखेन शेरते तथा पद्वन्तः पादयुता गवाश्वादयश्च निविशन्ते तथा पक्षिणःपक्षोपेताश्च निविशन्तेतथा अर्थिनः कामार्थिनः पान्थस्थाः तथा श्येनासः श्येनाअपि निविशन्ते। अयम्भावः। ये प्राणिनः परमेश्वरीनामानभिज्ञा अपि केवलं करुणासागराया रात्रेश्चिक्तेर्भुवनेश्वर्याः करुणया सर्वे जनाः सुखेन शेरते स्वस्थाभवन्ति यथाऽतिमूढा बालाःमातुः करुणावशाच्छेरते एतादृशीयमतिकरुणावती रात्रिरस्तीति।

यावयेति। हेऊर्म्ये रात्रिनामैतत् चिच्छक्तिरात्रिरूपिणी भुवनेश्वरी यस्मात्त्व-

---

वे रात्रिदेवी इस समय मुझपर प्रसन्न हों, जिनके आनेपर हमलोग अपने घरों में सुख से सोते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे रात्रि के समय पक्षी वृक्षों पर बनाये हुए अपने घोंसलों में सुखपूर्वक शयन करते हैं।

उस करुणामयी रात्रिदेवी के अङ्क में सम्पूर्ण ग्रामवासी मनुष्य, पैरों से चलनेवाले गाय, घोड़े आदि पशु, पंखों से उड़नेवाले पक्षी एवं पतङ्ग आदि, किसी प्रयोजन से यात्रा करनेवाले पथिक और बाज आदि भी सुखपूर्वक सोते हैं।

हे रात्रिमयी चिच्छक्ति! तुम कृपा करके वासनामयी वृकी तथा पापमय वृक को हमसे अलग करो। काम आदि तस्कर-समुदाय को भी दूर हटाओ।

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उप ऋणेव यातय ॥

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥

॥ इति रात्रिसूक्तम् ॥

मतिदयावती तस्मादस्माकमपि पामराणां किञ्चिदपिकृतमनवेक्ष्य वृक्यं वृकस्यस्त्रियं नानावासनारूपां वृकं च वृकवन्मारकंपापञ्चास्मान्हिसन्तं यावय अस्मत्तः पृथक्कुरु । तथा स्तेनं तस्करश्चित्तापहारकं कामादिकं च यावयास्मत्तो वियोजय । अथानन्तरं नोऽस्माकं सुतरा सुखेन तरणीया क्षेमकरी मोक्षदात्री भव ।

हे रात्रि! चिच्छक्तिभुवनेश्वरि! पेपिशत्भृशंपिंशतसर्ववस्तुषु आश्लिष्टं तमोज्ञानं-कृष्णं कृष्णवर्णतमः प्राधान्येन व्यक्तं विशेषेणस्वभासा सर्वस्याञ्जकमीदृशं ज्ञानंमाउपा-स्थितउपागच्छत् । हेउषः रात्रिदेवते त्वं ऋणेव ऋणानीव तत्त्वं यातयापगमय यथास्तोतॄणामृणानिधनप्रदानेनापाकरोषि तथा ममाज्ञानमपि अपसारयेत्यर्थः ।

उपतेगा इति । हे रात्रि! चिच्छक्ते! भुवनेश्वरि तेत्वाङ्गा इव पयसोदोग्ध्रीर्धेनू(नु)रिव उपेत्याकारंस्तुतिजपादिभिरमुखीकरोमि । हेदिव ! परमाकाशरूपपरमात्मनोदुहितः पुत्रि परमात्मप्रकाशेन चिच्छक्तेरभिव्यज्यमानत्वाद्युक्तं परमात्मपुत्रीत्वंत्वत्प्रसादा-त्कामादीन्शत्रून् जिग्युषे ममस्तोत्रं नस्तोत्रमिव हविरपियथाशक्तिदत्तं वृणीष्व भजेति ।

तदनन्तर हमारे लिये सुखपूर्वक तरने योग्य हो जाओ— मोक्षदायिनी एवं कल्याण-कारिणी बन जाओ ।

हे उषः ! हे रात्रि की अधिष्ठात्री देवि ! सब ओर फैला हुआ यह अज्ञानमय काला अन्धकार मेरे निकट आ पहुंचा है । तुम इसे ऋण की भांति दूर करो— जैसे धन देकर अपने भक्तों के ऋण दूर करती हो, उसी प्रकार ज्ञान देकर इस अज्ञान को भी हटा दो ।

हे रात्रिदेवि ! तुम दूध देनेवाली गौके समान हो । मैं तुम्हारे समीप आकर स्तुति आदि से तुम्हें अपने अनुकूल करता हूं । परम व्योमस्वरूप परमात्मा की पुत्रि ! तुम्हारी कृपा से मैं काम आदि शत्रुओं को जीत चुका हूं, तुम स्तोत्र की भांति मेरे इस हविष्य को भी ग्रहण करो ।

अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥
[स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णो रतुलतेजसः]

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ।

ब्रह्मा तावत्तां स्तोतुंस्वयमेव प्रतिजानीते प्रतिज्ञां करोति । अतुलमसदृशंतेजोयस्य सः अतुलतेजाः । तस्यविष्णोर्ध्यानरूपां निद्रां स्तौमि । "तेजःप्रभावे दीप्तौचबलेशुक्रेपिऽकीर्तितम्" । तेज.असहनत्वेऽपि । यदाहुः । "अधिक्षेपावमानादे प्रयुक्तस्यपरेणयत् । प्राणात्ययेऽप्यसहनन्तत्तेजः समुदाहृतम्" । कीदृशीं निद्राम् । विश्वेश्वरींविश्वस्यईश्वरींव्यापिकां जनयित्रीम् । अश्नोतेराशुकर्मणिविरट्चेद्गोपधायाः । पुनःकीदृशीं जगद्धात्रींजगतोधारयित्रींपोषयित्रीं च । पुनः कीदृशींस्थितिसर्गसंहारमध्यमावस्थांकुर्वाणाम् । संहारंचसर्गस्थित्युत्तरावस्थां कुर्वाणाम् । सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये । पुनः कीदृशीं भगवतीं षडैश्वर्यसंगताम् । जगदिति । धात्रीमिति ताच्छील्येतृन्योगे नलोकाव्ययसूत्रेणषष्ठीनिषेधात्कर्मणिद्वितीयान्तं जगदिति । एतेन विष्णुयोगनिद्रैवजगत्सर्गस्थितिसंहारकारिणीब्राह्मीवैष्णवीमाहेश्वरीमयीशक्तिरितिस्तुतितात्पर्यं सूचितम् ।

अशेःसरत् । षत्वकत्वषत्वानि । "अक्षरंवर्णनिर्माणंवर्णमप्यक्षरं विदुः । अक्षरंनक्षरंविद्यादक्षरंश्रुतितोययोः" । अश्नातित्रीन्लोकान्भुङ्क्तेभूतात्मकत्वादक्षरा । अश्नुते-

---

जो इस विश्व की अधीश्वरी, जगत् को धारण करनेवाली, संसार का पालन और संहार करनेवाली तथा तेजःस्वरूप भगवान् विष्णु की अनुपम शक्ति हैं, उन्हीं भगवती निद्रादेवी की भगवान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे ।

ब्रह्माजी ने कहा—देवि ! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥

व्याप्नोतिविश्वात्मकत्वाच्चअक्षरा। यद्वा क्षरति संचलति क्षरं न क्षरमक्षरंध्रुवम्। अक्षराध्रुवाअतएव हेअक्षरेध्रुवेहेनित्येहेशाश्वतिहेदेवित्वंस्वाहादेवतोद्देशेनद्रव्यत्यागजनितदेवतापितृरूपत्वेन आस्थिताअङ्गीकृता। प्रज्ञाऽसिशास्त्रेण। अव्ययंस्वाहेति यदभ्यधुः। "स्वाहादेवहविर्दानेश्रौषड्वौषड्वषट्स्वधा" इति च। यद्वा त्वंस्वाहेति देवहविर्दानमंत्ररूपाऽसि। यद्वा। त्वं स्वाहेत्येवमसिस्वाहा त्वं देवस्वरूपेत्यर्थः। यद्वा। त्वंस्वाहाऽसि हुतभुक्प्रियाऽसि। सुष्ठुआहूयतेस्वाहासास्त्यस्या इतिवा स्वाहा। "स्वाहाग्नाय्यनलप्रिया"। यद्वा "आकारःस्यात्पितामहः"। त्वंसुष्ठुआंपितामहंब्रह्माणंजिहीषेगच्छसिस्वाहाऽसि त्रय्यसिब्राह्मण्यसि। आतोऽनुपसर्गेकः। हेदेविस्त्वंस्वधापितृद्देशेनदीयमानद्रव्यजनिततृप्तिरसि। यद्वा। त्वंस्वधेत्येवमत्सिस्वधात्। स्वधेतिमंत्रतोभुञ्जानापितृरूपाऽसीत्यर्थः। यद्वा। अकारो "वासुदेवःस्यात"। सुष्ठुअंवासुदेवंदधासिपोषयसिस्वधाऽसिलक्ष्मीरसि। हेदेवि! हियतःत्वंवषट्कारोऽसि। अतःवषडिंद्रायेतिवषट्कारभागिंद्रइतित्वमिंद्राण्यसीत्यर्थः। यद्वा। हेदेवित्वंहित्वमेव वषट्कारोऽसि वषट्कारो यजमानः ऋत्विक्चाऽसि। "हि हेतावववधारणे"। हेदेवित्वंस्वरात्मिका। स्वःस्वर्गःआत्मा यस्याःसा स्वर्गरूपाऽसि। यद्वा। त्वंपरलोकात्मासि। "स्वर्गेपरेचलोके स्वः"। यद्वा। त्वंस्वरा त्वंस्वरात्मिकाऽनुदात्तादिस्वरूपरूपाऽसि। अथच निषादऋषभादिस्वरात्मिकाऽप्यसि। अथवा वषट्कारस्वरात्मिकाइत्येकंपदम्। वषट्कारयतिवषट्कारंस्वःफलंतपःप्रयोजनमात्मायस्याःसा। वषट्कारप्रवर्त्तकस्वर्गरूपफलात्माऽसि। हेदेवित्वंसुधामत्सि सुधाअसि। हेदेवित्वंत्रीनलोकान्त्रीन्वेदान्त्रीन्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्वा दधासिइतित्रिधासि। यद्वा त्रिधामासि। त्रीणि धामानिगृहा-

---

वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जीवनपायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणव में अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओं के रूप में तुम्हीं स्थित हो।

अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्याविशेषतः ।

त्रिभुवनलक्षणानिदेहानिब्रह्मादिरूपाणितेजांसिचन्द्रार्काग्निरूपाणिच त्रिशक्तिलक्षणानि यस्याःसा त्रिधामा। हेदेवि त्वं त्रात्मिका। त्रैङ्पालने। त्रायते त्राःविष्णुः क्विप् त्राआत्मास्वभावो यस्याःसा विष्णुरूपाऽसि। यद्वा, संपदादित्वाद्भावे क्विप् त्राणंत्राः पालनमात्मास्वरूपंयस्याःसा पालनरूपाऽसि। यद्वा, हेदेवि! त्वंत्रिधात्रिभिःप्रकारैः एकमात्रद्विमात्रत्रिमात्ररूपस्वरा। परम्परयावर्णात्मव ह्रस्वदीर्घप्लुत भेद भिन्नमात्राआत्मावस्थाःसा त्रिमात्रात्मिका स्वरवर्णरूपाऽसिस्थितासिअस्थिताऽसिच। यद्वा, त्रिधा त्रिभिःप्रकारैः ब्राह्मीवैष्णवीमाहेश्वरीरूपाःमातरःआत्मास्वरूपंयस्याःसात्रिशक्त्याकृतिस्त्रिमात्रात्मिकेयंविष्णुयोगनिद्रास्थितेति। त्रिधामात्रात्मिका ओंकाररूपेति चमात्राअकारःउकारःमकारश्चेतितदात्मिकातत्स्वरूपेतिकश्चिदोम्पदगतवर्णानभाङ्क्षीत्। तच्चपापातात्पापीयः। ईदृशीमोम्पदव्युत्पत्तिमुत्सूत्रामंधस्यचांधलग्नस्य विनिपातःपदेपदेइत्यंधपरंपरापारंपर्यपर्यागतामन्धकुक्कुटीगतिमिवपदेपदेस्खलंतींप्रति कियदवतुष्यामःकिम्। यद्वा तुष्यामः। कियद्वा तुष्यामः। तथाहि वर्णेषु येवर्णैकदेशावर्णान्तरसमानाकृतयस्तेषु तत्कार्यं न भवति। तच्छायानुकारिणो हि तेनपुनस्तएवेतिपृथक्प्रयत्ननिवर्त्यंहिवर्णमिच्छन्त्याचार्याः। दर्शितात्राऽस्माभिरोंपदव्युत्पत्तिरोन्नमश्चण्डिकायाइत्यत्रावतेष्टिलोपश्चेतिसूत्रतइत्यलम्विस्तरेण।

पूर्वत्र त्रिधामात्रात्मिकाइतिविशेषणेनअकारादिस्वरूपमात्रकात्मतोक्ता। अर्धमात्रात्वमित्यनेन तु ककारादिव्यञ्जनरूपमात्रकात्मतोच्यते। हेदेवि! त्वमर्धमात्राअर्धमात्राअर्धमात्रासाव्यञ्जनवर्णस्वरूपमात्रिका त्वमेव। अर्धनपुंसकमितिसमासः। तदुक्तम्—"एकमात्रोभवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घउच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतोज्ञेयो व्यञ्जनञ्चार्धमात्रकमिति। अथवा, पूर्वत्रत्रिधामात्रात्मिकेत्यनेनओमात्मकत्वंविवक्षितम्।

तथा इन तीन मात्राओं के अतिरिक्त जो विन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है। जिसका विशेष रूप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो।

त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥

तत्रओमितिद्विमात्रे दीर्घत्वात्। मकारस्त्वर्धमात्रो व्यञ्जनत्वात्। एवं त्रिधामात्रात्मकता। अथवा, ओमभ्यादानइतिसूत्रतोवेदादिप्रारम्भे ॐअग्निमीलेपुरोहितमित्यादौ ओंशब्द ओंइतिप्लुतः। एवंत्रिधामात्रात्मकता। अथवा प्रणवष्टेरिति। सूत्रेणयज्ञकर्मणिअपांरेतांसिजिन्वतो ३ म् इत्येवं पादस्यवाअर्द्धस्यवाअन्त्यस्याक्षरस्यो ३ मृशब्दस्त्रिमात्रआदिश्यते एवंत्रिधामात्रात्मकता। तत्रो ३ मृशब्दमेकाररूपायाअर्द्धमात्रास्थितानित्याध्रुवामोक्षंसूचयन्तीविशेषतो। अनुच्चार्या परमात्मरूपत्वात्। "यतोवाचोनिवर्त्तन्तेअप्राप्यमनसासह" इतिश्रुतिविशेषतः लक्षणीया साअर्धमात्रा त्वमेव। अर्धमात्रासूचितायामुक्तिःसात्वमेवेति भावः। अर्धमात्रायामर्धरूपतयास्थितेत्यपिव्याख्यातम्। अथ च अं विष्णुं याति यद्मारमासात्वमेव। अथचवदेःक्विप्। वदतीतिउत्वाचकःशब्दः नविद्यतेउत्वाचकःशब्दो यस्याःसा नुत् "यतोवाचोनिवर्त्तन्तेअप्राप्यमनसा सह" इतिश्रुतेः। चलितुं गंतुंप्राप्तुमर्हाचार्या। अनुचसाचार्याचअनुच्चार्यापरब्रह्मता सा त्वमेव। हेदेवित्वमेवसन्ध्याऽसि। सन्ध्यायंत्यस्यांसन्धीयेतेअहोरात्रौवास्यां सन्ध्यापितृप्रसूः। पितॄणांमाताऽसीति यावत्। अथवा हेदेवित्वमेवसावित्री। सवितुरियंसावित्रीऋगसि। यद्वा, सा प्रसिद्धासावित्रीवैष्णवीशक्तिरसीतियावत्। यद्वा, सविता देवता यस्याःसा तदादिव्याहृतिरहिताऋक्। सैवव्याहृतिसहितागायत्रीत्युच्यते। हेदेवि! त्वं वेदजननीगायत्र्यसिइतियावत्। नित्यस्याऽपिसतोवेदस्यगायत्र्युपदेशानुदयाद्वेदाध्ययनानुदयइतिगायत्र्युपरिष्टैव सती वेदाध्ययनम्। जननीत्यध्येयाध्ययनैक्योपचारौचित्यतोवेदंजनयतिवेदजननी। वेदस्यवा जननीवेदमातागायत्रीत्युक्तम्। हेदेवि त्वंपराऽसि श्रेष्ठाऽसि। यद्वा, पृपालनपूरणयोःपिपर्त्तिपरा। वेदांश्चजनांश्चवेदजनान्नयन्तिसौख्यं प्रापयन्तीतिवेदजनन्योब्राह्मण्याद्यास्तासांपरापालयित्री च त्वमेवाऽसि। देवजननीति तु पाठे देवानां जननीअदितिस्त्वमेवपराउत्तमा। यद्वा, वेदजननींगायत्रींपान्तिवेदजननीपाःऋषयस्तान्रक्षितुंपरासिवेदजननीपरात्वमेवासि।

देवि! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो।

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते सर्वदा ॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।

इहहिपाठक्रमादर्थक्रमोबलीयानितिसृष्ट्याद्युपक्रम्योच्यते । हेदेवि त्वयाब्राह्म्या शक्त्याएतज्जगत्सृज्यतेउत्पाद्यते । हेदेवि त्वयावैष्णव्याशक्त्याएतज्जगत्पाल्यतेदुःखाद्रक्ष्यते । हेदेवित्वंरौद्रीशक्तिःसतीएतज्जगदन्तेऽवसाने अत्सिखादसि । तदित्थं सर्वदापुनःपुनः क्रमशःसर्गस्थितिसंहारलक्षणत्रिविधावस्थापन्नमेतद्विश्वं वस्तुतस्त्वयैकयाऽपिब्राह्मीवैष्णवीरौद्रीव्यपदेशभेदभिन्नया शक्त्या धार्यते आत्मशक्त्यामधिकरणरूपायां विश्वमाधेयीक्रियते त्वयेतितात्पर्यं सर्वदासीत्यन्वयः ।

इहजगन्मयेइतिपाठः । मयगतौ । मयते जानातिमया । पचाद्यचिस्त्रियांटाप् । जगतोमयाजगन्मया । हेसर्वज्ञेसंबुद्धौहेजगन्मयेहेभुवनज्ञे । सर्वेगत्यर्थाधातवःप्रयोगात्ज्ञानार्थाः । जगन्मयिइतिपाठेतिसम्बुद्ध्यन्तमेव । देव्यानयास्रष्टव्यत्वेनपालनीयत्वेनसंहर्त्तव्यत्वेनच देवीकर्तृकजगत्कर्मकतत्तत्सर्गादिक्रियाविषयभूताज्जगतो हेतोरागता जगत्सर्गादिव्यापारमुद्दिश्यागताप्रादुर्भूता देवी जगन्मयीत्युच्यते । तत आगतइत्यधिकृत्य मयडिति सूत्रेणहेतुभ्योमनुष्येभ्यश्चमयट्प्रत्ययः । ततआगतइत्यर्थे जगतोहेतोरागतादेवीजगन्मयी । टित्त्वान्ङीप् । ह्रस्वः । अथवा तत्प्रकृतवचने मयट् । प्रकृतम्प्रस्तुतमुच्यतेऽस्मिन्निति प्रकृतवचनन्तदितिप्रथमा समर्थात्प्रकृतवचनेऽभिधेयेमयट् । जगत् प्रकृतं प्रस्तुतंकर्त्तव्यत्वेनोच्यतेऽस्यां जगन्मयीसम्बुद्धौह्रस्वः। हेदेविहेजगन्मयि

देवि ! तुम्हीं इसविश्व-ब्रह्माण्ड को धारण करती हो। तुमसे ही इस जगत् की सृष्टि होती है । तुम्हीं से इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्प के अन्त में सब को अपना ग्रास बना लेती हो । जगन्मयी देवि ! इस जगत् की उत्पत्ति के समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालन-काल में स्थितरूपा हो तथा कल्पान्त के समय संहाररूप

तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।

भुवनञ्जे । अथवा हे जगन्मयि ! जगन्निर्मातुमागते जगन्निर्माणकारणादागते त्वंअस्य जगतःविसृष्टौविशेषतःसृष्टौउत्पादनेविषये सृष्टिरूपाऽसि । तथान्तेऽवसानेसंहारेविषयेसंहृतिरूपाचासीत्यन्वयः । सृष्टिस्रष्ट्रयोःपालनपालयित्र्योःसंहृतिसंहर्त्र्योश्चाभेदेनाऽतिशयोक्तिः । देव्याःसर्वात्मकत्वेन वा स्वरूपकथनम् । हेदेविजगन्मयिब्रह्माणि ! वर्त्तत इतिव्यपदेशमात्रंसृष्ट्यादिकन्तुत्वमेव चकरोषिनाहमितिनम्रोक्तिरप्यवसेया ।

हेदेवि ! त्वंमहतीविद्यापरब्रह्मगोचरज्ञानरूपाऽसि । हेदेवित्वंमहतीअविद्याअनिर्वचनीयाविद्याप्रपञ्चपरिविज्ञानरूपाऽसि । हेदेवि ! त्वं महतीमाया । अनात्मन्यात्मेति बुद्धिरात्मन्यप्यनात्मेतिबुद्धिर्माया । हेदेवित्वंमहामेधामहतीधारणावतीबुद्धिःमहती अमेधाअधारणावती धीः । हेदेवि ! त्वंमहास्मृतिर्महतीस्मृतिर्ध्यानरूपामहतीअस्मृतिः अध्यानरूपा । हेदेवित्वंमहामोहामहाममतामहाऽममता च । हेदेवित्वंभगवतीऐश्वर्ययुक्ताच । अभगवतीअनैश्वर्यासि । हेदेवित्वंमहादेवीमहादेवस्यस्त्री । हेदेवित्वं महेश्वरी । महतीईश्वरीव्यापकस्वभावा । अश्नोतेराशुकर्मणिवरट्चेच्चोपधायाः । अथ च महतीविद्या यस्यां सा मुक्तिःमहतीमायाअविद्यायस्योअमुक्तिः । इत्थंमहामेधा स्मृतिः महास्मृतिरितिइष्टदेवतोपासना । महामोहा तृष्णा अस्मृतिः मूर्च्छा निद्रा च ।

हेदेवि त्वंचत्वमेवसर्वस्यप्रकृतिरिति । प्रक्रियतेसर्वमनयाप्रकृतिः सत्त्वरजस्तमःसाम्यावस्थाअव्यक्ताख्याप्रधानम् । अथ च त्वमेवगुणान्सत्वरजस्तमांसिविभावयसि ।

धारण करनेवाली हो। तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो। तुम्हीं तीनों गुणों को उत्पन्न करनेवाली सब की प्रकृति हो।

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥

पृथक्कृत्यजगद्रूपेणाऽवस्थापयसि । गुणत्रयविभाविनी । सत्त्वंज्ञानसुखहेतुःरजो रागात्मदुःखहेतुस्तमआवरकं मोहहेतुःगुणाःप्रकृतिधर्माः । हेदेवि । त्वमेवकालरात्रिः । जगत्संहारकारिणीयामभङ्गिनीयत्रप्रलीयतेजगत् । हेदेवित्वमेवमहारात्रिःयत्र चतुर्मुखोमुक्तिमागात् । हेदेवि ! त्वमेवदारुणा मोहरात्रिश्चासि । ममतागर्भपातिनीमहा मायाख्या संसृतिदंष्ट्राकरालाग्निरुद्रपत्न्यःअतिदारुणाः । मोहरात्रिर्मोहतनुर्जगत्सूत्रे जगत्करी ।

हेदेवि ! त्वंश्रीःसम्पत्तिरसिहरिप्रियाप्यसि । हेदेवि ! त्वमीश्वरीईश्वरस्य पत्न्यसि । अश्नोतेराशुकर्मणिवरट्चेच्चोपधायाइति । जगद्व्यापिनीचाऽसि । हेदेवित्वंह्रीःअसि । "ह्रींकारोवैप्राण"इतिश्रुतेः । प्राणभृताऽसि ह्रीमितिमकारान्तमव्ययंप्राणवाचि । ह्रीम नुनासिकस्वरान्तपाठे तु देवीप्रणवासीतिरहस्यं ह्रीस्त्वमितिचपाठेलज्जाशब्देनपौनरु क्त्यं स्यात् । हेदेवित्वंबुद्धिरसिचिन्मात्रब्रह्मरूपाऽसि त्वंबोधलक्षणाऽसि । बोधयितृ व्यापारदर्शनाऽसि । अथवा, बोधरूपाविविधागमरूपाऽसि । हेदेवित्वंलज्जाऽसि व्रीडाऽसि । हेदेवि ! त्वंपुष्टिरसि अवयवोपचितिरसि । हेदेवित्वंतथातेनतुष्टिरसिप्रीति रसि । हेदेवि ! त्वंशान्तिरूपा रतिविषयव्यावृत्तिरसि । हेदेवित्वमेवक्षान्तिस्तितिक्षा चाऽसि ।

भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो । तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ह्री और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो । लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो ।

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा ॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।

हेदेवि! हेचण्डिके त्वंयथाउक्तलक्षणप्रकारेण। खड्गिनीशूलिनीगदिनीचक्रिणीशङ्खिनीचापिनीबाणाबाणवतीपरिघायुधा च सतीअतएवघोराअत्युग्रदर्शनाभुशुण्डीति भाष्यसेइत्यन्वयः। अतइनिठनौ गदिनीत्यत्रतुब्रीह्यादिभ्यश्चेतिइनिःसर्वत्र। ऋन्नेभ्योङीप्। बाणाबाणवतीअर्शआदिभ्योऽच् मत्वर्थीयः। परिघःपरिघातनःलोहबद्धोलगुडआयुधं यस्याः सातथोक्ता। खड्गशूलगदाचक्रशंखचापबाणपरिघैरष्टाभिरायुधैरष्टभुजाघोरात्युग्राकृतिश्चण्डिकादेवी। भुशुण्डीतिवक्ष्यमाणलक्षणासतीप्रसीदत्वितिभावः। मुडिखण्डने। शत्रून्मुण्डति खण्डयतिइतिकर्मण्यणिस्त्रियांङीप् शत्रुमुण्डी। भुजैःशत्रुमुण्डीभुजशत्रुमुण्डीचण्डिका। अत्रहि भुजशत्रुमुण्डीशब्दैःपृषोदरादीनियथोपदिष्टमिति शिष्टोपदिष्टत्वात् जइत्यस्य शत्रुमइत्यस्यचलोपेकृतेभुशुण्डीतिव्युत्पाद्यते। "भुजाभिरष्टभिःशत्रूनष्टावष्टाभिरायुधैः। मुण्डत्यत्युग्रचण्डोक्तिर्भुशुण्डीचण्डिका स्मृता"। यच्चाहुः "उड्डीयोड्डीयचप्राप्यनदन्तीदशकर्त्तिका। क्रमते चानताङ्गी या सा भुशुण्डी निगद्यते"। एतेनबाणभुशुण्डीपरिघायुधेत्येकम्पदमितिव्याख्याऽवगन्तव्या। बाणइत्यनाकारःपाठःइत्युक्तिरपिव्युदस्ता। भुशुण्डीगोफणिकेत्युक्तिरप्ययुक्तिमूलोपेक्षणीया प्रेक्षावद्भिः। परिघोलोहार्गलमितितुशब्दतोऽर्थतश्चभ्रष्टम्व्याख्यातम्। यदाहक्षीरस्वामी। परितोहन्तिपरिघः परौघइतिहेर्घत्वम्। लोहबद्धोलगुडइति।

हेदेवि! त्वमेवजगतीसौम्यासिअक्रूराप्रशान्तासि। सोमदैवतिकाऽप्यसि। अथवा

तुम खड्गधारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शङ्ख और धनुष धारण करनेवाली हो। बाण, भुशुण्डी और परिध—ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं।

तुम सौम्य और सौम्यतर हो—इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो।

परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।

शोभनामालक्ष्मीःयस्याऽसौ सुमःविष्णु सुमस्यभावःसौम्यंशोभनलक्ष्मीकत्वम् तद्यस्या अस्त्यसौ सौम्या। अर्शआद्यच्। शोभनलक्ष्मीकत्वयुताऽसि। अथवा उमासहितः सोमःउमापतिस्तस्यभावःसौम्यं तद्यस्याःसासौम्याउमापतित्वयुतासि। हेदेवि! त्वमेव सौम्यतराऽसि। सयतेसुधासोमश्चन्द्र.सोमस्येयंसुधासौमी। सौमींसुधामर्हतिसौम्या देवावलिस्त्वंच। दण्डादित्वाद्यः। तयोस्त्वमतिशयेन सौम्यासौम्यतरा। द्विवचनम-विभज्योपपदेतरबीयसुनाविति द्विवचनेऽपपदे तरप्। "तसिलादिष्वाकृत्वसुचः"इति पुंवद्भावः। हेदेवि! त्वमशेषसौम्येभ्यःअखिलसुन्दरेभ्यःपदार्थेभ्यस्तु पार्थक्येनअतिसुन्द रीअसि। सुष्ठुनन्दयतिसुन्दरी मनोज्ञा मनोरमा सोमदैवतकेसौम्यः। "सौम्यः स्यात्सुन्दरेऽपिच"। "सौम्योऽक्रूरेबुधेसौम्यःसौम्यः शान्तेप्रयोगतः"। हेदेवित्वमेवपरा श्रेष्ठा। हेदेवित्वमेवपराणांश्रेष्ठाऽतःपरमा। अत्युत्कृष्टापरमोत्तमा। व्यवस्थाऽत्रतुश्रेष्ठ त्वस्यविवक्षितत्वात्। अन्यथापरेषामिति स्यात्। अथवा परम्ब्रह्म अणंतिकथयन्ति पराणःक्विप्। तेषांमध्येत्वंपरमासि। यद्वा परेचापरेचपरापराः। द्वन्द्वेचेतिसर्वनाम त्वाभावात्सुडागमाभावः। तेषां त्वं परमा। अथच हेदेवित्वमेवपरमा। उत्कृष्टा लक्ष्मीः। अथवा परम ईश्वरःतस्यस्त्रीत्वमेवपरमेश्वरी "ईश्वरीस्वामिनीदुर्गालोकानां व्यापिका च सा"।

हेअखिलात्मिकेदेवि क्वचित् जगतिसत्असद्वायच्च किंचिद्वस्तुपदार्थरूपंप्रतीयतेतस्य सर्वस्यसदसदात्मकस्ययाशक्तिःसामर्थ्यंसात्वमेवाऽसि। अतःपरंमयाकिंस्तूयसेइत्य

पर और अपर—सब से परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम्हीं हो। सर्वस्वरूपे देवि! कहीं भी सत्-असत्रूप जो कुछ वस्तुएं हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो।

तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा(मया) ॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥

न्वयः । पदश्चपदार्थश्चताभ्यांक्रियमाणास्तुतिश्च स्तोताचस्तुत्यश्चतत्तदुचितशक्तिश्चत्वमेवेतित्वत्तोऽन्यत्वाभावाद्भेदनिबन्धनास्तुतिःकथंप्रवर्त्तनीयेतिभावः । इयमेव च परमावधिस्तुतिरतोऽपि कानामस्तुतिरित्यपरोभावः । "अग्न्यादितत्तदौचित्यतत्तदर्थक्रियाकरी शक्तिरप्रतिबद्धात्माधर्मः सामर्थ्यशब्दिता" ।

हेदेवि ! त्वां स्तोतुमिहकईश्वरःकःसमर्थोऽस्ति नकोऽपि । तथाहियया जगत्स्रष्टाउत्पादयितातृन्नन्तोऽयम् । यद्वा भविष्यदनद्यतनेलुडन्तोऽयम् । यःजगत्पाति रक्षति भविष्यत्सामीप्ये लट् । यद्वा जगत्पाताइतिपाठः । भविष्यदनद्यतनेलुडन्तोऽयम् । योऽवसाने जगत् अतिसंहरति । सोऽपिविष्णुरपिययायोगनिद्रयादेव्या निद्रावशंनीतः निद्राधीनतांगमितः । "वशीवन्ध्यगवीवश्यासुनाम्रीकरिणीवशा । इच्छायन्त्रणयो.पुंसि प्रभुत्वे च वशंगतः ।

हेदेवि ! यतः त्वयामहामाययाअहंब्रह्माविष्णुश्चईशानश्चतेत्रयोऽपिशरीरग्रहणंकारिताःशरीरंगृह्णु नः कारिताःममतावृताः कृताः । अतस्त्वां कःपुमान्स्तोतुंशक्तिमान्भवेत् । न कोऽपि । यःकोऽपिशरीरधारी स त्वां स्तोतुमसमर्थएवतदन्यस्तुमुक्तस्त्वद्रूपएवसन् कथं त्वामेवस्तोष्यतित्वंचाशरीरिणीस्तुतिश्चस्तुत्यस्तोतृभेदनिबन्धना । अतस्त्वद्विषया स्तुतिःकथं घटेतसाकल्येनेतिस्तुत्युपसंहार.एव वरमितिभावः ।

ऐसी अवस्था में तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है। जो इस जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान् को भी जब तुमने निद्रा के अधीन कर दिया है, तब तुम्हारी स्तुति करने में यहां कौन समर्थ हो सकता है।

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥

हेदेविइत्थंवर्णितैरुदारैर्दक्षिणैः सरलैःवरै.स्वैरात्मीयैःप्रभावैःसामर्थ्यविशेषैःसंस्तुताजगन्मोहयन्तीत्वमेतौइमौ । यद्वा, आइतौएतौआगतौदुर्धर्षौदु.खेनाऽभिभवनीयौ मधुकैटभौनामअसुरौ सुरद्विषौमोहयअविवेकंप्रापयेत्यन्वयः । "दक्षिणेसरलोदारौ" ।

हेदेवि ! त्वयाजगत्स्वाम्यच्युतःदैत्यारिर्विष्णुर्लघुशीघ्रंप्रबोधंचउन्निद्रभावंनीयतांत्वयासमुच्यताम् । किञ्चएतौमहासुरौहंतुमस्यअच्युतस्य विष्णोर्बोधश्चक्रियताम् । उत्साहानुकूल्यं बुद्ध्यु्न्मेषश्चक्रियतां रच्यतामित्यन्वयः । प्रबोधमितिप्रधानेकर्मणिद्वितीया । अप्रधानेकर्मणि तु नीयतामिति तिङाऽभिहितत्वात्प्रथमा ।

॥ इति रात्रिसूक्तम् ॥

मुझे, भगवान् शङ्कर को तथा भगवान् विष्णु को भी तुमने ही शरीर धारण कराया है; अतः तुम्हारी स्तुति करने की शक्ति किस में है । देवि ! तुम तो अपने इन उदार प्रभावों से ही प्रशंसित हो ।

ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोह में डाल दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णु को शीघ्र ही जगा दो । साथ ही इनके भीतर इन दोनों महान् असुरों को मार डालने की बुद्धि उत्पन्न कर दो ।

श्रीदेव्यथर्वशीर्षम् ❀

अथोपनिषत् । ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति ॥

साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् । शून्यं चाशून्यञ्च ॥

अहमानन्दानानन्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने । अहं ब्रह्माब्रह्मणी (ब्रह्माणी वेदब्रह्मणि) वेदितव्ये । (इति चाथर्वणी श्रुतिः) अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि । (अहं पञ्चतन्मात्राणि) अहमखिलं जगत् ।

ॐ सभी देवता देवी के समीप गये और नम्रता से पूछने लगे—हे महादेवि ! तुम कौन हो ?

उसने कहा—मैं ब्रह्मस्वरूपा हूं । मुझसे प्रकृति पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है ।

मै आनन्द और अनानन्दरूपा हूं । मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूं । अवश्य जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूं । पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत महाभूत भी मैं ही हूं । यह सारा दृश्य-जगत् मैं ही हूं ।

❀अब यहां अर्थसहित देव्यथर्वशीर्ष दिया जाता है । अथर्ववेद में इसकी बड़ी महिमा बतायी गयी है । इसके पाठ से देवी की कृपा शीघ्र प्राप्त होती है । यद्यपि सप्तशती-पाठ का अङ्ग बनाकर इसका अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं हुआ है, तथापि यदि शप्तसतीस्तोत्र आरम्भ करने से पूर्व इसका पाठ कर लिया जाय तो बहुत बड़ा लाभ हो सकता है । इसी उद्देश्य से हम रात्रिसूक्त के वाद इसका समावेश करते हैं, आशा है, जगदम्ब के उपासक इससे सन्तुष्ट होंगे ।

वेदोऽहमवेदोऽहम् । विद्याहमविद्याऽहम् । अजाहमनजाऽहम् । अधश्चोर्ध्वश्च तिर्यक्चाहम् ॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि । अहमादित्यैरुत विश्व (श्वे) देवैः । अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि । अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥

अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं(सं)दधामि । अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि ॥

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये (सुप्रजाय) यजमानाय सुन्वते । अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् । अहं सुवे (व्यः) पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे । य एवं वेद । स दैवीं सम्पद (देवी पद) माप्नोति ।

वेद और अवेद मैं हूं । विद्या और अविद्या भी मैं, अजा और अनजा (प्रकृति और उससे भिन्न) भी मैं, नीचे-ऊपर, अगल-वगल भी मैं ही हूं ।

मैं रुद्रों और वसुओं के रूप में सञ्चार करती हूं । मैं आदित्यों और विश्वेदेवों के रूपों में फिरा करती हूं । मैं मित्र और वरुण दोनों का, इन्द्र एवं अग्नि का और दोनों अश्विनीकुमारों का भरण-पोषण करती हूं ।

मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूं । त्रैलोक्य को आक्रान्त करने के लिये विस्तीर्ण पादक्षेप करनेवाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापति को मैं ही धारण करती हूं ।

देवों को उत्तम हवि पहुंचानेवाले और सोमरस निकालनेवाले यजमान के लिये हविर्द्रव्यों से युक्त धन धारण करती हूं । मैं सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी, उपासकों को धन देनेवाली, ब्रह्मरूप और यज्ञार्हों में (यजन करने योग्य देवों में) मुख्य हूं । मैं आत्मस्वरूप आकाशादि निर्माण करती हूं । मेरा स्थान आत्मस्वरूप को धारण करनेवाली बुद्धिवृत्ति में है । जो इस प्रकार जानता है, वह देवी सम्पत्ति (देवी केपरमपद का) लाभ करता है ।

ते देवा अब्रुवन्-नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्म ताम्॥

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु (लमुप) जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणं (महं प्रपद्ये) प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुतैष्ठुतु॥
कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः(नमाम्यहं)पावनां शिवाम्॥

तब उन देवगण ने कहा—देवी को नमस्कार है। बड़े-बड़ों को अपने-अपने कर्तव्य में प्रवृत्त करनेवाली कल्याणकर्त्री को सदा नमस्कार है। गुणसाम्यावस्थारूपिणी मङ्गलमयी देवी को नमस्कार है। नियमयुक्त होकर हम उन्हें प्रणाम करते हैं।

उन अग्नि के समानवर्णवाली, ज्ञान से जगमगानेवाली, दीप्तिमती, कर्मफलप्राप्ति के हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गादेवी की हम शरण में हैं। असुरों का नाश करनेवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है।

प्राणरूप देवों ने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणी को उत्पन्न किया, उसको अनेक प्रकार के प्राणी बोलते हैं। वह कामधेनु तुल्य आनन्ददायक और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुति से सन्तुष्ट होकर हमारे समीप आये।

काल का भी नाश करनेवाली, वेदों द्वारा स्तुति हुई विष्णुशक्ति, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति) देवमाता अदिति और दक्ष-कन्या (सती) पापनाशिनी कल्याणकारिणी भगवती को हम प्रणाम करते हैं।

महालक्ष्म्य च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥

कामो (कामे) योनिः (कमलवेत्रपाणिः) कमला वज्रपाणिर्गुहा
हसा (स्त) मातरिश्वाभ्र (श) मिन्द्रः ।
पुनर्गुहा(र्गेहा)सकला मायया च पुरूच्यैषा विश्वमतादिविद्याम् ॥

हम महालक्ष्मी को जानते हैं और उन सर्वशक्तिरूपिणी का ही ध्यान करते हैं। वह देवी हमें उस विषय में (ज्ञान-ध्यान में) प्रवृत्त करें।

हे दक्ष ! आपकी जो कन्या अदिति है, वह प्रसूता हुई और उनके मृत्युरहित कल्याणमय देव उत्पन्न हुए।

काम (क), योनि (ए), कमला (ई , वज्रपाणि—इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं)। ह, स—वर्ण, मातरिश्वा—वायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं)। स, क, ल—वर्ण, और माया (ह्रीं), यह सर्वात्मिका जगन्माता की मूल विद्या है और यह ब्रह्मरूपिणी है।

[शिवशक्त्यभेदरूपा, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती लक्ष्मी-गौरीरूपा अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासनात्मिका, समरसीभूत-शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूप का निर्विकल्प ज्ञान देनेवाली, सर्वसत्त्वात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी—यही इस मन्त्र का भावार्थ है। यह मन्त्र सब मन्त्रों का मुकुटमणि है और मन्त्रशास्त्र में पञ्चदशी आदि श्रीविद्या के नाम से प्रसिद्ध है। इसके छः प्रकार के अर्थ अर्थात् भावार्थ, वाच्यार्थ, सम्प्रदायार्थ, कौलिकार्थ, रहस्यार्थ और तत्त्वार्थ 'नत्याषोडशिकार्णव' ग्रन्थ में बताये गये हैं। इसी प्रकार 'वरिवस्यारहस्य' आदि ग्रन्थों में इसके और भी अनेक अर्थ दिखाये गये हैं। श्रुति में भी ये मन्त्र इस प्रकार से अर्थात्

एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशङ्कुशधनुर्बाणधरा।
एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति॥

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः।

सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः(यक्षसिद्धाः)। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादिकालरूपिणी (भस्मरूपिणी)। तामहं प्रणौमि (प्रणतोऽस्मि) नित्यम्।

क्वचित् स्वरूपोच्चार, क्वचित् लक्षणा और लक्षित लक्षणा से और कहीं वर्ण के पृथक्-पृथक् अवयव दरसाकर जान-बूझकर विश्रृङ्खलरूप से कहे गये हैं। इससे यह मालूम होगा कि ये मन्त्र कितने गोपनीय और महत्त्वपूर्ण हैं।]

ये परमात्मा की शक्ति हैं। ये विश्वमहिनी हैं। पाशु, अङ्कुश, धनुष और बाण धारण करनेवाली हैं। ये 'श्रीमहाविद्या' हैं। जो ऐसा जानता है, वह शोक को पार कर जाता है।

भगवति! तुम्हें नमस्कार है। मातः! सब प्रकार से हमारी रक्षा करो।

(मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहते हैं—) वही ये अष्ट वसु हैं; वही ये एकादश रुद्र हैं, वही ये द्वादश आदित्य हैं; वही ये सोमपान करनेवाले और न करनेवाले विश्वेदेव हैं; वही ये यातुधान (एक प्रकार के राक्षस), असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं, वही ये सत्त्व-रज-तम हैं, वही ये ब्रह्म, विष्णु-रुद्ररूपिणी हैं; वही ये प्रजापति, इन्द्र-मनु हैं, वही ये ग्रह, नक्षत्र और तारे हैं, वही कला-काष्ठादि काल-

(नित्यपाप) पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम् ॥
वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम् ।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् ॥
एवमेकाक्षरं ब्रह्म (मन्त्रं) यतयः शुद्धचेतसः ।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः ॥
वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम् ।
(वामाया ब्रह्मभूतस्मात्यष्टवक्त्र समन्वितम्)
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्ताष्टात्तृतीयकः ।

रूपिणी हैं, पाप नाश करनेवाली, भोग-मोक्ष देनेवाली अन्तरहित, विजया-धिष्ठात्री, निर्दोष, शरण लेने योग्य, कल्याणदात्री और मङ्गलरूपिणी उन देवी को हम सदा प्रणाम करते हैं।

वियत्—आकाश (ह) तथा 'ई' कार से युक्त, वीतिहोत्र—अग्नि (र) सहित, अर्धचन्द्र (ँ) से अलंकृत जो देवी का बीज है, वह सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। इस प्रकार इस एकाक्षर ब्रह्म (ह्रीं) का ऐसे यति ध्यान करते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जो निरतिशयानन्दपूर्ण हैं और जो ज्ञान के सागर हैं (यह मन्त्र देवीप्रणव माना जाता है। ॐकार के समान ही यह प्रणव भी व्यापक अर्थ से भरा हुआ है। संक्षेप में इसका अर्थ इच्छा-ज्ञान-क्रिया-धार, अद्वैत, अखण्ड, सच्चिदानन्द समरसीभूत शिवशक्तिस्फुरण है।)

वाणी (ऐं,), माया (ह्रीं), ब्रह्मन्—काम (क्लीं). इसके आगे छठा व्यञ्जन अर्थात् च, वही वक्त्र अर्थात् आकार से युक्त (चा) सूर्य (म), 'अवाम श्रोत्र'—दक्षिण कर्ण (उ) और बिन्दु अर्थात अनुस्वार से युक्त (मुं), टकार से तीसरा

नारायणेन संमिश्रो(श्रो)वायुश्चाधरयुक्(सावाद्यश्चा)ततः(जयः)॥
विच्चे(धे)नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्ददायकः ॥
(महानन्दप्रदायकः)
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम् ।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ॥
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ॥
नमामि(भजामि)त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम् ।
(महादारिद्र्य शमनीं महारूपास्वरूपिणीं)
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥

ड, वही नारायण अर्थात् 'आ' से मिश्र (डा), वायु (य), वही अधर अर्थात् 'ऐ' से युक्त (यै) और 'विच्चे' यह नवार्णमन्त्र उपासकों को आनन्द और ब्रह्म-सायुज्य देनेवाला है ।

[इस मन्त्र का अर्थ—हे चित्स्वरूपिणी महासरस्वति ! हे सद्रूपिणी महा-लक्ष्मि ! हे आनन्दरूपिणी महाकालिके ! ब्रह्मविद्या पाने के लिये हम सब समय तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीस्वरूपिणी चण्डिके ! तुम्हें नमस्कार है । अविद्यारूप रज्जुकी दृढ़ ग्रन्थि को खोलकर मुझे मुक्त करो]।

हृत्कमल के मध्य में रहनेवाली, प्रातःकालीन सूर्य के समान प्रभावाली, पाश और अङ्कुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपवाली, वरद और अभयमुद्रा धारण किये हुए हाथोंवाली, तीन नेत्रों से युक्त, रक्तवस्त्र परिधान करनेवाली और कामधेनु के समान भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवी को मैं भजता हूं ।

महा-भय का नाश करनेवाली, महासङ्कट को शान्त करनेवाली और महान् करुणा की साक्षात् मूर्ति महादेवी तुम्हें मैं नमस्कार करता हूं ।

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या (गृहं) लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते (अनन्ततपोवाच्यज्ञेया) अज्ञेयाऽनन्ताऽलक्ष्याऽजैका नैकेति।

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता*शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता॥
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्॥

जिसका स्वरूप ब्रह्मादिक नहीं जानते—इसलिये जिसे अज्ञेया कहते हैं, जिसका अन्त नहीं मिलता—इसलिये जिसे अनन्ता कहते हैं, जिसका लक्ष्य देख नहीं पड़ता—इसलिये जिसे अलक्ष्या कहते हैं, जिसका जन्म समझ में नहीं आता—इसलिये जिसे अजा कहते हैं, जो अकेली ही सर्वत्र है—इसलिये जिसे एका कहते हैं, जो अकेली ही विश्वरूप में सजी हुई है—इसलिये जिसे नैका कहते हैं, वह इसीलिये अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका और नैका कहाती है।

सब मन्त्रों में 'मातृका'—मूलाक्षररूप से रहनेवाली, शब्दों में ज्ञान (अर्थ) रूप से रहनेवाली, ज्ञानों में 'चिन्मयातीता', शून्यों में 'शून्यसाक्षिणी' तथा जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वे दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध हैं।

उन दुर्विज्ञेय, दुराचारनाशक और संसार-सागर से तारनेवाली दुर्गा देवी को संसार से भयभीत (डरा हुआ) मैं नमस्कार करता हूं।

---

*'चिन्मयानन्दा' भी एक पाठ है और वह ठीक ही मालूम होता है।

इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति— शतलक्षं प्रजप्त्वाऽपि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति। शतमष्टोत्तरं चाऽस्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।

दशवारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः॥

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति। नूतनायां प्रतिमायां (सन्निधौ) जप्त्वा देवतासा-

---

इस अथर्वशीर्ष का जो अध्ययन करता है; उसे पाँचों अथर्वशीर्षों के जप का फल प्राप्त होता है। इस अथर्वशीर्ष को न जानकर जो प्रतिमास्थापन करता है, वह सैकड़ों लाख जप करके भी अर्चासिद्धि नहीं प्राप्त करता। अष्टोत्तरशत (१०८ बार) जप (इत्यादि) इसकी पुरश्चरणविधि है। जो इसका दस बार पाठ करता है, वह उसी क्षण पापों से मुक्त हो जाता है और महादेवी के प्रसाद से बड़े दुस्तर सङ्कटों को पार कर जाता है।

इसका सायंकाल में अध्ययन करनेवाला दिन में किये हुए पापों का नाश करता है। प्रातःकाल में अध्ययन करनेवाला रात्रि में किये हुए पापों का नाश करता है। दोनों समय अध्ययन करनेवाला निष्पाप होता है। मध्यरात्रि में तुरीय* सन्ध्या के समय जप करने से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। नयी प्रतिमा पर जप करने से देवता-सान्निध्य प्राप्त होता है। प्राणप्रतिष्ठा के समय जप

---

*श्रीविद्या के उपासकों के लिये चार सन्ध्याएँ आवश्यक हैं। इनमें तुरीय सन्ध्या मध्यरात्रि में होती है।

न्निध्यं भवति । प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति । भौमाश्विन्यां महादेवीसन्निधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति स महामृत्युं तरति य एवं वेद । इत्युपनिषत् ।

॥ इति देव्यथर्वशीर्षं समाप्तम् ॥

सप्तशत्यन्तर्गता शक्रादिस्तुतिः

'ॐ' ऋषिरुवाच ।

*शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।

रणेदेव्याचण्डिकयातस्मिन्नतिवीर्ये सुरारिबले महिषासुरसैन्ये च अतिवीर्ये दुरात्मनिमहिषासुरे च हतेसति प्रणतिनम्रशिरोधरांसाः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः शक्रादयः सुरगणास्तांदेवींवाग्भिस्तुष्टुवुः स्तुतवन्तः । वीर्यंबलंप्रभावश्च । प्रणतिभि-

---

करने से प्राणों की प्रतिष्ठा होती है । भौमाश्विनी (अमृतसिद्धि) योग में महादेवी की सन्निधि में जप करने से महामृत्यु से तर जाता है । जो इस प्रकार जानता है, वह महामृत्यु से तर जाता है । इस प्रकार यह अविद्यानाशिनी ब्रह्मविद्या है ।

ऋषि कहते हैं—अत्यन्त पराक्रमी दुरात्मा महिषासुर तथा उसकी दैत्य-सेना के देवी के हाथ से मारे जाने पर इन्द्र आदि देवता प्रणाम के लिये शिर तथा

वे० प्रे० शान्तनवीटीकायामेष अधिकः पाठः पूर्वमुपलभ्यते—

*ततःसुरगणाः सर्वेदेव्याइन्द्रपुरोगमाः । स्तुतिमारेभिरेकर्त्तुं निहतेमहिषासुरे ॥

महिषासुरेनिहतेसतितितोऽनन्तरमिन्द्रपुरोगमाः शक्रप्रमुखाः सर्वेऽपि सुरगणाः स्तुतिंकर्त्तुमारेभिरेउपक्रान्तवन्तः । रभराभस्ये । आत्मनेपदे लिट् । पुरो गच्छतीति पुरोगमः इन्द्रः पुरोगमः अग्रेसरो येषान्ते ।

तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।

तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताःस्म विदधातु शुभानि सा नः॥

नम्राः शिरोधराः कंधरा ग्रीवाअंसाः स्कंधाभुजाशरांसि च येषान्ते धरन्तीतिधराः शिरसान्धराःशिरोधराः प्रहर्षेप्रमोदेपुलकाः रोमाञ्चास्तेषामुद्गमः प्रादुर्भावस्तेनचारवो मनोहरादेहायेषान्ते । वाग्भिरिति चतुर्विधाभिर्वाणीभिः । यद्भाष्यम् । चतुष्टयीशब्दानाम्प्रवृत्तिः । जातिशब्दाः गुणशब्दाः क्रियाशब्दायदृच्छाशब्दाश्चतुर्थाइति । अन्येत्वाहुः । द्रव्यंगुणंक्रियांजातिमाहुः शब्दाश्चतुर्विधाः । "यदृच्छयाप्रयुक्ताःस्युः संज्ञाशब्दाश्चपञ्चमाः" । अपरेत्वाहुः । वैखरीशब्दनिष्पत्तिर्मध्यमाश्रुतिगोचरा । द्योतितार्था च पश्यन्ती सूक्ष्माचाप्यनपायिनी चेतिचतुर्विधावागुच्यते । शब्दानान्निष्पत्तिर्यस्याः सा घटाद्यर्थरूपावाक्वैखरीत्युच्यते । श्रुतिगोचराश्रोत्रग्राह्यावाक्मध्यमेत्युच्यते । द्योतितोर्थोऽयया सा द्योतितार्थाज्ञानरूपावाक्पश्यन्तीत्युच्यते । अनपायिनीब्रह्मरूपावाक्सूक्ष्मेत्युच्यते ।

यया देव्याआत्मशक्त्यास्वशक्त्या इदं जगत् प्रपञ्चितन्तामखिलदेवमहर्षिपूज्याम्बिकान्देवींभक्त्याआनताःस्म। सा नोऽस्माकंशुभानि दधातु करोतु । तुहिचस्मह वैपादपूरणे । निःशेषाः सर्वे देवास्तेषांगणास्तेषांशक्तयः तासांसमूहास्तएवमूर्त्तयोयस्याः सा। अखिलाः सर्वेदेवाः महर्षयश्चतैस्तैः पूज्याम्पूजनीयांआनतावयंभक्तिप्रह्वाः ।

कंधे झुकाकर उन भगवती दुर्गा का उत्तम वचनों द्वारा स्तवन करने लगे। उस समय उनके सुन्दर अङ्गों में अत्यन्त हर्ष के कारण रोमाञ्च हो आया था।

देवता बोले—'सम्पूर्ण देवताओं की शक्ति का समुदाय ही जिनका स्वरूप है तथा जिन देवी ने अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है, समस्त देवताओं और महर्षियों की पूजनीय उन जगदम्बा को हम भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं, वे हमलोगों का कल्याण करें।

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाऽखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।

यस्याः देव्याअतुलमनुपमम्प्रभाम्बलम्वक्तुंसाकल्येनवर्णयितुम्ब्रह्मा चतुर्मुखःभगवानैश्वर्यसम्पन्नः अनन्तोविष्णुः हरश्च नालं नहि समर्थः हिप्रसिद्धमेवतत् । सा चण्डिका देवीअखिलजगत्परिपालनायअशुभभयस्यनाशाय मतिंकरोतु । अखिलं जगत्परिपालयितुमशुभेभ्यो भयं नाशयितुं च स्वयं स्वान्तंसदाऽवधानंकरोतु । प्रभावः प्रभुत्वम् । स्थौल्यसामर्थ्यसैन्येषु बलम् । अशुभभवस्येतिपाठे भव उदयः ।

हेदेवि ! सुकृतिनांपुण्यवतां भवनेषु गेहेषु या श्रीः सम्पत्तिरभूदस्तिभविष्यति स्वयं तांत्वांनताः प्रणतावयंस्म । अतस्त्वं सुकृत्यात्मकं विश्वंश्रीः सतीपरिपालय । हेदेवि ! पापात्मनां भवनेषु याऽलक्ष्मीः अभूदस्तिभविष्यति । स्वयंतान्त्वां नताः प्रणताःवयम् । अतस्त्वंपापात्मकंविश्वमलक्ष्मीः सती परिपालय । हेदेवि ! कृतधियांज्ञानिनांहृदयेषु-याबुद्धिरभूदस्तिभविष्यतिस्वयन्तान्त्वांनताः प्रणता वयम् । अतस्त्वंकृतध्यात्मकं विश्वं बुद्धिःसतीपरिपालय । हेदेवि ! सतांसज्जनानांहृदयेषु या श्रद्धासत्कर्मनिष्ठाऽभूद-स्तिभविष्यतिस्वयन्तांत्वां नता वयम् । अतस्त्वं सदात्मकं विश्वंश्रद्धासतीपरिपालय । हेदेवि ! त्वंकुलजनप्रभवस्यहृदये या लज्जाऽभूदस्तिभविष्यतितान्त्वांनता वयम् । अतः

जिनके अनुपम प्रभाव और बल का वर्णन करने में भगवान् शेषनाग, ब्रह्माजी तथा महादेवजी भी समर्थ नहीं हैं, वे भगवती चण्डिका सम्पूर्ण जगत् का पालन एवं अशुभ भय का नाश करने का विचार करें ।

जो पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं ही लक्ष्मीरूप से, पापियों के यहाँ दरिद्रता-रूप से, शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषों के हृदय में बुद्धिरूप से, सत्पुरुषों में श्रद्धारूप

श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि! विश्वम् ॥
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि ।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि(तवाति यानि)
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥

त्वं सत्कुलाचारसंरक्षणंलज्जालज्जासतीसत्कुलजनप्रभवात्मकं विश्वम्परिपालय। स्मशब्दः पादपूरणे। स्वयमव्ययम्। सुष्ठुअयः शुभावहोविधिर्यस्मिन्कर्मणिनमने परिपालने वा तत्।

असुराश्चदेवाश्चअसुरदेवाः शाश्वतिकविरोधविवक्षायान्त्वसुरदेवन्तेषांगणा आदयोयेषान्तेमनुष्यादीनांन्तेतथोक्ताः। तेषुअजाद्यदन्तमित्यसुरशब्दस्यपूर्वप्रयोगः अजाद्यदन्तत्वादभ्यर्हितत्वाच्चअमरदैत्यगणादिकेष्विवतितुपाठः सभ्यः। हेदेवि! सर्वेष्वसुरादिगणेषुतवाद्भुतंरूपमचिन्त्यं मनसापिचिन्तयितुंस्मर्त्तुमप्यशक्यमेतत्तवम-नोहरंरूपं वाचाकिंवर्णयामः। वर्णवर्णक्रियायाञ्चुरादिलोडन्तम्। यन्मनसापिस्मर्त्तु-मशक्यन्तद्वाचा किं वर्णयितुंशक्यंस्यादितिभावः। हेदेवि! तवभूर्यधिकमसुरक्षयकारि अतिवीर्यंचकिं वाचावर्णयामयन्मनसाऽप्यचिन्त्यं स्यात्। हेदेवि! सर्वेष्वसुरदेवगणा-दिकेष्वाहवेषु संग्रामेषु तवाद्भुतानि चरितानिवीरकर्माणि किं वर्णयामवाचा यानि मनसाऽपि स्मर्त्तुमशक्यानि।

से तथा कुलीन मनुष्य में लज्जारूप से निवास करती हैं, उन आप भगवती दुर्गा को हम नमस्कार करते हैं। देवि! सम्पूर्ण विश्व का पालन कीजिये।

देवि! आपके इस अचिन्त्य रूप का, असुरों का नाश करनेवाले भारी परा-क्रम का तथा समस्त देवताओं और दैत्यों के समक्ष युद्ध में प्रकट किये हुए आपके अद्भुत चरित्रों का हम किस प्रकार वर्णन करें।

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।

हेदेवि ! त्वं त्रिगुणापित्रयोगुणा यस्यांसा सत्त्वंरजस्तमइतित्रयोगुणाः । सत्त्वगुणात्वं वैष्णवीशक्तिः सती जगन्ति रक्षसि रजोगुणा त्वंब्राह्मीशक्तिः सती सृजसि तमोगुणा रौद्रीशक्तिः सती संहरसि । अतः सर्जनीयसंरक्षणीयसंहरणीयानिजगन्ति स्वर्गभूपातालाख्यानि येषान्त्वं हेतुरसि । हेदेवि ! त्वं हरिहरादिभिरपिदेवैः तत्त्वतो न ज्ञायसे मायारूपत्वात् । हेदेवि ! त्वमपाराअनवधिरनन्ता । त्वंसर्वाश्रयासर्वआश्रयोयस्याः सा । आश्रीयतेआश्रयासर्वस्याश्रयासर्वाश्रया । हेदेवि ! इदमखिलञ्जगत्त्वैवांशभूतंमायामयत्वात् । जगतः अंशरूपेणनिष्पन्नमंशत्वंभूतंप्रापदितिवांशभूतम् । त्वमव्याकृता केनापिनव्याकृताऽसिपदेनवाक्येन वा । 'यतोवाचोनिवर्त्तन्ते अप्राप्यमनसासह"इतिश्रुतेः । त्वंचविद्यात्वेनपरब्रह्मतत्त्वमेव । यद्वा, हेदेवि ! त्वमव्याकृताऽसि न केनापिप्रकाशिताऽसि । परप्रकाश्यत्वानभ्युपगमाद्ब्रह्मस्वरूपस्यस्वयं प्रकाशत्वाभ्युपगमाच्च । त्वंचपरब्रह्मतत्त्वमेवस्वयंप्रकाशमनतिशयानन्दचिद्रूपमसीत्यर्थः । यद्वा, अव्याकृताऽव्याहता केनापि नहिंसिताऽसि । कृञ्हिंसायांस्वादिः । त्वमेवतुयुद्धेऽहितान्व्याकृणोषि व्याहंसि । यदाहुः । हिंसाकरणयोःस्वादौकृणोतिकृणुतेकृञः । करोति कुरुतेद्वेद्वेसंपद्येतेक्रमादिति" । अव्याकृताहिपरमेतिपाठेतुहियस्मात् हेदेवि ! त्वंपरमापराउत्कृष्टामालक्ष्मीस्ततः अःविष्णुस्तेनव्याकृताऽउरसिस्थापितालोकेषुवा । यद्वा हेदेवि ! हियस्मात्तवरोमकूपेषुनिजरश्मीन्दिवाकरः ददौ अतस्त्वमव्याकृतासि अविना सूर्येणआसमन्तात्कृतातेजोभिर्निर्मितासि । अतएवत्वंपरमापराश्रेष्ठा मा तेजो लक्ष्मीः । "अवयः शैलमेषार्काः" । यद्वा, हि यतः त्वंजगतामाद्या मूलभूता । अतःसृष्टेः प्राक्केवलैवेत्यव्याकृतासत्त्वरजस्तमोगुणानुदयाद्भेदप्रत्ययानुदयात्सत्त्वादिनाअपृथक्

आप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति में कारण हैं। आप में सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये तीनों गुण विराजमान हैं; तो भी दोषों के साथ आपका संसर्ग नहीं जान पड़ता। भगवान् विष्णु और महादेवजी आदि देवता भी आपका

सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन तृप्तिं प्रयान्ति सकलेषु मखेषु देवि ।
स्वाहाऽसि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुरुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥

कृतासांख्यदर्शनप्रसिद्धापरमाप्रकृतिः प्रधानाख्याऽसि। इयं देवीसांख्यमते प्रकृति-राख्याताविदान्तिनस्तुतामनिर्वचनीयामात्ममायामनादिमविद्यामाहुः। शाब्दिका-स्तांवस्तुतत्त्वावसितिसिद्धिभेदामाहुः। शैवास्तांशिवशक्तिसंसक्तिमाहुः। वैष्णवाः विष्णुमायान्तामाहुः। शाक्तास्तुतांमहामायामनादिमाहुः। पौराणिकाः तान्देवी-माहुः।

सुरऐश्वर्ये। सुरन्तिसुराः सुराणांभावःसुरता सास्तियेषान्तेसुरताः इन्द्रादयः। मत्वर्थेऽर्शआदित्वादच्। समस्ताश्चतेसुरताश्च समस्तविबुधाइतियावत्। हेदेवि! सा वै प्रसिद्धा स्वाहा त्वमेवासि यस्याःसमुदीरणेनसकलेषुयज्ञेषुसमस्तसुरताः यज्ञभुजः तृप्तिंप्रयान्ति। किञ्चवैप्रसिद्धास्वाहाचत्वमेवाऽसि अतएवखलुपितृयज्ञेषु जनैः श्राद्ध-कृद्भिः पुरुषैः पितृगणस्यतृप्तिहेतुः। स्वधेत्येवंरूपंमन्त्रात्मासतीत्वमेवोच्चार्यसे कथ्यसे। "दैवेश्राद्धेभवेस्वाहापित्र्येश्राद्धेस्वधोच्यते। स्वाहादेवहविर्दानेश्रौषड्वौषड वषट्स्वधा"-इत्यभिधानेतुविभागोनाश्रितः।

पार नहीं पाते। आप ही सब का आश्रय हैं। यह समस्त जगत् आपका अंश-भूत है; क्योंकि आप सब की आदिभूत अव्याकृता परा प्रकृति हैं।

देवि! सम्पूर्ण यज्ञों में जिसके उच्चारण से सब देवता तृप्ति लाभ करते हैं, वह स्वाहा आप ही हैं। इसके अतिरिक्त आप पितरों की भी तृप्ति का कारण हैं, अतएव सब लोग आपको स्वधा भी कहते हैं।

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्याऽसि सा भगवती परमा हि देवि॥
शब्दात्मिकासुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवताञ्च साम्नाम्।
देवि! त्रयी भगवती भवभावनाय वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री॥

हेदेवि! हि निश्चयेन या मुक्तिहेतुः अचिन्त्यमहाव्रतापरमावेदान्तोद्भवब्रह्मतत्त्वावगतिरूपसाक्षात्कारलक्षणाविद्याऽसि भगवतीसुनियेतेन्द्रियतत्त्वसारैर्मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैरभ्यस्यसे पुनःपुनरावर्त्यसेशिक्ष्यसेइत्यन्वयः। मुक्तिरमृतं कैवल्यम्। "ज्ञानादेवतुकैवल्यम्"इत्यभ्युपगमात्। मुक्तिहेतुर्विद्याअविचिन्त्याचिन्तयितुमशक्या। दुस्तराणि महान्ति व्रतानिउपवासादीनियस्यांसाऽचिन्त्यमहाव्रताअभ्यस्यसे। असुक्षेपणेऽभिपूर्वः कर्मणिलटः थासःसे। सुष्ठुनियतानिविषयेभ्योव्यावर्तितानीन्द्रियाणि यैः। ते च तेतत्त्वसाराश्चतत्त्वन्तत्त्वज्ञानंसारंनान्यं येषान्तेतत्त्वसाराः। मन्यन्तेमुनयस्तैः मोक्षमर्थयन्तेमोक्षार्थिनः अस्तःनष्टः समस्तदोषः कामादिरूपो येषान्तेऽस्तसमस्तदोषास्तैः विद्यतेज्ञायतेऽनयाविद्याभगवतीसर्वैश्वर्यसम्पन्ना परमा उत्कृष्टा।

हेदेवि! भगवतीऐश्वर्यादिसम्पन्नाशब्दात्मिकावर्णपदवाक्यरूपवाणीस्वरूपा। सुविमलर्ग्यजुषामुद्गीथरम्यपदपाठवतांसाम्नाञ्चनिधानं सर्वजगतामार्तिहन्त्री परमा उत्तमाचतुर्वर्गदर्शिनीवार्त्तावृत्तान्तरूपात्रय्यसि वेदानान्त्रयीभवसीत्यन्वयः। अथवा भगवतीत्वंसर्वजगतांभवभावनायसंसृत्युत्पादनाय परं निधानमाश्रयः स्थानमसि।

देवि! जो मोक्ष की प्राप्ति का साधन है, अचिन्त्य महाव्रतस्वरूपा है, समस्त दोषों से रहित, जितेन्द्रिय, तत्त्व को ही सार वस्तु माननेवाले तथा मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते हैं, वह भगवती परा विद्या आप ही हैं।

आप शब्दस्वरूपा हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद, तथा उद्गीथ के मनोहर पदों के पाठ से युक्त सामवेद का भी आधार आप ही हैं। आप देवी, त्रयी (तीनों वेद) और भगवती (छहों ऐश्वर्यों से युक्त) हैं। इस विश्व की उत्पत्ति

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवि त्रयी भगवतीभवभावनाय वार्त्तासिसर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री ॥
मेधाऽसि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गाऽसि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।

त्वमार्तिहन्त्र्यसि। त्वंवार्ताऽसिकृषिगोरक्षादिवृत्तिरसि। त्वंशब्दात्मिकानादरूपाऽसि। यद्वा, वर्णपदवाक्यरूपाऽसि गद्यपद्यात्मिकाऽसि। हेदेवि! त्वं सुविमलानि ऋग्भिः सहितानि यजूंषि तेषाम्। ऋचः ऋग्वेदाः यजूंषि यजुर्वेदाः तेषासाम्नां-सामभेदानाञ्चत्रय्यसीत्यन्वयः। वेदशाखानाम्बाहुल्याद्बहुवचनम्। उद्गीथउद्गीतमतएवरम्यपदपाठवतामुद्गीथरम्याणिपदानि तैः कृत्वापाठवतामन्यथा पदानांपाठः पदपाठः उद्गीथेनरम्यः पदपाठो येषान्तानिउद्गीथरम्यपदपाठानि सामानीति स्यात्। उद्गीथःप्रणवइतिक्षीरतरङ्गिणीकारोव्याख्यत्। उद्गीथः सामवेदः इत्यौणादिवृत्तिकारः प्रणवपक्षेउद्गीथरम्यताऋग्यजुषाणामप्यस्ति। यद्वा उद्गीथउद्गीतंसाम्निप्रसिद्धं "वार्त्ता वृत्तौ जनश्रुतौ"। वृत्तिःकुसीदपाशुपाल्यवाणिज्याख्या। जनश्रुतिर्वृत्तान्तः। स्त्रियामृक्सामयजुषीइतिवेदास्त्रयस्त्रयी। ऋचः यजूंषिचऋग्यजुषाणि अचतुरादिनासमासान्तः इह तु समासान्तविध्यनित्यत्वमाश्रितम्। सुविमलानिऋग्यजूंषि येषाम्। यद्वा, समासान्तरमुक्तमेव। भवभावनाय भवःशिवः परमात्मायस्यभावनन्ध्यानन्तस्मै प्रवृत्तात्रयी त्वमेवाऽसीत्यर्थः। "अग्रेजन्मनिकल्याणेप्राप्तौसंसृतिसत्तयोः"। भवः आर्तिहन्त्रीति जनिकर्तुः प्रकृतिरितिनिर्देशात्समाससिद्धिः। "अर्तिः पीडाधनुःकोट्योः"। आङ्पूर्वता क्वचित्।

हेदेवि! त्वं मेधाऽसि अतएव त्वं विदिताखिलशास्त्रासि। यद्वा हेदेवि! त्वं विदिताखिलशास्त्रसारा मेधासि। "धीर्धारणावतीमेधा"। विदितान्यखिलानिशास्त्राणि साराणि चतुर्वर्गतत्त्वपराणिन्याय्यानि ययामेधयासात्वंमेधाऽसि। 'प्रवृत्तिर्वा

एवं पालन के लिये आप ही वार्ता (खेती एवं आजीविका) के रूप में प्रकट हुई हैं। आप सम्पूर्ण जगत् की घोर पीड़ा का नाश करनेवाली हैं।

देवि! जिससे समस्त शास्त्रों के सार का ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति आप

श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।

निवृत्तिर्वानित्येन कृतकेन वा। पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते"। हेदेवित्वम-सङ्गासन्त्यक्ताखिलबन्धुहेतुः अप्रतिबन्धाऽनिबारितगतिः। दुर्गा दुष्प्रापा दुःखेनगम्य-माना दुर्गा। दुर्गभवसागरनौरसि दुर्गोदुस्तरोभवः संसारः सागरइवतत्रनौः तरणिरसि। यद्वा, दुर्गन्दुस्तरंभवंस्यतिखण्डयतिदुर्गभवसा नविद्यतेगरोविषन्दुःखं यत्र सा अगरा अगराचासौनौश्चेतिअगरनौः दुर्गभवसाचासौअगरनौश्च। यद्वा, त्वंदुर्गेदुर्गमेदुष्प्रापे भवे शंभौ परब्रह्मभूतत्वेसागरेसामृतेविषये असङ्गा रागादिरहिता दुर्गा दुष्प्रापा नौरसि। नौःरवनौर्देवीब्रह्मप्राप्तिसाधनविद्यारूपेत्यर्थः। हेदेवि! त्वं कैटभारिहृदयैककृताधिवासा श्रीरसि विष्णुवक्षस्थलनिवासिनोलक्ष्मीस्त्वमेवाऽसि। हेदेवि! त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठागौरीउमाऽसि। शशीचन्द्रः मौलौकिरीटेयस्य सशंभु तेनकृताप्रतिष्ठावस्थितिरर्द्धशरीरभाक्त्वं न यस्याः सा। "चूडाकिरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः"।

ईषत्सहासम्मन्दस्मितोपेतं रुचिरंपरिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारिपूर्णेन्दुबिम्बोपमङ्कनके-षुउत्तमंयत्कनकन्तस्येवकान्तिः शोभा यस्यतत् अतएव कान्तं मनोहरमेवंभूतन्तव वक्त्र कमलंजगन्मोहनं जयति तथापि तद्विलोक्यसहसाऽतर्कितमात्तरुषा प्राप्तकोपेनमहिषा-सुरेणप्रहृतमत्यद्भुतमेतत्। अहो ईदृशं जगन्मोहंजगत्सञ्जीवनंवक्त्रं विलोक्यपुमाना

ही हैं। दुर्गम भवसागर से पार उतारनेवाली नौकारूप दुर्गादेवी भी आप ही हैं। आपकी कहीं भी आसक्ति नहीं है। कैटभ के शत्रु भगवान् विष्णु के वक्षः-स्थल में एकमात्र निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मी तथा भगवान् चन्द्रशेखर द्वारा सम्मानित गौरी देवी भी आप ही हैं।

आपका मुख मन्दस्मित (मुसकान) से सुशोभित, निर्मल, पूर्ण चन्द्रमा के बिम्ब का अनुकरण करनेवाला और उत्तम सुवर्ण की मनोहर कान्ति से कमनीय है, तो

अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रु(भ्रू)कुटीकरालमुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥

नन्दमाप्नुयात् । तत्कथं महासुरः सञ्जातकोपः प्राहार्षीदितिभावः । अतर्किते तुसह-साऽव्ययम् । सहसा बलेन वा । सहोबलंसहामार्गः । सहतेसहः । अनव्ययत्वेन सह-साकृतमित्योजः सहोंऽभस्तमसस्तृतीयायाइत्यौपपदिकमलुग्विधानं चावगकम् । अद्भुतम् अदिभुवोड्डुतच् । अदित्याश्चर्येऽव्यम् । आत्तारुट्क्रुद्धयेन सतेन ।

हेदेवि ! कुपितं क्रोधाविष्टंभ्रुकुटीकरालं भ्रुकुट्याकरालंविषलम्भयङ्करमतएव क्रोधताम्रमुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि उद्यन्उदयङ्कुर्वन् शशाङ्कश्चन्द्रः आरक्तः पूर्णश्च तेन सदृशीछविः प्रभा यस्य तत् । तदीयंसंग्रामोन्मुखंदृष्टातुदृष्ट्वैवमहिषासुरः सद्यः सपदि दर्शनक्षणएव प्राणान्नमुमोच न तत्याजेतियत्तदतीव चित्रम् । युक्तोऽयमर्थः हिनिश्चयेन । कुपितान्तकदर्शनेन कुपितकृतान्तदर्शनेन कैः जन्तुभिः जीव्यते न कैश्चिदपि । "जीवप्राणधारणे" अकर्मकत्वाद्भावे लटि यगात्मनेपदप्रथपुरुषैकवचनमेव भावस्यैकत्वात् । प्राणधारणं प्रकृतावन्तर्भूतमिति जीवते देवदत्त इतिप्रयोगे पृथक् प्राणपदङ्कर्मवाचिनः प्रयुज्यते । अनुच्यमानेऽपि तस्मिन्प्राणान्धारयतीतिगम्यमान-त्वादतश्च जीवतिरकर्मकः । भ्रुवौकुटीवभ्रुकुटी इकोह्रस्वोङ्योगालवस्योत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमत्वञ्च वा । तेनभ्रुकुटीवभ्रुकुटीकरालंकुटिलम् । "बलवत्सुष्ठुकिमुत स्वस्त्य-तीव च निर्भरे । करालो दन्तुरे तुङ्गे" । कृणोति हिनस्ति करालम् ।

भी उसे देखकर महिषासुर को क्रोध हुआ और सहसा उसने उसपर प्रहार कर दिया, यह बड़े आश्चर्य की बात है ।

देवि! वही मुख जब क्रोध से युक्त होनेपर उदयकाल के चन्द्रमा की भाँति लाल और तनी हुई भौंहों के कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर जो महिषासुर के प्राण तुरन्त नहीं निकल गये, यह उससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात है; क्योंकि क्रोध में भरे हुए यमराज को देखकर भला, कौन जीवित रह सकता है ।

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय सद्यो विनाशयति(सि)कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥
ते सम्मताजनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।

हेदेवि! त्वम्प्रसीद प्रसन्ना भव। परमापराउत्कृष्टामालक्ष्मीरसि। हेदेवि! भवती जगतां भवायसम्पदुद्भवायसद्यः सपदि भवति। भवतीत्वंकोपवती अप्रसन्नाऽस्ति तर्हिसद्यः जगतां कुलानि वंशान्समूहान्वा विनाशयति। इह भवतीतिभवच्छब्दप्रयोगे युष्मदस्मच्छब्दान्यत्वेन शेषेप्रथमः पुरुषः विनाशयतीत्यलम्। 'वंशेवृन्देगृहेकुलम्'। उक्त-मर्थं प्रकृतेन देवीचरितेन योजयति विज्ञातमित्यर्द्धेन। अधुनैव विज्ञातंविदितमस्माभिः एतत्कियत्त्वामाइतमेतंयोद्धुमागतम्। सुविपुलं सुष्ठुबहुलं महिषासुरस्यबलंसैन्यम-स्तं विनाशं नीतंप्रापितमित्येतत्। प्रसादपरमेतिपाठे प्रसादेन प्रसन्नत्वेनपरमाउत्कृष्टा चेत्तर्हिलोकानाम्भवाय भूतयेसम्पदुदयाय भवति। अस्तमदर्शनेअस्तमितिमकारांत-मव्ययमनुपलब्धेऽर्थे वर्त्तते। असुक्षेपणइत्यतोन पुंसकेभावेक्तेतुअस्तंप्रेरणंदूती (री) करणमन्यत्र क्षेपं नीतमित्यर्थः। विनाशं नीतमित्यर्थस्तु न स्यात्। अस्तमित्यव्ययत्वे त्विष्टसिद्धिः।

हेदेवि! भवती सदाऽभ्युदयदा सती येषांप्रसन्नाऽस्ति ते एवलोका जनपदेषु जीवत्सु-देशेषु सम्मताः लब्धप्रतिष्ठाःस्युः तेषामेव धनानि स्युः तेषामेव यशांसि सत्कीर्त्तयः स्युः। तेषाम्बन्धुवर्गश्च न सीदति। चकाराच्चतुष्पात्प्रभृतिश्च न सीदति। तएवधन्याःधनेषु

देवि! आप प्रसन्न हों। परमात्मस्वरूपा आपके प्रसन्न होनेपर जगत् का अभ्युदय होता है और क्रोध में भर जानेपर आप तत्काल ही कितने कुलों का सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभव में आयी है; क्योंकि महिषासुर की यह विशाल सेना क्षणभर में आपके कोप से नष्ट हो गयी है।

सदा अभ्युदय प्रदान करनेवाली आप जिनपर प्रसन्न रहती हैं, वे ही देश में सम्मानित हैं, उन्हीं को धन और यश की प्राप्ति होती है, उन्हीं का धर्म कभी

धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि ! तेन ॥

साधवः । यद्वा धनानिलब्धारः प्राप्तारः धन्याः । धनगणंलब्धेतिसूत्रेण यत्प्रत्ययः । सुकृती पुण्यवान्धन्यः । हेदेवि ! येषां भगवतीप्रसन्नाऽस्ति तएवनिभृताः विनीताः शिक्षितकुलाचारा अचपलाः आत्मजाः सुताः भृत्याः अनुचराः दाराः कुलस्त्रियश्च येषान्ते । निभृतविनीतप्रश्रिताः समाः ।

हेदेवि ! भगवतीप्रसादाद्भवत्याः प्रसादात्सम्भावितः सुकृतीपुण्यवाञ्जनः प्रतिदिनं सदैव अत्यादृतः अतितरामादृतः सन् सकलानि समस्तानिस्वशाखोक्तान्य-तएव धर्म्याणि धर्मेणप्राप्याणि धर्मादनपेतानि यथायथंश्रौतानि स्मार्त्तानि च करोति । ज्योतिष्टोमादीनि हि स्वर्गकामः करोतिततश्चस्वर्गंप्रयाति तेन हेतुना । हेदेवि ! लोकद्वयेऽपि भुवि दिव्यपि त्वमेवफलदाऽसि । ननुइदं इत्थमेव । "प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणेननु" । नौवयोधर्मेतिधर्मेणप्राप्याणीत्यर्थे यत्प्रत्ययः । यद्वा, धर्मपथ्यर्थन्यायादन पेते यत् । अत्यादृतौ सादरार्चितौ । ननु च भवतीप्रसादादित्यत्रसर्वनाम्नोवृत्तिमात्रे पूर्वपदस्यपुंवद्भावोभवतीतिभवत्प्रसादादिति स्यात्तत्राऽऽह । पुंवदितियोगविभागसाध्यमिदं पुंवत्त्वं क्वचिदेवयोगविभागादिष्टसिद्धिः । ततश्चैकोऽहंभवतीसुतक्षयकरोमातः कियन्तोरयइतिवत्पुंवद्भावाभावः क्वचिदस्त्येव । भवतीति तु च्छित्त्वा प्रसादात्प्रसन्नत्वाद्भवती लोकद्वयेऽपिफलदाऽस्ति । इतिपुंवत्त्वशङ्कानिरासपरव्याख्यानेभवतीसुतक्षय करइतिप्रयोगः कदर्थितः स्यात् ।

शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने इष्ट-मित्र स्त्री, पुत्र और भृत्यों के साथ धन्य माने जाते हैं ।

देवि ! आपकी ही कृपा से पुण्यात्मा पुरुष प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सदा सब प्रकार के धर्मानुकूल कर्म करता है और उसके प्रभाव से स्वर्गलोक में जाता है ; इसलिये आप तीनों लोकों में निश्चय ही मनोवाञ्छित फल देनेवाली हैं ।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।

हेदुर्गे ! भीतस्याशेषजन्तोः सर्वस्याऽपि प्राणिनः स्वान्तेनस्मृता सती त्वं भीतिं हरसि । हेदुर्गे ! त्वंस्वस्थैरभीतैस्तुजन्तुभिः स्मृता सती अतीव शुभांमतिश्चतुर्वर्गफल-साधनभूताबुद्धिन्ददासि । त्वन्मन्त्रत्वद्ध्यानत्वद्भजनपराम्मतिंवा ददासि । तदित्थं हे दारिद्र्यदुःखभयहारिणि ! सर्वोपकारकरणाय.सर्वोपकारान्कर्तुं सदा आर्द्र-चित्ताकृपार्द्रहृदयापरादेवतात्वदन्या कास्तु न काऽपि। 'अग्न्यादितो भयंहर्त्तुं मति-न्दातुमनुत्तमाम् देवित्वदपराकास्तुसर्वोपप्रकृतिकारिणी"। दुःखेनगन्तुंशक्यतेऽस्यांदुर्गा सुदुरोरधिकरणेचेतिःड । "बलवत्सुष्ठुकिमतस्वत्यतीवचनिर्भरे" । स्वस्थैः स्वर्गस्थैर्देवैः स्मृतेति वा दरिद्रादुर्गतौ । दरिद्राति दुर्गच्छति निर्धनीभवतीति दरिद्रः । दरिद्रस्यकर्म दारिद्र्यं तस्यदुःखंदारिद्र्यदुःखंतस्माद्भयं हरतीतितच्छीला तस्याः सम्बुद्धिः हेदारिद्र्यदुःख भयहारिणि ! सर्वेषुअभक्तेषुउदासीनेषु च उपकाराणां करणं विधानन्तस्मै ।

यद्येषा देवी सर्वोपकारकरणायद यार्द्रचित्ता स्यात्किमितिहि दैत्यान्निहन्ति तत्रो-त्तरमाह। उपैतु लोडन्तः पाठः । नाम्बइतिपाठेन अम्बइतिच्छेदः हेअम्ब ! हेसर्वजननि ! त्वं सर्वोपकाराय सदा कृपार्द्रचित्तासीतियत्तत्तथैव नाऽन्यथा। तथाहि एभिरहितैर्म-हिषासुरादिभिर्हतैरणे त्वद्धतैः जगत्लोकः सुखमुपैतु पीडकाभावात्सुखम्प्राप्नोतु ।

मा दुर्गे। आप स्मरण करने पर सब प्राणियों का भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषों द्वारा चिन्तन करने पर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि ! आपके सिवा दूसरा कौन है, जिसका चित्त सब का उपकार करने के लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो ।

देवि ! इन राक्षसों के मारने से संसार को सुख मिले तथा ये राक्षस चिर-काल तक नरक में रहने के लिये भले ही पाप करते रहे हों, इस समय संग्राम में

संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि!॥
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी

तथा एते अहितालोकत्रयद्रुहो महिषासुरादयः चिराय नरकायनरकङ्गन्तुंपापं न कुर्वन्तु किन्तुसंग्रामेमृत्युंमरणमधिगम्यप्राप्य दिवंस्वर्गंप्रयान्तुइतिमत्त्वा विचिन्त्यानुग्रहबुद्ध्या एतान्दैत्यान् विनिहंसि न्यवधीः। ततोऽन्यानपि दैत्यान्विनिहनिष्यसि। सिपूर्वर्त्तमानसामीप्येवर्त्तमानवद्वेतिलट्। नूनमवश्यम्। "नूनमवश्यंनिश्चयेद्वयम्"। "चिरायचिररात्रायचिरस्याद्याश्चिरार्थकाः" अव्ययाख्याः। अम्वेतिअम्वार्थनद्योर्ह्रस्वः। नामेत्यत्रपाठे आमनरकायकुष्ठादिमहाव्याधिप्रधाननरकाय पापं न कुर्वन्त्वित्यर्थः। अथवा "नामप्राकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने।" एभिरसुरैर्हतैर्जगत्सुखमुपैतु तथैतेऽसुराः यद्यपि पापं कृतवन्तः कुर्वन्तु नाम चिराय चिरकालं तथा वधेनोद्धरणीया इत्यर्थः।

हेदेवि! भगवती सर्वासुरान्सर्वेषामपिअसून् प्राणान् रान्तिगृह्णन्ति तान् असुरान्दृष्ट्यैव भस्मभस्मीभूतान् किं न प्रकरोति किन्तु सामर्थ्यतः करोत्येव। अथापि हि हेदेवि त्वमरिषु शत्रुषु शस्त्रमायुधं प्रहिणोषिप्रयुङ्क्षेइतियत्तत्र तवाभिप्रायोऽन्यएव हि निश्चयेन रिपवोऽपिशत्रवोऽपिशस्त्रपूताःशस्त्रहताःकृतप्रायश्चित्ताइवशमितपापफलाः सन्तो लोकान्स्वर्गादीन्प्रयान्त्विति। तदित्थम्। हेदेवि तव तेष्वहितेष्वपिसाध्वी मतिरनुग्रहबुद्धिर्भवति किं पुनः साधुषु स्वधर्मनिरतेषु साध्वी तवमतिर्भवतीति किंम्नूमइतिभावः। भवतीशब्दप्रयोगे प्रकरोतीति प्रथमपुरुषः भस्मत्वस्यविधेयत्वादेकत्वेऽपिनविरोधो वेदाःप्रमाणमितिवत्। प्रहिणोतीति हि गतौ। स्वादिभ्यःश्नुः हिनुमीनाइति णत्वम्। "लोकस्तुभुवनेजने"। साध्वी वोतोगुणवचनान्ङीष्।

मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्गलोक में जायं—निश्चय ही यही सोचकर आप शत्रुओं का वध करती हैं। आप शत्रुओं पर शस्त्रों का प्रहार क्यों करती हैं? इसमें एक रहस्य है। ये शत्रु भी हमारे शस्त्रों से पवित्र होकर उत्तम लोकों में जायं—इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त उत्तम रहता है।

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि ! शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।

हेदेवि ! रणे तव उग्रैः खड्गप्रभानिकरैर्विस्फुरणैः तथा उग्रेणशूलाग्रकान्तिनिवहेन वाऽसुराणां दृष्टयः विलयम्विनाशंनागताः न अगमन् इति यत्तदेतदन्यदेवाऽस्ति-कारणङ्किम् ? । अंशुमदिन्दुखण्डयोगिआननंसुधांशुखण्डयुक्तंतववक्त्रं विलोकयता-मितिहेतुगर्भं विशेषणमसुराणाम् । यद्यमी असुरा रणेदेव्यामृतांशुखण्डयुक्तमाननं न विलोकयेयुः तर्हिउग्रैःखड्गप्रभानिकरविस्फुरणैःशूलाग्रकान्तिनिवहेनच विलयङ्गतदृशः सम्पद्येरन्निति भावः । अत्र क्रियातिपत्तिर्वर्त्तते ; यथा हेदेवि ! यद्यसुराः तवामृतां-शुखण्डयुक्तं मुखं व्यलोकयिष्यन् तर्हि उग्रैः खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैः शूलाग्रकान्ति निवहेन च विलीनदृशःसमपत्स्यन्त । नचतदेतत्समपत्स्यन्त । यद्यस्मान्मुखंव्यलोक-यिष्यन्तस्मादसुरा विलीनदृशोनसमपत्स्यन्तेति । खड्गस्य प्रभास्तासांनिकरःस्तोम-स्तस्यविस्फुरणानि सम्बलयनानि तैः । शूलस्याग्राणि त्रीणियेषान्तेषांकान्तयस्तासां-निवहःसमूहस्तेन । अंशवः किरणः । इन्दुरमृतमयूखंस्तस्यखण्डः शकलस्तेनयोगः सम्बन्धस्तद्वत् । अंशुमदिन्दुखण्डेनयोक्तुमर्हंयोग्यमाननमित्यपिशब्दःसवर्णदीर्घः ।

हेदेवि ! तवशीलंसद्वृत्तंकर्तृ दुर्वृत्तवृत्तशमनं दुष्टं वृत्तंयेषान्तेदुर्वृत्ताः तेषांशमनं-शमयितृनिवारकम्वर्त्तते । यद्वा, दुष्टेन वृत्तेन वृत्तंनिष्पन्नंफलंदुर्वृत्तवृत्तं दुष्टंफलंनरकल-

---

खड्ग के तेजःपुज की भयङ्कर दीप्ति से तथा आपके त्रिशूल के अग्रभाग की घनीभूत प्रभा से चौंधिया कर जो असुरों की आँखें फूट नहीं गयीं, उसमें कारण यही था कि वे मनोहर रश्मियों से युक्त चन्द्रमा के समान आनन्द प्रदान करने-वाले आपके इस सुन्दर मुख का दर्शन करते थे ।

देवि ! आपका शील दुराचारियों के बुरे बर्ताव को दूर करनेवाला है । साथ ही यह रूप ऐसा है, जो कभी चिन्तन में भी नहीं आ सकता और जिसकी कभी

वीर्यञ्च हन्तृहृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥

क्षणंतस्यशमनं तव शीलम्। तथा हेदेवि! तवैतत्सर्वसौभाग्यसौन्दर्यभाजनंरूपमचिन्त्यं मनसापि विचारयितुमशक्यमविचार्यं सत् अन्यैर्मनोहरैरतुल्यमसदृशमसाधारणमसमानम्वर्त्तते। तथा हेदेवि! तव वीर्यंच हृतदेवपराक्रमाणादैत्यानांहन्तृ घातकंवर्त्तते। तथा हेदेवि! इत्थं प्रागुक्तभणित्या त्वया स्वकीयादयावैरिष्वपि प्रकटितैवप्रकाशितैव। "वृत्तं पद्ये चरित्रेत्रिष्वतीतेदृढनिस्तले। शीलं स्वभावेसद्वृत्ते रूपंगुणेस्वभावे च"।

हे देवि! वरदे! भुवनत्रयेऽपि ते तवास्यपराक्रमस्य केन सह उपमाभवतु न केनापि। निरुपमात्वात्ते पराक्रमस्य। नन्वतुलोपमाभ्यामिति निषेधात्तृतीया न स्यात्। सहविवक्षायान्तृतीयाऽस्त्येव। सूत्रन्तुष्ठ्यर्थसहभावाविवक्षार्थञ्च। हेदेवि! रूपञ्चशत्रुभयकारि शत्रूणाम्भयोत्पादनशीलम् ततोऽन्येषान्तुअतिहारिअतिमनोहारितवैवाऽस्तिनत्वन्यस्य। त्वदीयचित्ते कृपाच समरनिष्ठुरताचत्वय्येव दृष्टा नाऽन्यत्र दृष्टेत्यर्थः। भवत्वितिलोट् दृष्टेतिनिष्ठा। दृष्टाइतिक्तवान्तोऽपपाठः। कृपासमरनिष्ठुरताइति च प्रथमा न तु द्वितीया। समरेनिष्ठुरायाभावः। त्वतलोर्गुणवचनस्यपुम्वद्भावः।

दूसरों से तुलना भी नहीं हो सकती; तथा आपका बल और पराक्रम तो उन दैत्यों का भी नाश करनेवाला है, जो कभी देवताओं के पराक्रम को नष्ट कर चुके थे। इस प्रकार आपने शत्रुओं पर भी अपनी दया ही प्रकट की है।

वरदायिनी देवि! आपके इस पराक्रम की किसके साथ तुलना हो सकती है। तथा शत्रुओं को भय देनेवाला एवं अत्यन्त मनोहर ऐसा रूप भी आपके सिवा और कहां है। हृदय में कृपा और युद्ध में निष्ठुरता—ये दोनों बातें तीनों लोकों में केवल आप में ही देखी गयी हैं।

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके!।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥

हेदेवि! त्वयाएतत्त्रैलोक्यंरिपुनाशनेनातुलंयथा भवति तथा त्रातंरक्षितम्। त्रैङ्-पालने नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्यामितिवानिष्ठानत्वम्। त्वयासमरमूर्द्धनिरि-पुगणान्हत्वातेरिपुगणाः दिवं स्वर्गं नीताः। हेदेवि! त्वयाऽस्माकंदेवानामुन्मदसुरारि-भवं भयमप्यपास्तमपक्षिप्तं दूरीकृतम्। हे सर्वजननि! नमस्ते। लोके खलु हिताः नति-मर्हन्ति। त्रयो लोकाः त्रैलोक्यञ्चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्। अखिलं त्रैलोक्यमि-तिपाठे पौनरुक्त्यभिया न विद्यते खिलंयत्रेतिक्रियाविशेषणम्। "सम्भवेव्यभिचारे चस्याद्विशेषणमर्थवत्"। रिपूणां नाशनेन समरस्यमूर्द्धेवमूर्द्धा युद्धाग्रभूमिस्तथाचोच्छ्रित-मदेभ्यः सुराणामरिभ्यो दैत्येभ्यः भवं सम्भवम्। नमः स्वस्तीति चतुर्थी।

हे देवि! अम्बिके! त्वं शूलेनाऽऽयुधेन शत्रुभ्योनोऽस्मान् पाहिरक्ष। पारक्षणे। से-ह्यपिच्च। "अस्त्री शूलंरुगायुधम्"। त्वंघण्टायाः स्वनेन नः शत्रुत पाप ःश्चपाहि। हेदेवि त्वं चापज्यानिः स्वनेन चापारोपिताकृष्टमौर्वीजनितनि.स्वनेनःनोऽस्मान् पाहि पापतः शत्रुभ्यश्चेति शेषः।

मातः! आपने शत्रुओं का नाश करके इस समस्त त्रिलोकी की रक्षा की है। उन शत्रुओं को भी युद्धभूमि में मारकर स्वर्गलोक में पहुंचाया है तथा उन्मत्त दैत्यों से प्राप्त होनेवाले हमलोगों के भय को भी दूर कर दिया है, आपको हमारा नमस्कार है।

देवि! आप शूल से हमारी रक्षा करें। अम्बिके! खड्ग से भी हमारी रक्षा करें तथा घण्टा की ध्वनि और धनुष की टङ्कार से भी आप हमलोगों की रक्षा करें।

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्याञ्च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरी ॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥

हेदेवि! ईश्वरि! ईश्वरस्य पत्नि! यद्वा, हे ईश्वरिजगद्व्यापिनि!। अश्नोतेराशुकर्मणि वरट्चेच्चोपधायाः। हे चण्डिके! त्वमात्मनःशूलस्यभ्रामणेन परितोऽभितश्चक्राकारेणपरिवर्त्तनेनोऽस्मान्प्राच्यांदिशि रक्ष शत्रुतः। त्वं प्रतीच्याम्पश्चिमायान्दिशिआत्मशूलस्य भ्रामणेन रक्ष त्वमात्मशूलस्यभ्रामणेनदक्षिणेदिग्विभागे तथाउत्तरस्यान्दिशि रक्ष। भ्रमणस्येदम्भ्रामणंप्रदक्षिणीकरणम्परितो मण्डलीकरणम्। अन्यथा चलनमात्रंशूलसमेताक्रिया स्यात्। अतश्च प्रदक्षिणाकृतिपरिभ्रमणंविवक्षितमितिसूचयितुं प्राच्यान्दक्षिणेउत्तरस्यामित्युक्तम्। चकाराद्विदिग्ग्रहणम्।

हेदेवि! त्रैलोक्ये त्रिषु लोकेषु तेतवयानिसौम्यानिसुन्दराणिप्रसन्नानिरूपाणि-विचरन्तिविहरन्ति। यानि चात्यन्तघोराणि भयङ्कराणि रूपाणि विचरन्ति। तैस्तैश्चरूपैरुपलक्षिता त्वन्तैस्तैः करणैर्वाऽस्मान् रक्ष। तथा तैरेवद्विविधैरूपैर्भुवं रक्ष। चकारात्पाताललोकं रक्ष "सौम्यन्तुसुन्दरेसोमदेवते सोमाट्ट्यणि। सौम्यंसुन्दरेतूपचारतः"। "अनुगृह्णाति यान्देवी तेषां सौमी जगन्मयी। नानुगृह्णातियान्देवीतेषां-घोरा जगन्मयी।"

चण्डिके! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में आप हमारी रक्षा करें तथा ईश्वरि! अपने त्रिशूल को घुमाकर आप उत्तर दिशा में भी हमारी रक्षा करें।

तीनों लोकों में आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भयङ्कर रूप विचरते हैं, उनके द्वारा भी आप हमारी तथा इस भूलोक की रक्षा करें।

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥

ऋषिरुवाच ।

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ।

हेदेवि ! खड्गशूलगदादीनि यान्यायुधानि तैः । यानि चास्त्राणिधनुरादीनितैश्च त्वं सर्वतः समन्ततः अस्मान्त्वदेकशरणान्रक्ष दुःखतः शत्रुतश्च पालय । "हस्तिशुण्डांशुवाह्याप्रबलिषूक्तः करः पुमान् ।" करोहस्तः अङ्गुल्यःकरशाखाः करवल्लवास्तैःसङ्गस्तद्वन्ति करपल्लवसङ्गीनि । करपल्लवइवकरप्रल्लवस्तेनसङ्गस्तद्वन्ति वा हस्तस्थितानीत्यर्थः । "समन्ततस्तुपरितःसर्वतोविष्वगित्यपि" । खड्गश्चशूलश्चगदा खड्गशूलगदं सेनाङ्गत्वादेकवद्भावन्तदादिर्येषान्तानि धनुरादीनि ।

एवमुक्तभणित्या जगतान्धात्री पोषयित्रीदेवासुरैस्तुता ततोदिव्यैर्दिवि भवैः नन्दनोद्भवैः नन्दनं स्वस्तनवनन्ततउद्भवैः कुसुमैः तथा दिव्यैः गन्धानुलेपनैश्चार्चितापूजिता । गन्धानुलेपनानि गन्धाः कुङ्कुमादयः "कुङ्कुमागरुकस्तूरीकर्पूरंचन्दनन्तथा । महासुगन्धमित्युक्तं नाम्नास्याद्यक्षकर्दमः" । अनुलेपनमङ्गरागः ।

अम्बि ! आपके कर-पल्लवों में शोभा पानेवाले खड्ग, शूल और गदा आदि जो-जो अस्त्र हों, उन सबके द्वारा आप सब ओर से हमलोगों की रक्षा करें ।

ऋषि कहते हैं—इस प्रकार जब देवताओं ने जगन्माता दुर्गा की स्तुति की और नन्दन-वन के दिव्य पुष्पों एवं गन्ध-चन्दन आदि के द्वारा उनका पूजन किया, फिर सबने मिलकर जब भक्तिपूर्वक दिव्य धूपों की सुगन्ध निवेदन की, तब देवी ने प्रसन्नवदन होकर प्रणाम करते हुए सब देवताओं से कहा—

देव्युवाच ।

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ।
ददाम्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता ॥

देवाऊचुः ।

भगवत्या कृतं सव न किञ्चिदवशिष्यते ॥
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।

समस्तैरखिलैः त्रिदशैः देवैः भक्त्यादिविभवैर्धूपराजैः सुधूपिता सुपूजिता । देवीप्रसादसुमुखी सती तान्प्रणतान्समस्तान्सुरानिन्द्रादीन्वाक्यंप्राहउवाच । उपसर्गप्रतिरूपकः प्रशब्दोऽव्ययाख्यः । अहेतिनिपातस्तिङन्तप्रतिरूपःकालसामान्यवचनः । शोभनंमुखमस्याः सुमुखी । स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधादितिचात्ङीष्चटाप्च । नखमुखात्संज्ञायामितिङीषोनिषेधस्तु संज्ञायामेव ।

हे त्रिदशाः युष्मत्कृतैरेभिःस्तवैः प्रपूजिताअहंअतिप्रीताऽस्मि । युष्माभिरस्मत्तः सकाशाद्यदभिवाञ्छितमभिलषितंवर्त्ततेतद्वस्तुव्रियतांप्रार्थ्यताम् अहंददामिदास्यामि । इहप्रीता प्रीत्येतिपाठद्वयंयत्तन्मत्तोऽभिवाञ्छितमितिपाठःसभ्यः । यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितमितिपाठेअस्मद्देवीभ्यः व्रियतामहन्ददामीतिवचनचातुर्यम् । कीदृक्स्यात्बहुत्वेनोपक्रम्यैकत्वेनोपसंहाराद्वाचोयुक्तिरियंयुक्तिमतामुद्वेगञ्जनयतीत्यर्थः ।

हेदेवि ! अपरं युष्माभिः कर्त्तव्यं सतद्दुःसाध्यंयत्तच्च मदग्रे मह्यं निवेद्यतांज्ञाप्यतां तदप्यपरंमहिषासुरवधापेक्षया द्वितीयङ्कार्यंसाधयामि इतिभावः । इतिइत्थंदेव्यावचः

देवी बोलीं—देवगण ! तुम सब लोग मुझसे जिस वस्तु की अभिलाषा रखते हो, उसे मांगो ।

देवता बोले—भगवती ने हमारी सब इच्छा पूर्ण कर दी, अब कुछ भी बाकी नहीं है । क्योंकि हमारा यह शत्रु महिषासुर मारा गया । महेश्वरि ! इतने पर भी यदि आप हमें और वर देना चाहती हैं ।

यदि चापि वरो देवस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥

तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥

आकर्ण्यश्रुत्वातेसर्वेदिवौकसः इन्द्रादयः प्रत्यूचुः प्रतिवाक्यमुक्तवन्तः दिविओको-निवासो येषान्ते दिवौकसः पृषोदरादित्वात्साधुः ।

हेदेवि! यद्यस्मात्त्वयाअस्माकंशत्रुरयं महिषासुरोनाम निहतः अतस्त्वयासर्वम-स्माकंप्रयोजनंकृतमेव । न किञ्चिदवशिष्यते । न कश्चिदपि शत्रुरवशिष्टः ।

हे महेश्वरि! देवि! यदि पक्षान्तरेत्वयाऽस्माकंत्वदनुग्रहजीविनाम्वरो देयोऽनुमतः स्यात् तर्हि वरः प्रार्थ्यतेऽस्माभिः । कोऽसौ ? हेदेवि! त्वं परमापत्सु अस्माभिस्त्वदेक शरणैः संस्मृता संस्मृता सती वारम्वारन्ध्याता नोऽस्माकम्परमापदः । यद्वा, परमा-अत्यर्थाआपदो येभ्यः ते परमापद शत्रवः तान्महासुरान् हिंसीथाः हिंस्याः । हिसि-हिंसायांरुधादेःप्रार्थनेलिङ्चपरस्मैपदस्थानेव्यत्ययोबहुलंइत्यात्मनेपदस्यथासःसीयुट् । अस्माकमितिदानप्रतिग्रहभावाभावात्सम्वन्धे षष्ठ्येव । "रजकस्यांशुकन्दत्ते स्वामी भृत्यस्यवेतनमितिवत् ।" पक्षान्तरे चेद्यदि च ।

तो हम जब-जब आपका स्मरण करें, तब-तब आप दर्शन देकर हमलोगों के महान् संकट दूर कर दिया करें तथा प्रसन्नमुखी अम्बिके ! जो मनुष्य इन स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करे, उसे वित्त, समृद्धि और वैभव देने के साथ ही उसकी धन और स्त्री आदि सम्पत्ति को भी बढ़ाने के लिये आप सदा हमपर प्रसन्न रहें।

ऋषिरुवाच ।

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवाऽन्तर्हिता नृप ॥

इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥

देवाः ! द्वितीयम्वरं प्रार्थयन्ते । हेदेवि ! हे अम्बिके ! अमलाननेप्रसन्नवदने त्वमस्माभिः प्रसन्नाप्रणता सेवितासतीवरदाऽसि अतो यश्चमर्त्यःएभिस्त्वद्विषयैरस्माभिर्देवैः कृतैस्तवैस्त्वान्देवीं स्तोष्यति भक्तितः स्तविष्यति तस्य मर्त्यस्यमनुष्यस्यवित्तर्द्धिविभवैः सह धनदारादिसम्पदां सदा वृद्धयेभवेथाः । सर्वदा वित्तस्य ऋद्धेः समृद्धेः विभवैरुद्भवैः सहधनस्यगोमहिष्यश्वादेर्दाराणांपत्नीनामादिशब्दात्सेवकानांसम्पदां क्षेत्रारामधान्यपुत्रमित्रादिसम्पत्तीनाञ्च वृद्धये भवेथाः । प्रार्थनेलिङ्व्यत्ययोवहुलमित्यात्मनेपदम् । यद्यपि वित्तंधनमितिपर्यायस्तथाप्युपचाराद्गवाश्वादिकं धनशब्देन विवक्षितम् । वित्तर्द्धयश्चविभवाश्चऐश्वर्याणि तैः सहितन्धनङ्गवाश्वादिदारादिपत्न्यादि येषांसम्पदः तासाम् ।

हे नृप ! सुरथ ! इतिप्रागुक्तरीत्या देवैर्जगतोऽर्थेत्रैलोक्यसंरक्षणप्रयोजनायतथात्मनोऽर्थेस्वार्थे देवकार्यार्थेचविषयेप्रसादिताप्रसादसुमुखी कृताभद्रकालीभद्रासर्वमङ्गलाकालीरुद्रपत्नी कर्मधारयः । हेदेवाः । तथास्तु युष्मद्वाञ्छितवस्तुसिध्यत्वित्युक्त्वाऽन्तर्हिताऽभवत् अदृश्या बभूव । हेभूप ! जगत्त्रयहितैषिणी सा देवीदेवशरीभ्यो यथापुरापूर्वन्तेजोरूपा सम्भूता महिषासुरवधाय प्रादुरभूदित्येतत्सर्वन्ते तुभ्यम्मया कथितम् ।

ऋषि कहते हैं—राजन् ! देवताओं ने जब अपने तथा जगत् के कल्याण के लिये भद्रकाली देवी को इस प्रकार प्रसन्न किया, तब वे 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो(कर) गयीं। भूपाल ! इस प्रकार पूर्वकाल में तीनों लोकों का हित चाहनेवाली देवी जिसप्रकार देवताओं के शरीरों से प्रकट हुई थीं, वह सब कथा मैंने कह सुनायी ।

पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाऽभवत् ।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ ह्रीं ॐ ॥

॥ इति शक्रादिस्तुतिः समाप्ता ॥

श्लोकद्वयमेकान्वयम्। शृणु स्वेतिपदद्वयम्। हेस्व ! आत्मीयसुरथ! सा प्रसिद्धा-देवानामुपकारिणी देवीपुनश्चदुष्टदैत्यानान्धूम्रलोचनचण्डमुण्डादीनां वधाय च तथा-शुभनिशुम्भयोर्वधाय लोकानां रक्षणायाचगौर्या देहात्समुद्भूताऽभवदासीत् तत्सर्वं-यथावद्यथार्थं यावत्ते तुभ्यं कथयाम्यहं यथावद्यावत्प्रकारेणाख्यातंमयाकथितं शृणु ! शृणुष्वेतिपाठे व्यत्ययोबहुलमित्यात्मनेपदम्। सुम्भभाषणेहिंसायाञ्च भ्वादिः। सु(शु)म्भतिभाषतेहिनस्तिवाशुम्भः दन्त्यादिरयम् (?)। तालव्यादिपाठेतु शुभशुम्भ-शोभार्थेतुदादिः शुम्भतिशोभतेरणेष्वितिशुम्भः। यथाप्रकारवद्यथावत्क्रियाविशेषणम्।

अब पुनः देवताओं का उपकार करनेवाली देवी ने दुष्ट दैत्यों तथा शुम्भ-निशुम्भ का वध करने एवं सब लोकों की रक्षा करने के लिये गौरी देवी के शरीर से जिस प्रकार प्रकट हुई थीं वह सब प्रसङ्ग मेरे मुँह से सुनो। मैं उसका तुमसे यथावत् वर्णन करता हूं।

सप्तशत्यन्तर्गता देवकृतादेविस्तुतिः

'ॐ' ऋषिरुवाच ।

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद् विकाशि(सि)वक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥

देव्या चण्डिकया तत्र संग्रामे महासुरेन्द्रे शुम्भे हते सति सेन्द्रा इन्द्रसहिताः वह्निपुरोगमाः अग्न्यादयः सुरा देवा इष्टलाभात्शुम्भनिहतलक्षणात्सन्तुष्टाः अतएव विकासिवक्त्राः दीप्तवदनाः प्रसन्नमुखाः सुष्ठुविकासिताआशा दिशो येषान्ते तां शुम्भमर्दिनीं कात्यायनीं चण्डिकान्तुष्टुवुः । ष्टुञ्स्तुतौ । विकाशिवक्त्राब्जविकाशिता इतिपाठे, काश्टदीप्तौ । तालव्यान्तः । काशनङ्काशः काशो येषान्तानि काशीनि विकाशीनि वक्त्राण्येव अब्जानि कमलानि यासां ताः विकाशिवक्त्राब्जाः काशः सञ्जातो यासान्ताः काशिताः विशेषेण काशिताश्चआशाश्च विकाशिताशाः । कांशितांसाइतिपाठेसुराइष्टलाभाद्विकाशिवक्त्राब्जाः विकाशितांसाश्च भवन्ति । अंसो भुजशिरः ततः कर्मधारयः । महान्तोसुरास्तमिन्द्रे श्रेष्ठे कतोमहर्षिस्तस्यापत्यं स्त्री गर्गादिपाठात्कात्यशब्दाद्गर्गादियञन्तात्सर्वत्रलोहितादिकतन्तेभ्यइतिष्फः षित्त्वान्ङीष् । फस्यायनादेशः कात्यायनी ।

ऋषि कहते हैं—देवी के द्वारा वहाँ महादैत्यपति शुम्भ के मारे जानेपर इन्द्र आदि देवता अग्नि को आगे करके उन कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे। उस समय अभीष्ट की प्राप्ति होने से प्रसन्नता से उनके मुखकमल खिल उठे थे और उनके प्रकाश से दिशाएं भी जगमगा रही थीं।

देवि ! प्रपन्नार्तिहरे ! प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि ! पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि ! चराचरस्य ॥
आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थिताऽसि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥

देवाऊचुः । देवीं स्तोतुंस्तवोपयोगीनि वाक्यानि उक्तवन्तः प्रपन्नाअनन्यशरणाः शरणार्थिनः भक्तिनम्रास्तेषामार्तिम्पीडां हरतीतिप्रपन्नार्त्तिहरा । हरतेरनुद्यमनेऽच्-स्त्रियां टाप् । हेप्रपन्नार्त्तिहरे देवि त्वम्प्रसीद प्रसन्नाभव । पाघ्रादिनासदेः सीदभावः । हे अखिलस्य जगतः मातः जननि! त्वम्प्रसीद । हे विश्वस्य ईश्वरि ! व्यापिके! त्वम्प्रसीद । हे देवि ! त्वं विश्वम्पाहि लक्ष्मीरूपेण सर्वं जगद्रक्ष । हेदेवि ! त्वं चराचरस्यजगतः ईश्वरीविष्णुमायात्मतया व्यापिकाऽसि । चराश्चाचराश्चचराचरम् । सर्वोद्वन्द्वोवि-भाषैकवद्भवति । अन्यथाचरगतौपचाद्यच् । चरिचलिपतिवदीनामच्याक्चाभ्या-सस्येत्यनेन चराचरम् । जङ्गमात्मकमेवस्यान्नाजङ्गममपि । यदाहुः—"चरिष्णुजङ्ग-मचरन्त्रसमिङ्गश्चराचरम्" ।

हेदेवि ! त्वं यतः हेतोः पृथिवीस्वरूपेण स्थिताऽसि । अतः जगतः विश्वस्याऽऽधार-भूता त्वम् एकैव नाऽन्या । हेअलङ्घ्यवीर्येलङ्घितुमशक्यबले । अपांस्वरूस्थितया त्व-यैव एकया एतत्कृत्स्नं जगदाप्यायते सर्वमाप्यायते । प्यायीवृद्धौ णिच् कर्मणिलिट् । अपाजलानां स्वरूपेण स्थितया त्वया ।

देवता बोले—शरणागत की पीड़ा दूर करनेवाली देवि ! हमपर प्रसन्न होओ । सम्पूर्ण जगत् की माता ! प्रसन्न होओ । विश्वेश्वरि ! विश्व की रक्षा करो । देवि ! तुम्हीं चराचर जगत् की अधीश्वरी हो ।

तुम इस जगत् का एकमात्र आधार हो, क्योंकि पृथ्वीरूप में तुम्हारी ही स्थिति है । देवि ! तुम्हारा पराक्रम अलङ्घनीय है । तुम्हीं जलरूप में स्थित होकर सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो ।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमाऽसि माया ।
सम्मोहितं देवि ! समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥
विद्याः समस्तास्तव देवि ! भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।

हेदेवि ! त्वमनन्तवीर्या अक्षयबला। वैष्णवी विष्णुसम्बन्धिनी शक्तिरसि यथा-शक्त्या विष्णुर्भगवानशेषलोकान् पालयति सा विष्णुसामर्थ्यलक्षणा त्वमेवेतिभावः । विश्वस्य बीजं कारणं यल्लोकवेदप्रसिद्धं सा परमाव्यापिनीमहामाया त्वमेवाऽसि। पर-मा उत्कृष्टादुत्तराशक्तिर्नत्वदन्या सेतिभावः। हेदेवि ! त्वयामाययाएतत्समस्तंविश्वं सञ्जातमोहं कृतं मोहितं ममतायत्तं कृतम्। देवि ! त्वं वैप्रसिद्धाज्ञा वैराग्यरूपाउपनिषत्प-रमात्मतत्त्वावगमस्वभावप्रसन्ना सती भवनंभूः पुनः पुनः पुनरुद्भवः भुविरुत्पत्तिभूत-प्रादुर्भावइतियावत्। भूसत्तायां क्त्रियामिकृक्ष्यादिभ्यइति इकूप्रत्ययः। उवङादेशः। भुवेरुत्पत्तितो मोचनम्मुक्तिः मुक्तेः हेतुः कारणमसीत्यर्थः। भुविभूमौ इत्युक्तेऽर्थपुष्ट्य-भावस्तिष्ठतु ब्रह्मलोकादौमुक्ति हेतुता न स्यादित्यव्याप्तिपरिजिहीर्षार्थोपलक्षणता श्रयेणजनितप्रतिपत्तिगौरवा दौर्गुण्या । भुविमुक्तिहेतुरित्येकं पदम् ।

हे देवि! समस्ताः श्रुत्यादयो विद्यास्तथैवभेदास्त्वत्प्रकाराएव त्वदंशा एव। तस्मा-त्तवविद्यानांपरस्परम्पार्थक्याभावात्ते का स्तुतिः प्रवर्त्ततम्। नकाऽपि। कीदृशी स्तुतिः। स्तवमर्हति स्तव्यम्। दण्डादिभ्यो यः अन्यथाअचोयतम्बाधित्वाएतिस्तुसूत्रेणक्य-पिसतिस्तुत्यंइत्येवस्यात्। स्तव्येस्तोत्रार्हवस्तुनि विषये परा चापराचेतिपृथग्भूतोक्तिर्य-स्याःसास्तव्यपरापरोक्तिः। स्तुतिस्तुत्ययोः पृथक्त्वे खलु स्तुतिः प्रवर्तते एकत्वे का ते स्तु-

---

तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्व की कारणभूता परा माया हो। देवि! तुमने इस समस्त जगत् को मोहित कर रक्खा है। तुम्हीं प्रसन्न होनेपर इस पृथ्वी पर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो।

देवि ! सम्पूर्ण विद्याएं तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। जगत् में जितनी

त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः ॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्ति (भुक्तिमुक्ति) प्रदायिनी ।

तिरस्त्विति भावः । तर्हि त्वं ब्राह्मी त्वंलक्ष्मीरित्याद्यास्तुतिरपिदेव्याएकत्वेन न घटत-इत्याह । समस्ताः सकलाः कलासहिताश्चतुःषष्टिकलोपेताः पातिव्रत्यादिधर्मोपेताः सृष्ट्यादिप्रतिनियतनैपुण्योपेताश्च ब्रह्माण्याद्याः स्त्रियश्च तवैवांशाइति का ते स्तुतिः एक-स्वरूपत्वात्, हे देवि ! त्वयाएकयैव अम्बया मात्राएतज्जगत्पूरितंपूर्णंवाप्यायितम् । त्व-मेवजगत्जगदेव त्वमिति का ते स्तुतिः न काऽपि । अन्यदीयगुणानामन्यत्रारोपणवर्णनं स्तुतिः । अत्र तु सैव विद्येति सैव ब्राह्म्यादिस्त्रीतिभेदाभावात्स्तव्यपरापरोक्तिः परमो-क्तिरित्यर्थः । देवी न्यूना न भवतीतिस्वभावतः श्रेष्ठोक्तिरित्येव तस्यामितिका ते स्तुति-रित्युक्तम् । न्यूनमधिकीकृत्योक्तिः स्तुतिरित्यविलक्षणम् । न्यूनाभवतियतस्ततोऽधि-का नैवेत्युक्तं का तेस्तुतिरिति ।

पुनरपि देव्यां स्तुतिर्न घटतइत्याह । परमोक्तिः स्तुतिरितिस्तुतिलक्षणम् । तत्र-देवीसर्वभूताइतीदं स्तुतिपदम् । एवं च सति ब्रूमः हेदेवि ! भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी त्वं यदा सर्वभूताऽसि सर्वात्माऽसि विश्वरूपाइतिस्तुताभूः । तदा स्तुतये स्तुत्यै स्तुत्यर्थाः का वा नाम परमाःश्रेष्ठाः उक्तयः वर्णनास्तुतयः भवन्ति न कापिपरमाश्रेष्ठाउक्तिः वर्णने स्तु-तिरितिलक्षणंततश्च यच्चकिञ्चित्पदार्थरूपं भावाभावात्मकंसम्भवेत्तन्नामसर्वमित्युच्यते। सर्वभूतादेवीति यदास्तुता तदा सर्वस्य च देव्याश्चैक्यात्किं स्तुत्यं का वा स्तुतिः स्यादि-तिभवत्यर्थादाह । कावाभवन्तिपरमोक्तयइति । काः परमोक्तयः याभिः स्तूयेत देवी न काऽपि । "युक्ते स्यादावृते भूतं प्राण्यतीते समे त्रिषु" । सर्वभूता सर्वेण विश्वेनसमेत्यर्थः

स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं । जगदम्ब ! एकमात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रक्खा है । तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है । तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एवं परा वाणी हो ।

जब तुम सर्वस्वरूपा देवी एवं स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हो, तब इसी

त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे! देवि! नारायणि! नमोऽस्तु ते ॥

कीदृशीदेवी । अयदा शुभावहविधिदा । भुज्यतेभोगः स्वर्गादिः मुक्तिर्मोक्षः तौ प्रददाति भुक्तिमुक्तिप्रदा । यद्वा, भुक्तेर्मुक्तिर्वैराग्यन्ताम्प्रददाति प्रेदा ज्ञःकः अयते-गच्छतिऽयाप्नोत्ययनी । कृत्यल्युटोवहुलमितिकर्त्तरिल्युट् । यद्वा, दय दाने भुक्तिमुक्ती प्रदयते भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । णिनिः । यद्वा, प्रापूरणे भुक्तिमुक्ती प्राति पूरयतिभुक्तिमुक्तिप्रा । आतोऽनुपसर्गेकः । दयिष्यते रक्षिष्यति दायिनी । भविष्यदाधमर्ण्ययोर्णिनिः । भुक्तिमुक्तिप्राचासौदायिनीरक्षित्रीचेतिकर्मधारयः पुंवद्भावः । भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।

हेदेवि! सर्वस्य जनस्य जन्तोः, हृदि चेतसि । बुद्धिरूपेणसंस्थिते । हेस्वर्गापवर्गदे देविनारायणिनमोऽस्तुते । हेदेविसंस्थितेसम्यगवस्थिते! "संस्थाधारेस्थितौमृतौ" । स्वर्गंचापवर्गञ्चददातिस्वर्गापवर्गदा । आतोऽनुपसर्गेकः । नरःकश्चिदृषिः नरस्यापत्यं नारायणः । नडादिभ्यः फक्फस्यायनः । नारायणस्य स्त्री स्त्रीमायोपचारात् । नारायणी विष्णुमायेत्यर्थः । यद्वा, आपोनाराइतिप्रोक्ताः" । नारमम्मयमयनमस्यनारायणः । संज्ञायां णत्वम् । यद्वा, नराणां समूहोनारमयनमस्यनारायणः तस्य स्त्रीनारायणीलक्ष्मीः हेनारायणि! कात्यायनीन्तुष्टुवुरितिकात्यायनीस्तुतौप्रकृतायां नारायणीनमस्कृतिः स्त्रियः समस्तास्तदंशाएवेतिप्रागुक्तेः कार्यभेदमात्रत्वेऽपि वस्तुतस्तयोरैक्यादविरुद्धा ।

रूप में तुम्हारी स्तुति हो गयी । तुम्हारी स्तुति के लिये इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं ।

बुद्धिरूप से सब लोगों के हृदय में विराजमान रहनेवाली तथा स्वर्ग मोक्ष प्रदान करनेवाली नारायणी देवि ! तुम्हें नमस्कार है ।

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥
सर्वमङ्गलम(मा)ङ्गल्ये ! शिवे ! सर्वार्थसाधिके ! ।

"अष्टादशनिमेषास्तुकाष्ठात्रिंशत्तुताः कलाः" इत्यभिधानात् । काष्ठाकलातोन्यूनेति काष्ठाकलादिरूपेणेतिपाठः सभ्यः । विश्वस्य खलु काष्ठाकलान्यूनतेतिकाष्ठाकला । क्षणमुहूर्त्ताहोरात्रपक्षमासर्त्वयनसम्वत्सरादिकालरूपेणपरिणामप्रदायिनी । बाल्यादिवयोऽवस्थाविशेषेण वा । तथा विश्वस्यउपरतौअवसानेविषये या शक्तिस्तत्सम्बुद्धौहेशक्ते रुद्ररूपत्वात्(द्)हेसमर्थे ! नारायणीति अयगतौइण्गतौ इगतौ अय्यतेइयतेवाअयनः परमात्मा कर्मणि ल्युट् । पुँल्लिंगतानुप्रयोगतः । लिंगमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिंगस्येतिवचनात् नाराणामयनः नारायणः । पूर्वपदात्संज्ञायामगः इति णत्वम् । नारायणस्य परमात्मनइयं माया नारायणी । अन्यथा नारायणस्येयंनारायणीयेतिवृद्धाच्छः स्यात् । तस्मात्सम्बन्धेऽणेव । परिणामः प्राणिकायावयवोपचयलक्षणावृद्धिः । ताम्प्रददाति परिणामप्रदायिनी सुप्यजातौणिनिः । आतोयुक्चिण्कृतोः । ज्ञापकसिद्धमनित्यमिति क्वचित्सोपसर्गादपि णिनिः । दुग्धंदधिरूपेणपरिणमतेइत्यादौ तु परिणामो रूपान्तरावाप्तिर्दुग्धादिस्वरूपाद्विवर्त्तः । परिणामप्रदायिनीतिपाठे । परितो मानं यत्रापरिच्छेदः । प्राणिकायादेः कालकृताशरीरावस्थायौवनादिवयः । तस्य परिच्छेदः परिमाणमेतावत्कालपरिमितमिदम्बाल्यमिदं यौवनमित्यादि तत्प्रददाति हेपरिणामप्रदायिनि ।

सर्वाणि मङ्गलानि यतःस्युः सा सर्वमङ्गला । मङ्गलेभ्यो हिता मङ्गल्या । उगवादिभ्योयत् । सर्वमङ्गलाचासौमङ्गल्याच । सर्वमङ्गलमांगल्येइतिवृद्धिपाठपक्षे तु । मगि-

---

कला, काष्ठा आदि के रूप से क्रमशः परिणाम (अवस्था-परिवर्तन) की ओर ले जानेवाली तथा विश्व का उपसंहार करने में समर्थ नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ।
नारायणि ! तुम सब प्रकार का मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो ।

शरण्ये ! त्र्यम्बके ! गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते ! सनातनि ! ।

गतौ मङ्ग्यन्ते मङ्गलानि मङ्गलेभ्यो हितामाङ्गल्यामङ्गल्यैवमाङ्गल्या । अन्येषामपि-दृश्यतइतिदीर्घः पूरुषवत् । कश्चित्त्वाह । गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणिचेति-कर्मणि ष्यञिति । तत्र तस्यार्थसङ्गत्यभावस्तावदास्ताम् । स्त्रियांटापष्याधित्वा षित्त्वात् ङीषि माङ्गलीत्येव स्यात्तत्तुमाङ्गल्येतिरूपसिद्धिरिति तदुपेक्षणीयम्प्रेक्षा-वद्भिः । "शिवा भवानी रुद्राणी" । हेशिवे ! यद्वा, शिवामङ्गलोपेतेतिरमाऽपि शिवा-भवति । हेशिवे ! हेरमे ! सर्वेषामर्थानां साधयित्री उमा रमा च । हेसर्वार्थसाधिके ! "अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु" । "शरणं गृहरक्षित्रोः" । शरणेषु साधुःशरण्या । तत्रसाधुरिति यत् । हे शरण्ये ! सोमसूर्याग्निरूपाणि त्रीण्यम्बकानि नेत्राण्यस्याः त्र्यम्बकाः । यद्वा, त्रयोऽम्बकाः । उमारमाच । हे त्र्यम्बके त्रयाणांलोकानामम्बकः पितेत्यागमः । गौरीउमा । यद्वा, गुङ्अव्यक्तेशब्दे । गूयतेअव्यक्तं गुप्तं शब्दायते मनसा गृह्यते धार्यते गौरीउमारमाच । ऋज्रेन्द्राग्रवज्रादिसूत्रेणरनिप्रत्यये गुङोवृद्धि-र्निपात्यते । "गौरोऽरुणे सिते पीते" । गौरादित्वान्ङीष् । अयः शुभावहोविधिर्यत्रपर-मात्मनि सः अयनः पामादित्वान्मत्वर्थीयो नः । नृनये नयो नीतिः भावेऋदोरप् । नरणं नरः नरेण नयेन अयनः नारायणः परमात्मा तस्येयम्माया नारायणी । हे नारायणि ! नमस्तेऽस्तु नमःस्वस्तीति चतुर्थी ।

जगतां सृष्टेः सर्गस्य स्थितेर्वर्त्तनस्य नाशनस्य प्रलयस्य । हेशक्तिभूते ! शक्तिरित्येवं भूता जाता । हेशक्तिरूपे ! यद्वा, ब्राह्मीशक्तिः सृष्टौ ; वैष्णवीशक्तिः स्थितौ ; रौद्रीश-क्तिर्विनाशे तद्भूता त्रिशक्तिभूता या शक्तिस्तत्सामान्येन शक्तिभूता हेशक्तिभूते ! यद्वा,

---

कल्याणदायिनी शिवा हो । सब पुरुषार्थों को सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो । तुम्हें नमस्कार है ।

तुम सृष्टि, पालन और संहार की शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार

गुणाश्रये ! गुणमये ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ! ।

शक्तीनां भुवा परमात्मना उता संगता । वेञ् तन्तुसन्ताने । यद्वा, शक्तीनाम्भरिअवताररूपाशक्तिभूतिः । हेशक्तिभूते ! यद्वा शक्तीनाम्भुवः भूमयः ब्रह्मादयस्तेषामूतिः सङ्घटना । तन्तुनेवगुम्फनंसन्तननं शक्तिभ(भू)तिः । वञः स्त्रियांक्तिन् । हे सनातनि । सायंचिरमित्यादिसूत्रेणल्युस्तुट्च स्त्रियांटित्वान्ङीप् । हेशाश्वति ! हे गुणाश्रये ! गुणाः सत्त्वादयः आश्रयो यस्याः सा । यद्वा, गुणानामाश्रयो यत्र सा गुणाश्रया । यद्वा, सत्त्वादिगुणयुक्ता गुणाः यथायोग्यम्ब्रह्मादयः तेआश्रया यस्याः सा । हेगुणमये ! मयगतौ । मयते गच्छति लोकान्मया । पचाद्यचि स्त्रियां टाप् । गुणैर्मया गुणमया गुणैर्ततिमतीत्यर्थः । यद्वा हेऽगुणमये ! अगुणम्ब्रह्म मयते । अगुणेन ब्रह्मणा मया गमनपरा अगुणमया, ब्रह्मतत्त्वेन मयमानेत्यर्थः । गुणमयीतिपाठे । गुणानाम्विकारः गुणमयी । यद्वाऽगुणमयी । मयड्वैतयोर्भाषायामित्यादिना मयट् । ङीप् । यद्वा, गुणेभ्योहेतुभ्यआगता गुणमयी । हेतुमनुष्येभ्यइत्यधिकृत्य मयड्वेति । यद्वा, गुणाः प्राकृता उच्यन्तेऽस्यां गुणमयी तत्प्रकृतवचने मयट् । अय्यतेईयतेगम्यतेअयनामुक्तिः ऋशब्दः अदितिवाची । उरपत्यानि आराः देवाः । नशब्दोनञ्समानार्थोऽननुबन्धकः न सन्त्यद्याप्यारादेवाः साधकत्वेन यत्र सा नारा नारा चासौअयनीचेतिनारायणीमुक्तिर्देवैरद्याऽपि दुष्प्राप्येत्यर्थः । तत्सबुद्धौ हेनारायणि ! ।

शरणं रक्षितामरागताः रक्षरक्षेतिप्रपन्नाः शरणागताः त एव दीनाआर्त्ताश्चदुःखितालोकास्तेषामापद्भ्यो दुःखेभ्यः परित्राणन्तदेव परंमुख्यमुद्देश्यमयनंवर्त्म यस्याः सा तत्संबुद्धिः । सर्वलोकस्याऽऽर्त्तिहरे । हरतेरनुद्यमनेऽच् । हेदुःखनाशिनि ! हेदेवि भगवति ! न आरायणिनमः अस्तुतेइतिच्छेदः । पूर्वमग्रेअः । एङः पदान्तादती-

---

तथा सर्वगुणमयी हो । नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ।

शरण में आये हुए दीनों एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहनेवाली तथा सब

सर्वस्यार्त्तिहरे ! देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥
हंसयुक्तविमानस्थे ! ब्रह्माणीरूपधारिणि ! ।

त्यकारलोपः । प्रथमैकवचनस्यऋकारस्यश्रवणमेव तथा च सतिमो (:) इतिभवति । अग्रेचस्तुते । ऋइतिदेवमाता । मः शिवः अः विष्णुः द्वौप्रतिषेधौ प्रकृतमप्रतिषिद्धमर्थं-गमयतः । उर्देवमातुरपत्यानिआराः ऋभवः देवाः । अय्यते ईयते (वा) अयनी आराणामयनीआरायनी या ध्यातव्या देवता । आरायणी । पूर्वपदात्संज्ञायामग-इतिणत्वं हेआरायणि । त्वां मः शिवः अश्चविष्णुः ननस्तुते अपितु स्तुते नौत्येव । ष्टुञ्स्तुतौ लडात्मनेपदम् ।

हंसैर्युक्तं विमानन्तत्र तिष्ठति हे हंसयुक्तविमानस्थे ! यद्वा हंसैः, यतिविशेषैः सूर्यैः रूपैश्चयुक्तमाश्रितंविमानंविगताहङ्कारंपरब्रह्म तत्र तिष्ठति । "हंसः श्वेतगरुत्सूर्ययतिप्रा-णात्मसु स्मृतः" । हे ब्रह्माणीरूपधारिणि ! कुशो दर्भस्तस्येदं कौशं कौशंचतदम्भश्चकौ-शाम्भः । क्षरसञ्चलने । क्षरणं क्षरः । घञिसंज्ञापूर्वकोविधिरनित्यइत्यतउपधावृद्ध्य-भावः । घञर्थेकविधानम्वा । कौशाम्भसः क्षरः सेचनन्तंकरोति इतिणिच्विण्वुल् । वोरकः स्त्रियांटाप् प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यातइदाप्यसुपइतिइत्त्वम् । हेकौशाम्भःक्षरिके ! शत्रुषु कुशोदकक्षेपणंकुर्वित्यर्थः । यदुक्तम् । कमण्डलुजलाक्षेपेइत्यादि । यद्वा, क्षर-ङ्करोति क्षरयतिक्षरिकाआसेक्त्री कौशाम्भसः क्षरिका । अणिजन्तस्येतिभावः । क्षरतेस्तुण्वुलि क्षारिका । यद्वा, कौशाम्भः क्षरति सिञ्चति कौशाम्भःक्षरी । कर्मण्यण् । ङीप् । स्वार्थे कः । केऽणइतिह्रस्वः । यद्वा, कुशसम्बन्धीअम्भसः क्षरः आयुधत्वेन यस्याः सा कौशाम्भःक्षरका । शेषाद्विभाषा कप् । अत्र पक्षे अप् । सुपः परइत्त्वं न भवति । ना अ आ ऋ आ अयनि न मा उः स्तुत इतिच्छेदः । ना पुरुषः । "अकारोवासुदेवः

की पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवि ! तुम्हें नमस्कार है ।

नारायणि ! तुम ब्रह्माणी का रूप धारण करके हंसों से जुते हुए विमान पर

कौशाम्भःक्षरिके ! देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

त्रिशूलचन्द्राहिधरे ! महावृषभवाहिनि ! ।

माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

स्यादाकारस्तुपितामहः" । अृ इतिदेवमाता । अृभुशब्दप्रयोगदर्शनात् । आइतिआ-ङ्उपसर्गः । आयनिइतिसम्बुद्ध्यन्तम् । न मा इति द्वौ प्रतिषेधौ । उकारस्तुमहेश्वरः । स्तुतेइतिष्टुञ्स्तुतौ आत्मनेपदम् । अय गतौ । कृत्यल्युटोबहुलमितिकर्मणि ल्युट् । आस-मन्तादय्यतेईयतेवाआयनीउपासनी इष्टदेवता । उःदेवमातुः आयनी । इकोयणचि । रायनी । पूर्वपदात्संज्ञायामग इति णत्वम् । हेरायणि । हेदेवमातुरदितेरभीष्टदैवते त्वम् । आश्च ब्रह्मा अःविष्णुः उःरुद्रः इतित्रिमूर्तिलक्षणः । ना पुरुषः मा न स्तुते न स्तुतेति मा अपि तु स्तौत्येव ।

धृञ्धारणेभ्वादिः । धरतीतिधरा पचाद्यच् । त्रिशूलचन्द्राहीनान्धरा । अन्यथा कर्मण्यण् स्यात् । त्रिशूलादिधरतीतिविग्रहश्रवणात् । त्रिशूलमायुधं चन्द्रोऽत्रैककला-त्मकः किरीटभूषणौचित्यात् । अहयः फणिनः । द्वन्द्वे घिः । बहुष्वनियमः । हेत्रिशू-लचन्द्राहिधरे । महान् वृषभस्तेन वाहिनी वाहवती । अृन्नेभ्योङीप् । यद्वा, महावृ-षभेण वाहयतीति महावृषभवाहिनी । बहुव्रीहौमहावृषभवाहनेतिस्यात् । हेमहावृषभ-वाहिनि ! महेश्वरस्येयं शक्तिर्माहेश्वरी । तस्याः स्वरूपमाकारस्तेनध्येयतयासम्भाविते । अनधातुः प्राणनार्थः । अननमनिः इकृष्यादिभ्यः स्त्रियां कृदिकारादक्तिनइतिङीप् । अनी । इःकामः एःकामस्य तद्दैवतबीजस्य वा अनी प्राणरूपायनी । अम्विष्णुं रातिरक्षकत्वेन गृह्णाति अरा त्रिलोकी । अरायाः यनी अरायणी । हे अरायणि । त्वां उःशिवः ना पुरुषः । न मा स्तुते अपि तु स्तौति ।

बैठती तथा दैत्यों द्वारा किये गये पापों की शान्ति के लियेकुश-मिश्रित जल छिड़कती रहती हो । तुम्हें नमस्कार है ।

माहेश्वरीरूप से त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्प को धारण करनेवाली तथा महान् वृषभ की पीठपर बैठनेवाली नारायणी देवि ! तुम्हें नमस्कार है ।

मयूरकुक्कुटवृते ! महाक्तिधरेऽनघे ! ।

हे अनघे ! कौमारीरूपसंस्थाने ! अतएव हे महाशक्तिधरे ! अतएव मयूरकुक्कुटवृते नमोऽस्तु ते। नारायणस्यभगवतोविश्वरूपस्येयमाकृतिः। नारायणी मूर्तिः। छान्दसत्वाद्वृद्धाच्छमनाश्रित्यसामान्यतोऽणेव। यद्वा, नराणामयनं नरायणं धर्मार्थकाममोक्षलक्षणं तस्येयं साद्विधा तत्र जाता तत्साधयितुश्च। शैपिकोऽण्। नारायणी। न विद्यतेअघं यतः हे अनघे ! यद्वा, न विद्यते अः विष्णुः पूज्यो येपान्तेअना दैत्याः तान् हन्तीत्यनघा। सप्तम्याञ्जनेर्डः। अन्येष्वपिदृश्यते इत्यत्राऽपि शब्दः सर्वोपाधिव्यभिचारार्थः तेनधात्वन्तरादपि कारकान्तरेऽपि डो भवति। डित्यभस्यापिटेर्लोपः। पृषोदरादित्वात् हस्य घः। संस्थितिः सम्यगवस्थानं सन्निवेशः संस्थानम्। कुमारस्य शक्तिधरस्येयं शक्तिर्देवता कौमारी कौमार्याः सकाशाद्रूपसंस्थानं यस्याः सा। यद्वा, कौमारी षण्मुखीरूपसंस्थानशरीरावयवसन्निवेशविशेषो यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ। महतीशक्तिरायुधं महाशक्तिः तस्यधरा महाशक्तिधरा। अन्यथा तु विग्रहेकर्मण्यण् स्यात्। यद्वा, महाशक्तिरतिसामर्थ्यम्। मीन्हिंसायां क्र्यादिः मीनात्यहीन्मयूरः। मीनातेरूरन्। कुक्कुटश्चरणायुधः कुगुच्चारणेनकुटतिकुक्कुटः। कुटकौटिल्ये। पचाद्यच्। मयूरा वाहनीभूताः क्रीडार्थाश्च। कुक्कुटाश्चयुद्धचातुर्यदिदृक्षौचित्योपार्जिताः। तैर्वृता वेष्टिता यतइयं कौमारी तेन बाल्योचिताकुक्कुटक्रीडोक्ता। यद्वा, मयूरैः कुक्कुटैश्च वृतिरावरणं यस्याः सा। यद्वा, क्रौंचवाराहचक्रादिव्यूहवत्मयूरकुक्कुटव्यूहौचसंग्रामोचितसैन्यसंनिवेशौ ज्ञेयौ। यदाहुः, "व्यूहस्तुवलविन्यासो भेदादण्डादयोयुधि। दण्डोमङ्गलभागौचाप्युत्सन्नश्चावलोद्दढः व्यूहस्तेषांविशेषाः स्युश्चक्रव्यूहादयोऽपि च" इति। ततश्चमयूरव्यूहकुक्कुटव्यूहाभ्याम्वृता। यद्वा, वाहनीभूतत्वान्मयूरैः कौमारीवृता। अथचेयं कुक्कुटाख्यालङ्कारोपेतत्वात्कुक्कुटवृता। यदाहुः। "कुक्कुटस्ताम्रचूडे च भूपायामपि दृश्यते"। यद्वा, मयूराः कुक्कुटाइवचित्रपुच्छवर्जितामयूरकुक्कुटाः तैर्वृते। यदभ्यधुः,

---

मोरों और मुर्गों से घिरी रहनेवाली तथा महाशक्ति धारण करनेवाली

कौमारीरूपसंस्थाने ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ! ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

गृहीतोग्रमहाचक्रे ! दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे ! ।
वराहरूपिणि ! शिवे ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

"आरक्तनेत्रपिच्छाग्रो मयूरः कुक्कुटः स्मृतः। बर्हेणवर्जितोवर्ही यः स मयूरःकुक्कुट" इतियादवप्रकाशः। कुमारोमयूरमारोहतिकौमारी तुमयूरीम्। यद्वा, मा लक्ष्मीः आः पितामह। इः कामः। उः शिवः। उत्त्राता रक्षको विष्णुः रोऽग्निः तैर्वृ तामयूरवृता। अथ च सा कुक्कुटवृता। कुकवृकआदाने। भ्वादिरात्मनेपदी। ततः कर्त्तरिक्विप्। कोकन्ते कौमार्याः आज्ञामाददते दैत्यैः सह संग्रामयितुंकुक्किदेवसैन्यानि तान्येव कुटुम्बिदैत्यैः सह विरुद्धबुद्धीनि कुटानिचकुक्कुटानिदेवसैन्यानि च तैर्वृ ता।

हे वैष्णवीरूपे ! हे शङ्खादिगृहीतपरमायुधे ! हे देवि ! प्रसीद। हे नारायणि नमस्तेऽस्तु। शङ्खश्चक्रं च गदा च शार्ङ्गश्चसेनाङ्गत्वादेकवद्भावः। तानि गृहीतानि परमाण्यायुधानि यया सा। विष्णोरियं शक्तिर्वैष्णवी तस्या इव रूपं यस्यास्तत्सम्बुद्धिः।

गृहीतमुग्रंरौद्रंमहच्चक्रं यया तत्सम्बुद्धिः। दंष्ट्रयाउद्धृतावसुन्धराभूमिर्यया तत्सम्बुद्धिः। वराहस्य भगवतो विष्णोः रूपं तद्वती वराहरूपिणी। वराहसदृशरूपमात्मानन्दर्शयन्तीत्यर्थः। यद्वा, सत्यापपाशसूत्रेण रूपादर्शने णिच्। वराहमेवात्मनोरूपं पश्यति वराहरूपिणी तत्सम्बुद्धिः। हे शिवे ! सर्वमङ्गले ! नारायणि ! दशन्ति यया दंष्ट्रा। दाम्नीशसेत्यादिनादशंतेः करणे ष्ट्रन्। षिल्लक्षणो ङीषूअनित्यः। ततः स्त्रियां टाप्।

कौमारीरूपधारिणी निष्पापे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है। शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुषरूप उत्तम आयुधों को धारण करनेवाली वैष्णवी शक्तिरूपा नारायणि ! तुम प्रसन्न होओ। तुम्हें नमस्कार है। हाथ में भयानक महाचक्र लिये और दाढ़ों पर धरती को उठाये वाराहीरूपधारिणी कल्याणमयी नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है।

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ! ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

किरीटिनि ! महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ! ।
वृत्रप्राणहरे ! चैन्द्रि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

उग्रेण नृसिंहरूपेण दैत्यान्हन्तुं हे कृतोद्यमे ! त्रैलोक्यस्य त्राणेन रक्षणेन महिते पूजिते । त्रैलोक्यत्राणसहिते इतिवपाठः । अयगतौ । अग्र तेइत्ययनश्चतुर्भद्रं नराणाम-यनम्प्राप्तव्यं "नरायणं तस्य प्रापयित्रीनारायणी । चतुर्णांभद्राणांसमाहारश्चतुर्भद्रम् । "आहुश्चत्वारिभद्राणिबलन्धर्मः सुखं धनम्" ।

किरीटं मुकुटं तद्वती हेकिरीटिनि! महद्वज्रमायुधं यस्याः सा महावज्रा महाहीरा तत्सम्बुद्धिः । सहस्रं नयनानिसमाहृतानिसहस्रनयनम् । पात्रादित्वान्ङीपूनभवति । तेन उज्ज्वलति प्रकाशते सहस्रनयनोज्ज्वला । यद्वा, सहस्रनयनेज्वले इतिपाठः । सहस्रं नयनानि यस्याः सा सहस्रनयना ज्वलितिज्वला । पचाद्यच् । हेज्वले ! अनु-पसर्गादिवज्वलितिकसन्तेभ्योणस्तुवा । तेन युक्ते सोपसर्गादनुपसर्गाच्च ज्वलतेः पचा-द्यच्भवत्येव । वृत्रों नाम दैत्यः कश्चित्तस्यप्राणान् हरति । हे वृत्रप्राणहरे ! चकारः उक्तमनुक्तञ्च समुच्चिनोति । इन्द्रस्येयमैन्द्री हे ऐन्द्रि !

भयङ्कर नृसिंहरूप से दैत्यों के वध के लिये उद्योग करनेवाली तथा त्रिभुवन की रक्षा में संलग्न रहनेवाली नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ।

मस्तक पर किरीट और हाथ में महावज्र धारण करनेवाली, सहस्र नेत्रों के कारण उद्दीप्त दिखायी देनेवाली और वृत्रासुर के प्राणों को अपहरण करनेवाली इन्द्रशक्तिरूपा नारायणी देवि ! तुम्हें नमस्कार है ।

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ! ।
घोररूपे ! महारावे ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ! ।
चामुण्डे ! मुण्डमथने ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥
लक्ष्मि ! लज्जे ! महाविद्ये ! श्रद्धे ! पुष्टि(ष्टे)स्वधे ! ध्रुवे !

चण्डिकाशरीरोत्था शिवदूती तस्याः स्वरूपेण हता दैत्या यया । हे हतदैत्ये ! महद्बलं सामर्थ्यं सैन्यञ्च यस्याः हे महाबले ! यद्वा महान् बलिरुपहारः पूजोपकरणं यस्या महाबलिः हे महाबले । "करोपहारयोः पुंसि बलिः प्राण्यङ्गजेस्त्रियाम्" । घोरंभयानकं रूपं यस्याः हे घोररूपे ! महानारावः शब्दोयस्याः श्रृगालपरिवारत्वात् हे महारावे ।

दंष्ट्राभिः करालं भयङ्करं वदनं यस्याः हे दंष्ट्राकरालवदने ! "करालो दन्तुरे तुङ्गे" ! शिरसांमालाविभूषणं यस्याः हे शिरोमालाविभूषणे ! मुण्डं दैत्यंमथ्नातिमुण्डमथना । मथविलोडने नन्द्यादित्वात् ल्युट् (तुल्युः) । यद्वा, कर्त्तरिबहुलं ल्युट् । बाहुलकान्ङीबभावः । हे मुण्डमथने ! हे चामुण्डे कालि !

हे लक्ष्मि ! हे लज्जे ! हेमहा विद्ये महतिविद्ये परमात्मगोचरज्ञानरूपे । यद्वा, महाविद्ये ! हेमहत्यविद्ये परमात्मेतरप्रपञ्चगोचरनानाज्ञानरूपे । हेश्रद्धे ! आस्तिक्यबुद्धिस्वभावे । हे पुष्टे शरीरावयवोपचयरूपे ! हे स्वधे ! पितृतृप्तिस्वरूपे ! हे ध्रुवेशा-

---

शिवदूतीरूप से दैत्यों की महती सेना का संहार करनेवाली, भयङ्कररूप धारण तथा विकट गर्जना करनेवाली नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ।

दाढ़ों के कारण विकराल मुखवाली मुण्डमाला से विभूषित मुण्डमर्दिनी चामुण्डारूपा नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ।

लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महा-

महारात्रि ! महाऽविद्ये ! नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
मेधे ! सरस्वति ! वरे ! भूति ! बाभ्रवि ! तामसि ! ।
नियते त्वं प्रसीदेशे ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

श्वति ब्रह्मरूपे ! हे महारात्रे हिरण्यगर्भावसानकालरूपे । यद्वा, महारात्रे ! हे अनन्य-तमोऽधिकरणकालरूपे । यद्वा, महारात्रिः सर्वप्राणिमोहकरी देव्येवोच्यते । अतएव हे महामाये सर्वजगत्कारणभूते । यद्वा, हे महत्यमाये । हेमहारात्रिइतिपाठेरात्रेश्चा-जसाविति संज्ञायां ङीप् छन्दस्येव । तिमिरपटलैरवगुण्ठिता रात्र्यइतितुजसन्तः प्रयोगः बह्वादौकृदिकारदक्तिनो वा ङीषूवक्तव्यः । उणादावदेस्त्रिन् अत्रिर्मुनिः बाहुलकात् रातेरपि त्रिन् । रात्रिः रात्रीच । राति सुखं रात्रिः ।

हे नारायणि ! हे मेधे ! नमोऽस्तु ते ! "धीर्धारणावतीमेधा"। अण्यते कथ्यतेअणिः मेधादिः । इक्कृष्यादिभ्यः कृदिकारादक्तिनो वा ङीष् । अणी मेधादिः । ईइत्यस्याः लक्ष्म्या अणी मेधादिः यणी नराणांसमूहोनारं नारेणासमन्तात्श्रिता यणी नारायणी। हे वरे श्रेष्ठे ! हे भूते अतीते । यद्वा, "भूतिर्भस्मनिसम्पदि"। भूतिर्जन्म च । हे सम्पद्रूपे ! ऐश्वर्यादिरूपे । हे बाभ्रवि ! विभर्तिबभ्रु विष्णुस्तस्येयम्भगिनीवैष्णवी हे बाभ्रवि ! "विपुले नकुले विष्णौ बभ्रुर्ना कपिले त्रिषु"। हे तामसि ! तमोगुणसम्बन्धिनि जगत्संहा-रकर्त्रि नियतायत्हिनियते। यद्वा, "दैवन्दिष्टंभागधेयं भाग्यंस्त्रीनियतिर्विधिः"। हे ईशे स्वामिनि ! ईष्टेईशा पचाद्यच् ।

अविद्यारूपा नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ।

मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठा), भूति (ऐश्वर्यरूपा), बाभ्रवी (भूरे रंग की अथवा पार्वती), तामसी (महाकाली), नियता (संयमपरायणा) तथा ईशा (सब की अधीश्वरी) रूपिणी नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ।

सर्वतः पाणिपादान्ते सर्वतोऽक्षिशिरोमुखे ।
सर्वतः श्रवणघ्राणे ! नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
सर्वस्वरूपे ! सर्वेशे ! सर्वशक्तिसमन्विते ! ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि ! दुर्गे ! देवि ! नमोऽस्तु ते ॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि ! नमोऽस्तु ते ॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।

"अन्तो नाशेस्वरूपेचनिश्चयेऽवयवेऽवधौ। समीपेऽवसितेवन्धेयमेमृत्यावनेऽहसि"। सर्वतः सर्वत्रपाणिपादमन्तोऽवयवो यस्याः हे सर्वतः पाणिपादान्ते ! पाणयश्चपादाश्च-पाणिपादम् प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः । पादान्त्रेइतिपाठेसर्वतः पाणयश्चपादाश्च अन्त्राणिच पुरीतत्संज्ञानिप्राणसूत्राणि यस्याः सा तथोक्ता । अयन्तेयन्तेयन्तिवा अनया-ज्ञानविशेषमितिअयनी पाणिपादाद्युपचितिः । नराणामयनीनरायणीनरायण्याइ-यमधिदेवता नारायणी। सर्वतोऽक्षीणि चशिरांसि च मुखानिच यस्याः सा हे तथोक्ते!

सर्वंजगत्त्रयं स्वरूपं यस्याः सा हे सर्वस्वरूपे ! यद्वा, सर्वं स्वं रूपं यस्याः सा । हे सर्व-स्यईशेसर्वेशे ! सर्वाः शक्तयः सामर्थ्यलक्षणा ब्रह्मादिलक्षणाश्च ताभिः समन्विता हे सर्वशक्तिसमन्विते ! हे देवि ! त्वं भयेभ्यः नः देवान् त्राहि छान्दसम्परस्मैपदम् । यद्वा, त्रायते त्राः क्विपि रूपम् । त्राइवाचर त्राहिरक्षिके वाऽऽचर। सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वाचारे वा । त्राहीत्यव्ययम्वा । हे दुर्गे देवि ! नमस्ते तुभ्यमस्तु भिन्नवाक्यस्थ-त्वाद्देवीतिपदद्वयम्पौनरुक्त्येन न दुष्यति ।

हे देवि ! एतत्प्रत्यक्षासिद्धन्ते तव वदनं सौम्यंसुन्दरंलोचनत्रयेणसोमसूर्याग्निमये-

---

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि ! सब भयों से हमारी रक्षा करो, तुम्हें नमस्कार है ।

कात्यायनि ! यह तीन लोचनों से विभूपित तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकार के भयों से हमारी रक्षा करे, तुम्हें नमस्कार है ।

भद्रकालि ! ज्वालाओं के कारण विकराल प्रतीत होनेवाला, अत्यन्त भयङ्कर

त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि ! नमोऽस्तु ते ॥

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनाऽऽपूर्य या जगत् ।

सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुतानिव ॥

नालंकृतं नः अस्मान्सर्वभीतिभ्यः समस्तभयेभ्यः । यद्वा, सर्वाभियो याभ्यस्ताः सर्वभियः सर्वभियश्चताईतयश्चताभ्यः पातु रक्षतु । हे कात्यायनि ! नमस्ते तुभ्यमस्तु ईतितोऽप्योषध्यभावादन्नाभावाद्यज्ञभागाभावाद्यज्ञभागभुजाम्भयाभावः प्रार्थनीयः । कतः कश्चिद्दष्टि(षि) स्तस्यापत्यं स्त्रीतिगर्गादियञन्तात्यञश्चप्राचांष्फस्तद्धितेइत्यधिकृतसर्वत्रलोहितादिकतन्तेभ्यइतिस्त्रियांष्फः फस्यायनादेशः षित्त्वान्ङीषूकात्यायनी । यद्वा, कश्चब्रह्माअश्चविष्णुः तौ अततः सततं यथा क्रमंगच्छतः इतिकात्यौसरस्वतीचरमाच कर्मण्यण् । अण्णन्तान्ङीप् । वाणीरमयोरासमन्तादयनीपरमागतिः कात्यायनी । "सौम्यं स्यात्सुन्दरेसोमदेवताके बुधे ग्रहे" ।

भद्रा च सा काली च हे भद्रकालि ! ज्वालाभिः करालन्तुङ्गमत्युग्रमतिरौद्रमशेषाणामसुराणां सूदनं हिंसकं ते तव त्रिशूलं नोऽस्मान्भीतेर्भयात्पातु नमस्ते तुभ्यमस्तु । षूद्लक्षणेहिंसायामनुदात्तेत्सूदतेसूदनंनन्द्यादित्वाल्ल्युः । अन्यथाऽनुदात्तेतश्चहलादेरितिप्राप्तस्य युचः सूददीपदीक्षश्चेतिप्रतिषेधात्सूदकमितिस्यात् ।

या तावकी घण्टास्वनेन नादेन जगदापूर्य पूरयित्वादैत्यतेजांसि हिनस्ति सानोऽस्मान् पापेभ्योदैत्येश्च पातु । कंकेभ्यः कमिव । जगत्कर्तृ लोकः अनोभ्यः सुतानिव । अत्र छान्दसत्वेनअनः शब्दात्पञ्चम्याभ्यस् तस्यसुपांसुलुगित्यादिनालुक् । यथालोकः शकटेभ्यः सुतान्पाति तथा । यद्वा जनन्यांशकटेऽप्यनः । जनकेशकटेऽप्यनः । यथा अनः मातापिताचपापेभ्यः विघ्नेभ्यः पाति ।

और समस्त असुरों का संहार करनेवाला तुम्हारा त्रिशूल हमें भय से बचाये । तुम्हें नमस्कार है । देवि ! जो अपनी ध्वनि से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके दैत्यों के तेज नष्ट किये देता हैं, वह तुम्हारा घण्टा हमलोगों की पापों से उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे माता अपने पुत्रों की बुरे कर्मों से रक्षा करती है ।

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाऽद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।

हे चण्डिके ! असुराणामसृक्रुधिरम्वसामेदस्तद्रूपः पङ्कस्तेनचर्चितः व्याप्तः ते तव करे हस्ते उज्ज्वलः । यद्वा, करैः किरणैः उज्ज्वलः खड्गः नोऽस्माकङ्गतां वा शुभाय भवतु । हेदेवि ! त्वां वयन्नताः प्रणतामहे । "बलिहस्तांशवः कराः" ।

नृनये नृणन्ति न्यायेन व्यवहरन्तीति नराः । हेदेवि ! त्वदाराधनेन तुष्टा सती-त्वामाश्रितानां नराणामशेषान्रोगानपहंसि तेषाञ्च काम्यकामानकामानर्थान् ददासि । रजकस्यवस्त्रंददातीतिवत्सम्प्रदानाभावात्षष्ठ्येव । हे देवि ! त्वामा-श्रितानां नराणां न विपत्आपन्न विद्यते । "हिहेतावधारणे" । त्वामाश्रिता नराः आश्रयतामाश्रीयमाणताम्प्रयान्ति आश्रीयन्तेआश्रयाः कर्मण्येरच् । अन्यैराश्रीय-माणतांसेव्यमानताम्भजन्तीत्यर्थः । राजत्वन्देवत्वम्वाऽऽप्नुवन्तीतिभावः ।

हे अम्बिके देवि ! अद्येदानीन्त्वयाआत्मतनुं निजतनुं बहुधाब हुप्रकारैः अनेकैः

चण्डिके ! तुम्हारे हाथों में सुशोभित खड्ग, जो असुरों के रक्त और चर्बी से चर्चित है, हमारा मङ्गल करे । हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ।

देवि ! तुम प्रसन्न होनेपर सब रोगों को नष्ट कर देती हो और कुपित होनेपर मनोवाञ्छित सभी कामनाओं का नाश कर देती हो । जो लोग तुम्हारी शरण में जा चुके हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं । तुम्हारी शरण में गये हुए मनुष्य दूसरों को शरण देनेवाले हो जाते हैं ।

देवि ! अम्बिके ! तुमने अपने स्वरूप को अनेक भागों में विभक्त करके नाना

रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाऽम्बिके तत्प्रकरोति काऽन्या ॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥

ब्रह्माण्यादिशक्तिरूपैः कृत्वा धर्मद्विषांयज्ञादिकर्मद्रोहिणां महासुराणांशुम्भादीनां यत्कदनं विशसनं कृतन्तदेव तदन्या स्त्री त्वत्तोऽपरा का देवता प्रकरोति का कर्त्तुं शक्ताऽस्ति न काऽपि त्वमेका कर्तुं शक्नोषि नाऽन्येतिभावः। धर्मोऽत्र वैदिकः पारमर्षं सूत्रम्। अथाऽतो धर्मजिज्ञासा। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मइति।

हे देवि ! विवेकाः युक्तायुक्तविचाराः दीपा इव महातमः पटलपाटनपटवस्तेषु। विद्यासुचतुर्दशसुदीपायमानासु आन्वीक्षिक्यादिषु। यद्वा, विद्यासु ज्ञानप्रदमन्त्ररूपासु। शास्त्रेषु मनुस्मृत्यादिषु तथाऽऽद्येषुवाक्येषु वैदिकेषु पुराणेषु विद्यमानेषु। अनादरे सप्तमी तान्यनादृत्यतज्जन्यविवेकमपनीय। अतिमहान्धकारे ममत्वगर्त्तेएतद्विश्वमतीव विभ्रामयसि। सा त्वदन्या का। त्वमेवविष्णुमाया विश्वम्मोहयसि ममत्वेयोजयसि नाऽन्या। विभ्रामयसीत्यनित्यो मितां ह्रस्वः। यद्वा, हे देवि ! आद्येषुवाक्येषु शास्त्रेषु शोभनेषु अर्थेषु शास्त्रेषु या वित्सम्विद्विदुषी वा। त्वद्देवीतः अन्या का न काऽपि। त्वमेवविज्ञाऽन्येतिभावः। अथच हे देवि ! एतद्विश्वं कर्म अतिमहान्धकारे तमोगुणरूपे। ममेत्यव्ययम्। ममत्वं गर्त्तइव तस्मिन्ममत्वगर्त्तेमोहकूपे अतीव विभ्रामयसि व्यालोडयसि। या सा त्वदन्या नास्ति। विभ्रामयतीतिअन्यशब्दस्य शेषत्वात्प्रथमपुरुषः त्वदन्यः को भुङ्क्ते मदन्यः को भुङ्क्ते मदन्योऽन्योभुङ्क्तेत्वदन्योऽन्यो भुङ्क्तेइतिवत्।

प्रकार के रूपों से जो इस समय इन धर्मद्रोही महादैत्यों का संहार किया है, वह सब कौन दूसरी शक्ति कर सकती थी।

विद्याओं में, ज्ञान को प्रकाशित करनेवाले शास्त्रों में तथा आदिवाक्यों (वेदों) में तुम्हारे सिवा और किसका वर्णन है तथा तुमको छोड़कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है जो इस विश्व को अज्ञानमय घोर अन्धकार से परिपूर्ण ममतारूपी गड्ढे में निरन्तर भटका रही हो।

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्राऽरयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥

विश्वेश्वरि! त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥

हे देवि ! त्वं तत्र च तत्र स्थितासतीविश्वम्परिपासि । तत्र क । यत्र च रक्षांसिं दैत्याः उग्रविषाः नागाः तक्षकादयः यत्र च अरयः शत्रवः यत्र च दस्युबलानि चौर-समूहाः यत्र च दावानलः तथा यत्र चाऽब्धिमध्यन्तत्र सर्वत्रउपद्रवप्रसंगे स्मृता सती पतितान् रक्षसीत्यर्थः । "दवदावौवनारण्यवह्नी" ।

हे देवि ! त्वं विश्वेश्वरीइति यदतः त्वंविश्वम्परिपासि । यद्वा, विश्वेश्वरीविश्व-व्यापिनी असि अतः विश्वम्परितो रक्षसि । यद्वा, हे विश्वेश्वरिइतिपाठः । हे देवि ! त्वं विश्वात्मिकाऽसि इतिहेतोः विश्वं धारयसि । भवती विश्वस्य ईशः स्रष्टा रक्षिता-संहर्ता च ब्रह्मादिस्तस्यवन्द्याअभिवादनीया स्तुत्या च वर्त्तते । हे देवि ! त्वत्त्वयि त्वयिविषये भक्तिनम्राः स्युस्ते विश्वस्याश्रया आधारभूताः जगतान्धारयितारो भव-न्तीत्यर्थ ।

जहाँ राक्षस, जहाँ भयङ्कर विषवाले सर्प, जहाँ शत्रु, जहाँ लुटेरों की सेना और जहाँ दावानल हो, वहाँ तथा समुद्र के बीच में भी साथ रहकर तुम विश्व की रक्षा करती हो ।

हे विश्वेश्वरि ! तुम विश्व का पालन करती हो । विश्वरूपा हो, इसलिये सम्पूर्ण विश्व को धारण करती हो । तुम भगवान् विश्वनाथ की भी वन्दनीय हो । जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्व को आश्रय देने-वाले होते हैं ।

देवि ! प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाऽऽशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि ! विश्वार्तिहारिणि ! ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये ! लोकानां वरदा भव ॥

हे देवि ! त्वं नोऽस्माकं प्रसीद । तथैवाऽधुना इदानीं शुम्भाद्यसुरवधाद्धेतोः पर्यपीपलः तथैवाऽग्रेपि सम्भाविताया अरिभीतेः नित्यं परिपालय ! हेदेवि ! त्वंसर्वजगताम्पापानि प्रशमं क्षयमाशु क्षिप्रं नय। नयतिर्द्विकर्मकः। अथच लोकानाम्। अत्रह्यधर्मउत्पातशब्देन विवक्षितः । नाशहेतुत्वात्तस्य पाकः परिणामस्तेनजनितानुपसर्गानुपद्रवान्वधपातादीनाशु प्रशान्तिं प्रापयेति वयं देवाः त्वदेकशरणाः प्रार्थयामहे ततः प्रसीदेत्यर्थः। आशुउत्पातेत्यत्रसन्धिरविवक्षितः । आशुह्यु त्पातेति वा पाठः ।

विश्वस्यार्तिं हरति हे विश्वार्तिहारिणि ! त्वं प्रणतानां भक्तिनम्राणां प्रसीद । त्रयो लोकाः त्रैलोक्यं चातुर्वण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ् । तत्र वसन्तिये तेषान्तैर्वा हे ईड्ये स्तुत्ये । कृत्यानां कर्त्तरि वा षष्ठी । लोकानां वरदाऽभीष्टदा भव ।

हे सुरगणाः ! अहं युष्माकं वरदाऽस्मिप्रीताऽस्मि यम्वरं मनसा इच्छथ तं जगतामुपकारकं वरं वृणुध्वमहं प्रयच्छामि । दाणोयच्छः । वृञ्वरणेआत्मनेपदन्ध्वम् । सवाभ्यांवामौ। स्वादिभ्यःश्नुः। वृणीध्वमितिपाठेक्र्यादिः लोटोध्वम् । ईहल्यघोः प्वादीनां ह्रस्वः।यं तमितिपुंसि। "देवाद्वृते वरंश्रेष्ठेत्रिषुक्लीबम्मनाक्प्रिये" । वृणुध्वंप्रार्थयध्वमित्यर्थः ।

देवि ! प्रसन्न होओ। जैसे इस समय असुरों का वध करके तुमने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओं के भय से बचाओ। सम्पूर्ण जगत् का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापों के फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले जैसे बड़े-बड़े उपद्रवों को शीघ्र दूर करो।

विश्व की पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हम तुम्हारे चरणों पर पड़े हुए हैं, हमपर प्रसन्न होओ। त्रिलोक-निवासियों की पूजनीया परमेश्वरि! सब लोगों को वरदान दो।

देव्युवाच ।

वरदाऽहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥

देवा ऊचुः ।

सर्वा(सर्व)बाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याऽखिलेश्वरि !

हे अखिलस्य विश्वेश्वरि ! व्यापिके ! हे त्रैलोक्यस्वामिनि ! त्वया त्रैलोक्यस्य सर्वबाधा प्रशमनं सर्वदुःखोपशमः । सर्वाबाधेतिपाठे आङभिव्याप्ता । आसमन्ताद्बाआ-बाधा । अस्माकं वैरिणः दैत्यास्तेषां विनाशनमेवम्विधञ्जगदुपकारकं कार्यं कर्त्तव्यमि-ति वरप्रार्थनम् । यद्वा, हेदेवि अखिलेश्वरि ! त्वया त्रैलोक्यस्यउपकारकं कर्म एतत्कार्यं कर्त्तव्यम् । कीदृशन्तत् । सर्वबाधानां प्रशमनं अस्मद्वैरिणां विनाशनम् ।

हेदेवाः ! शृणुत पूर्वं यदुपकृत्यैएतेपराक्रमामयाकृताः । अतः परमेष्यतोऽपिमत्क-र्त्तव्याञ्जजगदुपकारान्भवतामपि तोषाय कथयामि । वैवस्ततमन्वन्तरेभविष्यत्यष्टा-विंशतिमे युगे प्राप्ते सति शुम्भश्चान्यावेवनत्विदानीं निहतौ यौ । ततोऽन्यावेव शुम्भ-निशुम्भनामानौदैत्यावुत्पत्स्येते उद्भविष्यतः । अष्टभिरधिकाविंशतिः अष्टाविंशतिः द्व्यष्टनः संख्यायामित्यात्त्वमष्टमाविंशतेर्युगानां कृतादीनां पूरणंयद्युगं विष्णोरष्टमाव-तारोपलक्षितन्तदष्टाविंशतितमम् । तस्यपूरणेडडिति डट् प्रत्ययस्यविंशत्यादिभ्यस्त-मडन्यतरस्यामितितमडागमः । तत्र पृषोदरादित्वात्तशब्दलोपः । यत्तु कश्चिदाह । माङ्मानेस्त्रियाम्भावेसम्पदादित्वात्क्विप् । मानं मा अष्टाविंशतिमानंमायस्ययुगस्येति वाऽष्टाविंशतेरिवमानं यस्य युगस्येति वा विगृह्य बहुव्रीहौ नपुंसकेह्रस्वत्वेअष्टाविंशति

देवी बोलीं—हे देवगण ! मैं वर देने को तैयार हूं । तुम्हारे मनमें जिसकी इच्छा हो, वह वर माँग लो । संसार के लिये उस उपकारक वर को मैं अवश्य दूंगी ।

देवता बोले—सर्वेश्वरि ! तुम इसी प्रकार तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को

एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥

देव्युवाच ।

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे ।

शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥

मं युगन्ततः सप्तम्येकवचनेअष्टाविंशतिमे इति । तावन्माते क्विपि घुमास्थादिनाईत्त्वप्र-सङ्गोदुर्निवारस्तिष्ठतु युगमन्यपदार्थः कथंस्यात्यावतांयुगानामष्टाविंशतिः तत्परिमि-ता अपि युगरूपाअष्टाविंशतिसंख्याका एवान्यपदार्थाइतिअष्टाविंशतितममेवयुगं द्वा-परन्तद्रूपं कलियुगादिरूपं न सेत्स्यतीति । यथा पञ्चसु पाण्डवेषु पञ्चमः सहदेवस्तत्र-मागमः पञ्चमाः मानं यस्यसइत्युक्ते पञ्चानांपूरणः सहदेवोऽन्यपदार्थत्वेन न गृह्यते । किन्तु पञ्चाऽपि ते मिलिताः पञ्चत्वसंख्यापरिमिताः इतिपञ्चपरिमिताः पञ्चमाइति युधिष्ठिरादयः पञ्चाऽप्यन्ये पदार्थतया गृह्यन्ते न तु सहदेव एव । तस्मात्प्रागुक्तएवअ-ष्टाविंशतिमे वा व्युत्पत्तिः पृषोदरादित्वेन सैव सभ्या । अष्टाविंशतिमे युगे द्वापरान्ते कलियुगादौ प्राप्ते । 'यानाद्यङ्गे युगः पुंसियुगं युग्मे कृतादिषु" । ततोऽहं नन्दगोपस्य कुले गृहे । "कुलं वंशे गृहेऽपि तत्" । जाता उत्पन्ना । यशोदाया नन्दगोपस्त्रियाः गर्भात्स-म्भवो जन्म यस्याः सा । विन्ध्याचलनिवासिनी सती तौ शुम्भनिशुम्भाख्यावसुरौ नाशयिष्यामि ।

अहम्पुनरपि वैवस्वतमन्वन्तरएवाऽष्टाविंशतिमे युगे द्वापरेऽतीते कलौ युगे प्राप्ते विरुद्धा प्रजासु चित्तिर्ज्ञानं यस्य विप्रचित्तिर्नाम कश्चिद्दानवः तस्यापत्यानि वैप्रचित्ताः तानतिरौद्रेण रूपेण पृथ्वीतले अवतीर्य प्रादुर्भावमुपेत्य हनिष्यामि । "तु स्याद्भेदेऽवधारणे" ।

शान्त करो और हमारे शत्रुओं का इसी प्रकार नाश करती रहो ।

देवी बोली—हे देववृन्द ! वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें युग में शुम्भ और निशुम्भ नाम के दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे ।

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु (श्च) दानवान् ॥

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥

तान्वैप्रचित्तान्महासुरान् उग्रान् रौद्रान्भक्षयन्त्याः मम दन्ताः रक्ताआरक्ताएव भविष्यन्ति अतएव दाडिमीपुष्पवदरुणवर्णाः भविष्यन्ति ।

ततो हेतोः मां स्तुवन्त्यः देवताः स्वर्गे अततं शश्वत्रक्तदन्तिका संज्ञया व्याहरिष्यन्ति कथयिष्यन्ति । देवाएव देवताः । स्वार्थेतल् । तथामानवाश्च मर्त्यलोके भुवि मां सततं स्तुवन्तः रक्ताः दन्ता यस्याः सा रक्तदन्तिका तां स्तोष्यन्ति ।

भूयश्च पुनरपि शतं वर्षाणिपरिमाणंयस्याः शतवार्षिकी । तदस्यपरिमाणमितिवुञ् । तद्धितार्थे समासः । वर्षस्याभविष्यतीत्युत्तरपदवृद्धिः । वर्षाल्लुक्चेतिपाक्षिको लुक् । स्त्रियां ङीप् । तस्यामनावृष्टौ सत्यामनम्भसि नदीतडागादावपिजलशून्यायाम्भूमौ-मुनिभिः संस्तुता । अयोनिजा सम्भविष्यामि स्वयमेवाऽऽविर्भविष्यामि । न आ समन्ताद्वृष्टिरनावृष्टिः । यद्वा, नास्त्येवासमन्ताद्वृष्टिर्यस्यामितौसाऽनावृष्टिस्तस्याम् । संस्तुतासंस्मृतेति पाठद्वयम् ।

तब मैं नन्दगोप के घर में उनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से अवतीर्ण हो विन्ध्याचल में जाकर रहूंगी और उक्त दोनों असुरों का नाश करूंगी ।

फिर अत्यन्त भयङ्कररूप से पृथ्वी पर अवतार ले मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवों का वध करूंगी ।

उन भयङ्कर महादैत्यों को भक्षण करते समय मेरे दांत अनार के फूल की भांति लाल हो जायंगे ।

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता(स्मृता) भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।

ततः प्रादुर्भावानन्तरं नेत्राणांशतेन स्तोतॄन्मुनीन्निरीक्षिष्यामीति यत् ततो हेतोर्मा-मनुजाः शतमक्षीणि यस्याः शताक्षी तामितीत्थमन्वर्थसंज्ञया कीर्त्तयिष्यन्ति । ईक्ष-दर्शनेअनुदात्तेत्छान्दसम्परस्मैपदम् । निरीक्षिष्ये यतो मुनीनिति वा पाठः ।

हे सुरास्ततः शताक्षीतिसंकीर्त्तनादनन्तरमहमात्मदेहसमुद्भवैः ममशरीरादुत्प-द्यमानैः शाकैः प्राणधारकैः हरीतकैः हरीतकैः पत्राद्यैः साधनैः आवृष्टेः आभविष्य-न्तीं वृष्टिमवधिं कृत्वा यावत्वृष्टिर्भवति तावन्तं कालमखिलं समस्तं लोकं भरिष्यामि पोषयिष्यामि 'डुभृञ्धारणपोषणयोः' ऋद्धनोःस्येइतीडागमः। "अस्त्रीशाकंहर(री)त-कम्"। शाकाख्यंपत्रपुष्पादि। यदाहुः "पत्रमूलकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकाः । त्वक्पुष्पं कवकञ्चेतिशाकन्दशविधंस्मृतम्" ।

तदा भुविशाकम्भरीति विख्यातिं संज्ञाञ्च यास्यामि प्राप्स्यामि। तत्रैव तदैव च दुर्गमाख्यं महासुरन्दुर्गमं नाम महान्तमसुरम्वधिष्यामि जनिवध्योश्चेतिनिर्देशाद्वधिः प्रकृत्यन्तरमस्तीति विज्ञेयम् । वधहिंसायाम्भ्वादिः परस्मैपदी । हनिष्यामीति वा

तब स्वर्ग में देवता और मर्त्यलोक में मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे ।

फिर जब पृथ्वी पर सौ वर्षों के लिये वर्षा रुक जायगी और पानी का अभाव हो जायगा, उस समय मुनियों के स्तवन करने पर मैं पृथ्वी पर अयोनिजारूप में स्वयं प्रकट होऊंगी ।

कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।

पाठः । शाकमितिमान्तमव्ययञ्चाऽस्ति बिभर्तिइतिभरिः सर्वधातुभ्य इः । कृदिकारादक्तिनो वा ङीप्वक्तव्यः सुप्सुपेतिसमासः । शाकम्भरिः । यद्वा, फलेग्रहिरात्मम्भरिश्चेतिचकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः तेन लोकभरणार्थं स्वशरीरोद्भवानि शाकानि बिभर्तिशाकम्भरिः । इप्रत्ययः । उपपदस्यनुमागमश्च । "पाठाव्याख्याश्चधातूनान्दृश्यन्तेस्वैरिणः क्वचित्" । तस्माद्दुर्गासुरवधाद्धेतोः विख्यातं प्रसिद्धं मे दुर्गादेवीतिविख्यातंनामधेयं भविष्यति । दुर्गासुरोहन्तव्यत्वेन यस्याः सा दुर्गा । अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् स्त्रियां टाप् ।

हे देवाः! पुनश्च यदा हिमाचले भीमं घोरं रूपं कृत्वा रक्षोभ्यस्त्रस्तानां मुनीनान्त्राणकारणाद्धेतोः रक्षांसि राक्षसान् भक्षयिष्यामि । क्षययिष्यामि इति पाठेक्षयम्प्रापयिष्यामीति प्रातिपदिकाद्धात्वर्थेबहुलमिष्ठवच्चेति णिच् । अथवा क्षयप्रेरणे चुरादिः प्रेरयिष्यामीत्यर्थः ।

तदा मान्देवीमानम्रमूर्त्तयः भक्तिप्रह्वकायाः सन्तः सर्वेऽपि मुनयः वसिष्ठादयः

और सौ नेत्रों से मुनियों की ओर देखूंगी । अतः सबलोग 'शताक्षी' इस नाम से मेरा स्तवन करेंगे ।

हे देवताओ ! उस समय मैं अपने शरीर से उत्पन्न हुए शाकों द्वारा समस्त संसार का भरण-पोषण करूंगी । जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक वे शाक ही सब के प्राणों की रक्षा करेंगे ।

ऐसा करने के कारण पृथ्वी पर 'शाकम्भरी' के नाम से मेरी ख्याति होगी ।

तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाऽहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥

स्तोष्यन्ति । तत्ततः भीमरूपेणरक्षोभक्षणाद्धेतुतः विख्यातं प्रसिद्धं भीमादेवी तिविश्रुतं नाम भविष्यति । बिभ्यत्यस्मादिति भीमं भीमादयोऽपादाने निपातिताः ।

हे देवाः ! यदा त्रैलोक्ये अरुणो नाम महासुरः महाबाधाम्महतीं पीडाङ्करिष्यति। लोकान्बाधिष्यतेअतितरान्तदाअहम् असंख्येयषट्पदम्भ्रामररंरूपम्भ्रमरसम्बन्धिनीं मूर्तिं कृत्वा त्रैलोक्यस्य हितार्थाय अरुणं महासुरं वधिष्यामि तदा लोकाः सर्वत्र मांम्भ्रामरीत्येव स्तोष्यन्तिभ्रमरस्येयमाकृत्या भ्रामरीदेवी । असंख्येयाः संख्यातुमक्षय्याः षट्पदाः भ्रमरमूर्तीर्भूत्वा अरुणासुरं हनिष्यन्ति ततः साभ्रामरीति नाम्ना लोकैः संकीर्त्तयिष्यते सर्वत्रेत्यर्थः । अरुणस्यापत्यं पुमानारुणइतिच्छेदे अतइञ्बाधित्वाशिवा दित्वादण्वा ।

उसी अवतार में मैं दुर्गम नामक महादैत्य का वध करूंगी ।

इससे मेरा नाम 'दुर्गादेवी' के रूप से प्रसिद्ध होगा । फिर जब मैं भीमरूप धारण करके मुनियों की रक्षा के लिये हिमालय पर रहनेवाले राक्षसों का भक्षण करूंगी, उस समय सब मुनि भक्ति से नतमस्तक होकर मेरी स्तुति करेंगे ।

तब मेरा नाम 'भीमादेवी' के रूप में विख्यात होगा । जब अरुण नामक दैत्य तीनों लोकों में भारी उपद्रव मचायेगा ।

तदाऽहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥
तदा तदाऽवतीर्याऽहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ॐ ॥

॥ इति श्रीदेवकृता देविस्तुतिः समाप्तः ॥

इदानीं देव्यवताराणां तत्कार्याणाञ्चानन्त्यात्साकल्येन वक्तुमशक्यत्वात्संक्षिप्य तत्कथामुपसंहरति । हे देवाः ! इत्थमुक्तानुसारेण प्रकारेण यदा यदा दानवेभ्यउत्तिष्ठतिउत्थास्यति वा दानवोत्थाः दानवेभ्यः समुद्भवाबाधापीडा लोकानां भविष्यतिउत्पत्स्यते । तदा तदा अहन्तत्तत्कार्यानुरूपमवतीर्यप्रादुर्भावमवाप्यअरिसंक्षयं शत्रुविनाशं करिष्यामि । दानवोत्थेतिसुपि स्थः कः कर्तरि ।

तब मैं तीनों लोकों का हित करने के लिये छै पैरोंवाले असंख्य भ्रमरों का रूप धारण करके उस महादैत्य का वध करूंगी ।

उस समय सब लोग 'भ्रामरी' के नाम से चारों ओर मेरी स्तुति करेंगे । इस प्रकार जब-जब संसार में दानवी बाधा उपस्थित होगी, तब-तब अवतार लेकर मैं शत्रुओं का संहार करूंगी ।

ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता, द्वितीयाया ऋचो जगती, शिष्टानां त्रिष्टुप् छन्दः, देवीमहात्म्यपाठे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला ॥

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।

अहमित्यष्टर्चंत्रयोदशंसूक्तं वागाम्भृणस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्नाम्नी ब्रह्मविदुषी स्वात्मानमस्तौत् । अतः सा ऋषिः । सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता । तेन

जो सिंह की पीठपर विराजमान हैं, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट है, जो मरकतमणि के समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओं में शङ्ख, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, तीन नेत्रों से सुशोभित होती है, जिनके भिन्न-भिन्न अङ्ग बाँधे हुए बाजूबन्द, हार, कङ्कण, खनखनाती हुई करधनी और रुनझुन करते हुए नूपुरों से विभूषित हैं तथा जिनके कानों में रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हों ।

(महर्षि अम्भृण की कन्या का नाम वाक् था । वह बड़ी ब्रह्मज्ञानिनी थी । उसने देवी के साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थी । उसी के ये उद्गार हैं) । मैं सच्चिदानन्दमयी सर्वात्मा देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवगणों के रूप में विच-

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।

हि तादात्म्यमनुभवन्ती सर्वजगद्रूपेण सर्वस्याधिष्ठानत्वेन च अहमेवभवामीति स्वात्मानं स्तौति । द्वितीया जगती । शिष्टाः सप्त त्रैष्टुभः । तथा चानुक्रान्तम् । अहमष्टौ वागाम्भृणीतुष्टावात्मानं द्वितीयाजगतीति गतो विनियोगः । अहमिति । अहं सूत्रस्य द्रष्ट्री वागाम्भृणी वागाम्भृणंयद्ब्रह्मजगत्कारणं तद्रूपाभवन्ती रुद्रेभिः रुद्रैः एकादशभिः इत्थं भावे तृतीया । तदात्मना चरामि । एवं वसुभिरित्येतत्तदात्मनाचरामीति योज्यम् । उताऽपिच आदित्यैः समं चरामि । उताऽपिच विश्वदेवैश्च तथा मित्रावरुणौ मित्रञ्चवरुणञ्च । सुपांसुलुगिति द्वितीयाया आकारः । उभाउभौ अहमेवब्रह्मीभूता बिभर्मि धारयामि । इन्द्राग्नी अप्यहमेव धारयामि । उभाउभौअश्विनाअश्विनावपि अहमेव धारयामि मयि हि सर्वं जगत् शुक्तौरजतमिवाऽध्यस्तं सत् दृश्यते । माया च जगदाकारेण विवर्त्तते । तादृश्या मायाया आधारत्वेनाऽसङ्गस्याऽपि ब्रह्मणः उक्तस्य-सर्वस्योपपत्तिः ।

अहमिति । अहमाहनसंहन्तव्यमभिषोत्तव्यं सोमम् । यद्वा, शत्रूणामाहन्तारं दिवि वर्तमानन्देवतात्मानं सोममहमेवबिभर्मि तथा त्वष्टारम् । उतअपि च पूषणंभगमहमेव बिभर्मि । तथा हविष्मतेहविर्युक्तायसुप्राव्ये शोभनं हविर्देवानांप्रापयित्रे तर्पयित्रे । अवतेस्तर्पणार्थात् अवितृस्तृतन्त्रिभ्यईरिति ईकारप्रत्ययः । चतुर्थ्येकवचने यणि उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्येत्यनुदात्तस्य सुपः स्वरितत्वम् । सुन्वते-

---

रती हूं । मैं ही मित्र और वरुण दोनों को इन्द्र और अग्नि को तथा दोनों अश्विनीकुमारों को धारण करती हूं ।

मैं ही शत्रुओं के नाशक आकाशचारी देवता सोम को, त्वष्टा प्रजापति को तथा पूषा और भग को भी धारण करती हूं । जो हविष्य से सम्पन्न हो देवताओं

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम्(न्ताम्) ॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।

सोमाभिषवं कुर्वते । शतुरनुमइतिचतुर्थ्या उदात्तत्वम् । ईदृशाय यजमानाय द्रविणं धनं यागफलरूपम् । अहमेव ददामि प्रयच्छामि । एतच्च ब्रह्मणः फलदातृत्वं फलमतउत्पत्तेरित्यधिकरणे भगवता भाष्यकारेण समर्थितम् ।

अहमिति । अहं राष्ट्री ईश्वरनामैतत् । सर्वस्य जगतः तथा वसूनां धनानांसङ्गमनी सङ्गमयित्री उपासकानाम्प्रापयत्री । चिकितुषी यत्साक्षात्कर्त्तव्यं परम्ब्रह्मतज्ज्ञातवती स्वात्मतया साक्षात्कृतवती । अतएव यज्ञियानां यज्ञार्हाणाम्प्रथमा मुख्या । या एवं गुणविशिष्टा अहन्तान्माभूरिस्थात्रां बहुभावेनप्रपञ्चात्मा तिष्ठमानाम् ! भूरि भूरीणि बहूनि भूतजातानि आवेशयन्तीं जीवभावेनात्मानं प्रवेशयन्तीमीदृशीं पुरुत्राबहुषुदेशेषु व्यदधुः विदधति कुर्वन्ति । उक्तप्रकारेण वैश्वरूप्येणाऽवस्थानात् । यद्यत्कुर्वन्ति तत्सर्वं मामेव कुर्वन्तीत्यर्थः ।

मयासइति । य अन्नमत्ति सः उक्तशक्तिरूपया मयैवाऽन्नमत्ति यश्चविपश्यति सोऽपि-

---

को उत्तम हविष्य की प्राप्ति कराता है तथा उन्हें सोमरस के द्वारा तृप्त करता है, उस यजमान के लिये मैं ही उत्तम यज्ञ का फल और धन प्रदान करती हूं ।

मैं सम्पूर्ण जगत् की अधीश्वरी, अपने उपासकों को धन की प्राप्ति करानेवाली साक्षात्कार करने योग्य परब्रह्म को अपने से अभिन्न रूप में जाननेवाली तथा पूजनीय देवताओं में प्रधान हूं । मैं प्रपञ्चरूप से अनेक भावों में स्थित हूं । सम्पूर्ण भूतों में मेरा प्रवेश है । अनेक स्थानों में रहनेवाले देवता जहाँ कहीं-कहीं भी जो कुछ भी करते हैं, वह सब मेरे लिये करते हैं ।

जो अन्न खाता है, वह मेरी शक्ति से ही खाता है (क्योंकि मैं ही भोक्तृ-

अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत(तं) श्रद्धिवन्ते वदामि ॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।

मयैव पश्यति । यश्च प्राणिति श्वासोच्छ्वासादिव्यापारं करोति । सोऽपि मयैव प्राणरूपया करोति । अन प्राणने अदादिकः रुदादिभ्यः सार्वधातुके इतीडागमः । अनितेरिति णत्वम् । यश्च परेणोक्तवचनं शृणोति विविधं रूपं पश्यति सोऽपि ज्ञानशक्त्यात्मिकया मयैव पश्यति । सोऽपि मयैव शृणोति । श्रुश्रवणे श्रुवः शृचेतिश्नुप्रत्ययः धातोः शृभावश्च । येईदृशीमन्तर्यामिरूपेण स्थितां माज्ञानन्ति ते मामन्तवोऽमन्यमानाः अजानन्तः उपक्षियन्ति उपक्षीणाः संसारेण न हीना भवन्ति । मनेरौणादिकस्तुप्रत्ययः नञ्समासे व्यत्ययेनोदात्तत्वम् । यद्वा, भावे तुप्रत्ययः । ततो बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । माममन्तवः मद्विषयज्ञानरहिता इत्यर्थः । हेश्रुतविश्रुतसखे श्रुधि मया वक्ष्यमाणं शृणु छान्दसोविकरणस्य लुक् । श्रुशृणुपृकृवृभ्यइतिहेर्धिभावः किन्तच्छ्रोतव्यं श्रद्धिवं. श्रद्धिः श्रद्धा तया युक्तं श्रद्धधानेन लभ्यमित्यर्थ । श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिरिष्यत इति श्रच्छब्दस्य उपसर्गवद्वर्तनात् । उपसर्गेघोः किरिति किप्रत्ययः मत्वर्थीयो वः । ईदृशम्ब्रह्मात्मकं वस्तु ते तुभ्यम्वदामि उपदिशामि ।

अहमेवेति । अहं स्वयमेव इदं वस्तु ब्रह्मात्मकं वदाम्युपदिशामि । देवेभिः देवैः इन्द्रादिभिरपि जुष्टं सेवितम् । उताऽपि च मानुषेभिर्मनुष्यैरपि जुष्टम् । ईदृग्विधात्मिकाऽहं

शक्ति हूं); इसी प्रकार जो देखता है, जो साँस लेता है तथा जो कही हुई बात सुनता है, वह मेरी ही सहायता से उक्त सब कर्म करने में समर्थ होता है। जो मुझे इस रूप में नहीं जानते, वे न जानने के कारण ही हीन दशा को प्राप्त होते हैं। हे बहुश्रुत ! मैं तुम्हें श्रद्धा से प्राप्त होनेवाले ब्रह्मतत्त्व का उपदेश करती हूं, सुनो।

मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्यों द्वारा सेवित इस दुर्लभ तत्त्व का वर्णन करती हूं। मैं जिस-जिस पुरुष की रक्षा करना चाहती हूं, उस-उस को सब की

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥
अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।

यङ्कामये यं यं पुरुषं रक्षितुमहं वाञ्छामि । तं तं पुरुषमुग्रं कृणोमि सर्वेभ्योऽधिकं करोमि । तमेव ब्रह्माणं स्रष्टारं करोमि । तमेव ऋषिमतीन्द्रियार्थदर्शनं करोमि । तमेव सुमेधां शोभनप्रज्ञञ्च करोमि । अष्टमस्यसप्तमे एकादशोवर्गः ।

अहमिति । पुरा त्रिपुरविजयसमये रुद्राय रुद्रस्य षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । महादेवस्य धनुश्चापमहमातनोमि ज्यया आततंकरोमि । किमर्थं ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणानां द्वेष्टारम् । शरवे शरुं हिंसकन्त्रिपुरनिवासिनमसुरम् । हन्तवे हन्तुं हिंसितुम् । हन्तेस्तुमर्थे सेसेनिति-तवे प्रत्ययः । अन्तश्चतवै युगपदिति आद्यन्तयोर्युगपदुदात्तत्वम् । शॄ हिंसायामित्य स्मात् शृस्नुहीत्यादिना उप्रत्ययः । क्रियाग्रहणं कर्तव्यमितिकर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी । उशब्दः पूरकः । अहमेव समदं संमाद्यन्त्यस्मिन्निति समदं संग्रामः योद्धृजनार्थं शत्रुभिः सह संग्राममहमेव कृणोमि करोमि । तथा द्यावापृथिवी दिवञ्च पृथिवीञ्च अन्तर्या-मितया अहमेव विवेश प्रविष्टवती ।

अहंसुव इति । द्यौः पितेति श्रुतेः । पिताद्यौः पितरन्दिवमहं सुवे प्रसुवे जनयामि ।

अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देती हूं । उसी को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, परोक्षज्ञान-सम्पन्न ऋषि तथा उत्तम मेधाशक्ति से युक्त बनाती हूं ।

मैं ही ब्रह्मद्वेषी हिंसक असुरों का वध करने के लिये रुद्र के धनुष को चढ़ाती हूं । मैं ही शरणागतजनों की रक्षा के लिये शत्रुओं से युद्ध करती हूं तथा अन्त-र्यामीरूप से पृथ्वी और आकाश के भीतर व्याप्त रहती हूं ।

मैं ही इस जगत् के पितारूप आकाश को सर्वाधिष्ठानस्वरूप परमात्मा के

ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥
अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।

"आत्मन आकाशः सम्भूतः" इतिश्रुतेः । कुत्रेति तदाह । अस्यपरमात्मनः मूर्धन् मूर्धनि उपरिकारणभूते तस्मिन्दिवि यद्यत्कार्यजातं सर्वं वर्तते । तन्तुषु पट इव । मम च योनिः कारणम् । समुद्रे समुद्रवन्त्यस्माद्भूतजातानि इति समुद्रः परमात्मा । तस्मिन्नप्सु व्यापनशीलासु धीवृत्तिषु अन्तर्मध्ये यद्ब्रह्मचैतन्यन्तन्मम कारणमित्यर्थः । यतः ईदृ-ग्भूताऽहमस्मि ततो हेतोः विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि अनुप्रविश्य वितिष्ठे विविधं प्राप्य तिष्ठामि । समवप्रविभ्यः स्थइत्यात्मनेपदम् । उताऽपि च अमूं द्यां विप्रकृष्टदेशेऽवस्थितं स्वर्गलोकम् उपलक्षणमेतत् । एतदुपलक्षितं कृत्स्नं विकारजातं वर्ष्मणा कारणभूतेन मायात्मकेन मदीयेन देहेन उपस्पृशामि । यद्वा अस्य भूलोकस्य मूर्धन् मूर्धनि उपरि पितरमाकाशं सुवे । समुद्रे जलधौ । अप्सु उदकेषु । अन्तः मध्ये मम योनिः कारणभूतः अम्भृणाख्यऋषिर्वर्तते । यद्वा, समुद्रे अन्तरिक्षे अप्सु अम्मयेषु देवशरीरेषु मम कारणभूतं ब्रह्मचैतन्यं वर्तते । ततोऽहङ्कारात्मिका सती सर्वाणि भुवनानि व्याप्नोमि । अन्यत्समानं पूर्वेण ।

अहमेवेति । विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि कार्याणि आरभमाणा कारणरूपेणोत्पादयन्ती अहमेव परेण अनधिष्ठिता स्वयमेव प्रवामि प्रवर्ते वातइव यथा वातः परेणाऽप्रेरितः सन् स्वेच्छयैव प्रवाति तद्वत् । उक्तं सर्वं निगमयति । परोदि-

---

ऊपर उत्पन्न करती हूं । समुद्र (सम्पूर्ण भूतों के उत्पत्तिस्थान परमात्मा) में तथा जल (बुद्धि की व्यापक वृत्तियों) में मेरे कारण (कारणस्वरूप चैतन्य ब्रह्म) की स्थिति है, अतएव मैं समस्त भुवन में व्याप्त रहती हूं तथा उस स्वर्गलोक का भी अपने शरीर से स्पर्श करती हूं ।

मैं कारणरूप से जब समस्त विश्व की रचना आरम्भ करती हूं, तब दूसरों के

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सम्बभूव ॥

॥ इति ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम् समाप्तः ॥

वेति। परइति सकारान्तं परस्तादित्यर्थे वर्त्तते यथा अधइत्यधस्तादर्थे तद्योगे च तृतीया सर्वत्र दृश्यते। दिवः आकाशस्य परस्तात्। एना पृथिव्याद्वितीयाटौस्स्वेन इतिइदम-एनादेशः। सुपां सुलुगिति तृतीया आजादेशः। अस्याः पृथिव्याः परः परस्तात्। द्यावा पृथिव्योरुपादानमुपलक्षणम्। एतत् उपलक्षितात्सर्वस्माद्भूतजातात् परस्ता-द्वर्त्तमाना असङ्गोदासीनकूटस्थब्रह्मचैतन्यरूपाऽहं महिना महिम्ना एतावती सम्बभूव। एतच्छब्देन उक्तं सर्वं परामृश्यते। एतावत्परिमाणमस्याः यत्तदेतेभ्यः परिमाणइति वतुप्। आसर्वनाम्न इत्यात्वम् सर्वजगदात्मना अहं सम्भूताऽस्मि। महच्छब्दादिम-निचि टेरिति टिलोपः। ततस्तृतीयायामुदात्तनिवृत्तिस्वरेण तस्याउदात्तत्वम्। छान्दसो मलोपः। अष्टमस्य सप्तमे द्वादशोवर्गः।

प्रेरणा के बिना स्वयं ही वायु की भाँति चलती हूं, स्वेच्छा से ही कर्म में प्रवृत्त होती हूं। मैं पृथ्वी और आकाश दोनों से परे हूं। अपनी महिमा से ही मैं ऐसी हुई हूं।

अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।

शिवायै मङ्गलहेतवे भवान्यै नमः । पुंयोगे तु शिवस्य स्त्री शिवा । प्रकृतिः जगत्कारणं सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था। यद्वा, अङ्गमन्त्रापेक्षया मूलमन्त्रसात्रात्मिका देवता प्रकृतिः । यद्वा, प्रत्ययात्पूर्वा प्रकृतिः । यदाहुः "प्रकृतिः पार्वती साक्षात्प्रत्ययस्तु महेश्वरः । अर्द्धनारीश्वरः शब्दः कामधुग्वः प्रसीदतु" इति तस्यैनमः । भद्रायैनमः भद्रा सर्वमङ्गला भद्ररूपेत्यर्थः । तां प्रसिद्धामस्मद्वरदामम्बां नियताजितेन्द्रियाः प्रणता नम्रीभवामः । स्मशब्दः पूरणेऽव्ययम् । नियत्यैप्रणतात्स्मनामितिपाठे भक्तिप्रह्वस्वभावानां पुंसां नियत्यै दिष्ट्यै नमः भाग्यरूपायैइत्यर्थः । "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः" ।

रुद्रस्येव रौद्रमुग्ररूपमस्त्यस्या रौद्रा तस्यै नमः । रौद्रशब्दादर्शआदित्वादच् । नेर्ध्रुवेत्यप् । नित्यायै कालावस्थितायै । गुरीउद्यमे तदादिरनुदात्तेत् गुरते गुरः इगुपधत्वात्कः । गुरएव गौरः स्वार्थेऽण् । स्त्रियां ङीप् । यद्वा, वर्णवाचित्वेन रूढत्वात् षिद्गौरादिभ्यश्चेति निपातनात्साधुत्वे ङीष् । गौर्य्यै पार्वत्यै नमः । गौरीगौरवर्णयोगात् । यद्वा, गुङ्अव्यक्ते शब्दे अतः गुणादौ ऋज्रेन्द्राग्रेत्यादि सूत्रेणरनिवृद्धौ निपातितायां

देवता बोले—देवी को नमस्कार है, महादेवी शिव को सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्रा को प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक जगदम्बा को नमस्कार करते हैं।

रौद्रा को नमस्कार है। नित्या, गौरी एवं धात्री को बारम्बार नमस्कार है।

ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥
कल्याण्यै प्रणतामृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥

गवते गौरः। "गौरेऽरुणे सिते पीते"। धात्र्यैधरण्यैनमः। उपमात्र्यै वा। "धात्री स्यादुपमाताऽपि क्षितिरप्यामलक्यपि"।

"ज्योतिः शास्त्रविशेषेस्याज्ज्योतिरक्षरतेजसोः। ज्योतिर्ना भास्करे क्लीवमग्निखद्योतदृष्टिषु"। ज्योतिरस्त्यस्यां तस्यै ज्योत्स्नायै नमः। चदिआह्लादने। चन्दतिचन्द्रः रूपरूपक्रियायां रूपरूपदर्शने च चुरादिः। चन्द्रं रूपयति तच्छीला चन्द्ररूपिणी तस्यै नमः। चन्द्रस्य रूपं करोति चन्द्ररूपिणीति च व्युत्पत्तिः। सुखदुःखतत्क्रियायां चुरादिः। सुखयति सुखा पचादित्वादच् तस्यै। कलासु साधु कल्या शुभात्मिका वाणी। कल्यामणति कल्यं निरुक्तं वा अणति कथयति कल्याणी तस्यै नमः। अण्शब्दार्थः कर्मण्यण्। किञ्च जगद्भिः ऋद्ध्यै सिद्ध्यै च प्रणतां वन्दितां जगज्जननीं देवीं प्रति नमः नतिं कुर्मः कुर्मेइतिपाठे। प्रणमन्तीतिप्रणन्तः तेषां प्रणतामितिषष्ठी बहुवचनान्तं बोध्यम्। तथाच प्रणतां प्रणमतामृद्ध्यै सिद्ध्यै च नमः इत्यलवेश्वरभट्टाः। कूर्म्यैइतिपाठे कूर्मसम्बन्धिन्यै शक्त्यै नमः।

निष्क्रान्ताऋृतेःसन्मार्गान्निर्ऋतिः अलक्ष्मीः अन्यायोपार्जिता लक्ष्मीः। "स्यादलक्ष्मीस्तु निर्ऋतिः"। निर्ऋतेः उपमाकृतिर्नैर्ऋती तस्यै अलक्ष्मीरूपायै शर्वाण्यै नमः। शर्वाण्यै शम्भुपत्न्यै नमो नमः। यद्वा, निश्चिता ऋतिः सत्यता येन स निर्ऋतिः निर्ऋतेर्दिक्पादस्येयं नैर्ऋ्तिस्तस्यै निर्ऋत्युपार्जितलक्ष्मीरूपायै नमः। अथच भुवस्त्रि-

---

ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवी को सतत प्रणाम है।

शरणागतों का कल्याण करनेवाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवी को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं। नैर्ऋती (राक्षसों की लक्ष्मी), राजाओं की लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिवपत्नी) स्वरूपा आप जगदम्बा को बार-बार नमस्कार है।

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।

भ्रतीति भूभृतः आदि मण्डकादि नागादि कुल पर्वतादि मनुप्रभृति राजान स्तेषां लक्ष्मी-रूपायै नमः । सर्वस्य स्त्री शर्वाणी । इन्द्रवरुणेत्यादिना पुंयोगेङीषानुकौ । हे सर्वकारिणि देवि! तुभ्यं दुर्गायै सततं नमः । दुःखेन गम्यते दुर्गा । यद्वा, दुःखेन गच्छत्यस्यां दुर्गा । सुदुरोरंधिकरणे इति वक्तव्याद्गमेर्डस्तथा हे देवि तुभ्यं दुर्गपारायै दुर्गं पारं यस्या महामायारूका सिन्धोः सा दुर्गपाराः । शम्भुपत्न्यै नमोनमः । यद्वा, निश्चिताऋतिः सत्यता येन स निर्ऋतिः । निर्ऋतेर्दिक्पालस्येयं नैर्ऋती तस्यै निर्ऋत्युपार्जितलक्ष्मी-रूपायैनमः । अथच, भुवम्बिभ्रतीति भूभृतः आदि मण्डूकादि नागादिकुल पर्वतादि मनुप्रभृतिराजानस्तेषां लक्ष्मीरूपायै सुदुरोरधिकरणे इतिवक्तव्याद्गमेर्डः । तथा हे देवि! तुभ्यं दुर्गापरायै दुर्गं पारं यस्याः महामायाख्यासिन्धोः सा दुर्गापारा । यद्वा, पिपर्ति पारा । पॄपालनपूरणयोः । यद्वा, दुर्गाः पाराः पारयन्तो गणा यस्याः तस्यै । हेदेवि ! तुभ्यं सारायै संसारसागरे वरायै श्रेष्ठायै सततं नमः । तुभ्यं ख्यात्यै विख्यातरूपायै नमः । तुभ्यं कृष्णायै कृष्णवर्णायै कालरात्र्यै नमः । हे देवि ! तुभ्यं धूम्रायै धूम्रवर्णायै नमः । सर्वं करोति सर्वकारिणि! सम्बुद्धिः ।

सोमाट्ट्यण् । सौम्यं सोमदेवताकं सुन्दरं च रूपम् । अत्यर्थं सौम्यं यस्याः साऽतिसौम्या । रुद्रदेवताकं रुद्रसम्बन्धि वा रूपं रौद्रमत्यर्थं रौद्रं यस्याः साऽतिरौद्रा । ततश्च भजतामभजतां च यथाक्रममतिसौम्याचासावतिरौद्राचेति कर्मधारयः । तस्यै वाक्सोमापरूपै त्रिशक्त्यात्मिकायै नमोनमः । इतिशक्तित्रयापेक्षं नमस्त्रयम् । सोमस्य

दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकट से पार उतारनेवाली), सारा (सब की सार-भूता), सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवी को सर्वदा नमस्कार है ।

अत्यन्त सौम्य तथा अत्यन्त रौद्ररूपा देवी को हम नमस्कार करते हैं, उन्हें

नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

भावः सौम्यं भावे ष्यञ्। रुद्रस्य भावः रौद्रं युवादित्वाद्भावेऽण्। अतिक्रान्तं सौम्यं यया साऽतिसौम्या। अतिक्रान्तं रौद्रं यया साऽतिरौद्रा। ततः कर्मधारये सति तस्यै नमः इत्यप्यनुसन्धेयम्। जगतां प्राणभृतां प्रतिष्ठा आस्पदमाधारशक्तिः स्थानं तस्यै जगत्प्रतिष्ठारूपायै नमः। प्राणिनां प्राणधारणार्थं यत्स्थानं मूलाधार-संज्ञं तत्प्रतिष्ठेत्युच्यते। आस्पदं प्रतिष्ठायामित्यास्पदशब्दपर्यायः प्रतिष्ठाशब्दः। दिवुक्रीडादौ। दीव्यतीति देवी तस्यै क्रीडाविजिगीषाद्यार्थक्रियाकारिण्यै नमः। करणङ्कृतिः प्रयत्नः सर्गस्थितिप्रत्यवहारविषयः प्रयत्नोऽत्र विवक्षितः। तस्यै प्रयत्न-रूपायै नमः। नमस्यानां त्रित्वादित्वादिह नमस्त्रित्वम्। कर्त्र्यैइतिपाठेतृन्नन्तत्वा-ज्जगदिति कर्म विवक्षितम् जगत्करणशीलायै नम इत्यर्थः।

या देवी वाङ्मोमात्मिका सर्वकालेषु कालत्रयात्मिका सर्वभूतेषु भूतात्मिका। अनात्मन्यात्मबुद्धिं जनयन्ती आत्मनि वाऽनात्मबुद्धिं जनयन्ती ममतावशम्वदान् लोकान् प्रसूयमाना सर्वजननी महामाया भगवती विष्णुमायेति शब्दिता कथिता तस्यै त्रिगुणरूपायै प्रत्येकं कायवाङ्मनोभिः एकस्यै चैव वा देव्यै भक्तिश्रद्धातिशय-द्योतनाय नमः शब्दो नमस्ये न च सहाम्रेडितः। आम्रेडितं द्विस्त्रिरुक्तम्। चाप-लेद्विवचनं सम्भ्रमेणवृत्तिश्चापलमित्थं हि न पौनरुक्त्यं दोषावहम्। यदुक्तम्। "प्रहर्ष-हर्षशोकेषु स्वप्नदैन्यभयेषु च। स्तुत्यभ्यासानुवादेषु पौनरुक्त्यं न दुष्यति"। सर्वाणि पृथिव्यादीनि भूतानि देहानि। इतिप्रमादेवी विष्णुमाया।

हमारा बारम्बार प्रणाम है। जगत् की आधारभूता कृति देवी को बारम्बार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियों में विष्णुमाया के नाम से कही जाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

अभिधीयते कथ्यते। चुरादावात्मनेपदं चित संचेतने सम्वेदने वा। चेतनं चेतना-बुद्धिरेवेति कथनं पौनरुक्त्यं यद्यपि वैशेषिकादौ दर्शने चेतनं चेतनाबुद्धिरेव तथापि सांख्ये बुद्धिधर्मश्चित्तवृत्तिविशेषविजृम्भितशक्तिश्चेतना इत्याश्रयणादपौनरुक्त्यम्। अन्ये तु चेतना चित्तवृत्तिविशेषशक्तिः संज्ञानं वा बुद्धिस्तु स्वप्रकाशज्ञानस्वभावेत्याहुः। अन्ये तु निर्विकल्पज्ञानं चेतना बुद्धिः तद्विशेषावगतिः सविकल्पकज्ञानमित्यस्ति तयोर्भेदइत्याहुः। इति द्वितीया देवी चेतना।

बुद्धिरित्येवं रूपेण सम्यक्स्थिता। यदभ्यधुः। "सन्धारणेस्थितौभूत्यौ (बुद्धिः)"। इतितृतीयादेवीबुद्धिः।

निद्रेतिरूपं तस्यै नमः। द्राकुत्सायां नियतं द्रात्यस्यां निद्रा सम्वेशः। भुक्तान्ना-दिपरिपाकादिहेतुर्निरिन्द्रियप्रदेशमलकोशे मनसोऽवस्थानं निद्रा। सर्वेन्द्रियव्यापार विरतप्राणनं सुखनं निद्रेत्यन्ये। इतिचतुर्थीदेवी निद्रा।

जो देवी सब प्राणियों में चेतना कहलाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नम-स्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

जो देवी सब प्राणियों में बुद्धिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नम-स्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

जो देवी सब प्राणियों में निद्रारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नम-स्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

क्षुध्बुभुक्षायाम्। सम्पदादित्वाद्भावेस्त्रियां क्विप्। क्षुध्प्रातिपदिकम्। भोक्तुमिच्छा क्षुत्। अशनाया बुभुक्षाक्षुत्तया क्षुधा। रूपेणेतिपृथक्पदम्। यद्वा, "वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः। हलन्तादपि टापश्च यथा वाचा निशा दिशा"। ततश्च क्षुधेतिरूपं तेन क्षुधारूपेण क्षुधां विना प्राणिनां सुखं नास्ति। इतिपञ्चमीदेवी क्षुधा।

छायाप्रतिबिम्बरूपा सर्वभूतेषु तिष्ठति। नष्टच्छायो मध्याह्नइत्यत्र तु आतपाभावाभावो विवक्षितः। "छायासूर्यप्रियाकान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः। प्रतिबिम्बे यथा संक्रान्तच्छायः आदर्शः"। छ्यति छिनत्ति सन्तापं छाया। इतिषष्ठीदेवी छाया।

शक्लृशक्तौ शकनं शक्तिः सामर्थ्यं वस्तुगतः स्वभावसिद्धो धर्मः शक्तिरितिरूपं तेन शक्ति (:) प्रतिवस्तु प्रतिनियतार्थक्रियाकारित्वं वस्तुधर्मइत्येके। वस्तुरूपमेव शक्तिर्नतु वस्तुनोऽन्यो धर्मः शक्तिरित्यन्येऽभ्युपजग्मुः। इह तु सर्वभूतेष्वित्याधाराधेयभावानुवाच्याशक्तिर्वस्तुधर्म इत्येष पक्षोऽभ्युपगतः। इति सप्तमीदेवी शक्तिः।

जो देवी सब प्राणियों में क्षुधारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

जो देवी सब प्राणियों में छायारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

जो देवी सब प्राणियों में शक्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

सर्वाणि भूतानि पृथिव्यादीनि येषां देहानामारम्भकत्वेन सन्ति तानि सर्वभूतानि देहाः तेषु । ञितृषः पिपासायाम् । तृषिशुषिरसिभ्यः कित् इति नः तृष्णा उपभोगनिमित्तकोऽभिलाषः । "तृष्णाऽभिलषणं भोगे तृष्णा वनपिशाचिका । तृष्णे स्पृहापिपासे द्वे तद्रूपेहाम्बिका स्मृता" । तर्षणं तृष्णा स्पृहा निरूढलक्षणत्वात् । इत्यष्टमी देवी तृष्णा ।

क्षमूष्सहने षित्त्वात् स्त्रियां क्षमा । बाहुलकात्तु क्तिनि क्षान्तिः । अनुनासिकस्य-क्विझलोङ्क्तितीति दीर्घः । क्षातिः क्षमातीति क्षामर्षः सहार्थकाः । क्षान्तिस्तृष्णाविरोधिनी परयुक्तापकारं प्रत्युपेक्षाप्रतिकूलवेदनाम्प्रत्युपेक्षा । इति नवमी देवी क्षान्तिः ।

नित्यैकानुगतप्रत्ययहेतुरनेकसमवायिनी जातिः । इति दशमी ।

जो देवी सब प्राणियों में तृष्णारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ।

जो देवी सब प्राणियों में क्षान्ति (क्षमा) रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ।

जो देवी सब प्राणियों में जातिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार उनको बारम्बार प्रणाम है ।

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

लज्जाव्रीडे स्त्रियां गुरोश्चहलइत्यप्रत्ययः झलां जशूझशीतिजशूदः श्चुत्वं स्त्रिया-मजाद्यतष्टाप्। कर्त्तव्याकरणनिमित्तमकारणनिमित्तमन्यतः स्वतो वा जनितं लज्जनं सङ्कोचनं लज्जा एकादशी।

शम उपशने। स्त्रियां क्तिन्। क्षान्तिवद्दीर्घः। "शमथुस्तु शमः शान्तिः"। कामक्रो-धाद्यभावः। विकृतेन्द्रियनिवृत्तिः शान्तिरित्यन्ये। विषयव्यावृत्तात्मतेत्यपरे। इति द्वादशी शान्तिः।

डुधाञ् धारणपोषणयोः। श्रच्छब्दस्योपसंख्यानमित्युपसर्गसंज्ञा। आतश्चो-पसर्गेइति कः स्त्रियां टाप्। श्रद्धनं श्रद्धा सम्प्रत्ययः स्पृहा। सम्प्रत्ययोभक्त्यतिशयः श्रद्धयापरयोपेतइतिवत्। शास्त्रोक्तार्थाविपरीतबुद्धिः श्रद्धेत्यन्ये। आदरेणानुसरणं भक्तिः श्रद्धात्वास्तिक्यबुद्धिरित्यपरे। इति त्रयोदशी।

जो देवी सब प्राणियों में लज्जारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

जो देवी सब प्राणियों में शान्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नम-स्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नम-स्कार उनको बारम्बार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु धृतिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै० ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

कमुकान्तौ। कमेर्णिङ्। आयादय आर्धधातुके वा स्त्रियां क्तिन्। अनुनासिकस्य क्विझलोःक्ङितीति दीर्घः। शोभा कान्तिः ज्योतिः स्वरूपोज्ज्वलतेत्याहुः इति चतुर्दशी।

लक्ष दर्शनांकनयोः चुरादिः। लक्षेमुट्चेति ईः तस्यमुडागमः। नेड्वशिकृति। णेरनिटीति णिलोपः। लक्ष्मीः साविभूतिश्चकायशोभाचेति पञ्चदशी।

धृञ्धारणेभ्वादिः स्त्रियांक्तिन्। "धृतिः स्याद्धारणे धैर्यसौख्यसन्तोषयोरपि"। इति षोडशी।

वृतुवर्त्तने स्त्रियां क्तिन्। वर्त्तनं वृत्तिः वर्त्ततेऽनया वृत्तिः। "आजीवोजीविका वार्त्तावृत्तिर्वर्तनजीवने"। वृत्तिर्जीवनोपायः। "युक्तेक्ष्मादावृतेभूतं प्राण्यतीतसमे त्रिषु। भूतं क्लीवे ग्रहे युक्ते पृथिव्यादावृतेऽपिच"। इति सप्तदशी।

जो देवी सब प्राणियों में कान्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्वार नमस्कार है।

जो देवी सब प्राणियों में लक्ष्मीरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्वार नमस्कार है।

जो देवी सब प्राणियों में धृतिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्वार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
या देवी सर्वभूतेषु नीतिरूपेण संस्थिता॥ नमस्तस्यै० ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
या देवी सर्वभूतेषु पुष्टिरूपेण संस्थिता॥ नमस्तस्यै० ॥

"स्याच्चिन्तास्मृतिराध्यानम्"। अनुभूतस्यभावनाख्य संस्कारहेतुको ज्ञानविशेषः स्मृतिः। इत्यष्टादशी।

दयरक्षणे। षिद्भिदादिभ्योऽङ् दयन्तेऽनया दया। परदुःखप्रहाणेच्छा परदुःखसमभाक्त्वम्वा दया। इत्येकोनविंशी। नीतिर्नयः इति विंशीदेवी नीतिः।

तुष प्रीतौ। तुष्टिः प्रीतिरानन्दः। विषययोगमवाप्य तदभिलाषो परमस्तुष्टिरित्यपरे। अन्ये तु विषयोपभोगं प्राप्य तदभिलाषत (स्त) दवाप्य प्राप्तं परमं सुखमित्याहुः। इत्येकविंशी। पुषपुष्टौ। पुष्टिरवयवोपचयः इति द्वाविंशी।

जो देवी सब प्राणियों में स्मृतिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियों में दयारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियों में नीतिरूप से स्थित हैं उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियों में तुष्टिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियों में पुष्टिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
इन्द्रियाणमधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥

मात्यस्यां गर्भ इति माता । "जनयित्रीप्रसूर्माता" । यद्वा, मानपूजायाम् मान्यते-पूज्यते माता । उणादौ नप्तृनेष्टृत्वष्टृ इत्यादिसूत्रेणनिपात्यते । यद्वा, अष्टौमातृनाम्न्य आद्याः शक्तयः याः विना भूतसृष्टिरेव न घटते । "ब्राह्मीमाहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा। कौमारी चर्ममुण्डा च काली संकर्षणीति च" । इति त्रयोविंशी ।

"भ्रान्तिर्मिथ्यामतिभ्र मः"। अतस्मिन्स्तदिति ज्ञानं भ्रान्तिः । इति चतुर्विंशी देवी भ्रान्तिः ।

इत्थं विष्णुमायादिमूर्त्तयो देव्याः सर्वभूतेषु वर्त्तमानाभ्रान्त्यन्ताः चतुर्विंशतिः प्रदर्शिताः। या देवी भूतानां पृथिव्यादीनां पञ्चानामधिष्ठात्री आधारशक्तिः स्वामिनी ईश्वरी व्यापिनी या च देवी अपरेष्वखिलेषु भूतेषु विशिष्टेषु प्राणिषु वर्त्तमानानां भूतानां प्राणिनामिन्द्रियाणां मनोनेत्ररसनघ्राणत्वक्कर्मणां वाऽधिष्ठात्री तस्यै व्याप्तिरूपायै सततं नमोनमः । एतेन सर्वगतत्वमुक्तं देव्याः ।

जो देवी सब प्राणियों में मातारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ।

जो देवी सब प्राणियों में भ्रान्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ।

जो जीवों के इन्द्रियवर्ग की अधिष्ठात्री देवी एवं सब प्राणियों में सदा व्याप्त रहनेवाली हैं, उन व्याप्ति देवी को बारम्बार नमस्कार हैं ।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥

चिञ्चयने । चयनं चितिरविकारता कूटरूपता तद्रूपेण । यद्वा, चितीसञ्ज्ञाने । स्त्रियामिक्कृष्यादिभ्यइति इक्प्रत्ययः । चेतनं चितिः संज्ञानरूपेण या देवी एतत्कृत्स्नमखिलं जगद्व्याप्य स्थिता तस्यै नमोनमः । पुनः पुनर्नतेरनेककर्तृकत्वादनेकस्तोतृकत्वाच्च न पौनरुक्त्यमार्थं शाब्दं वा शङ्कनीयम् ।

पूर्वं पुरा कल्पे सुरैः स्तुता तथाऽभीष्टसंश्रयादभीष्टस्य वस्तुनः संश्रयात्कारणात् । सुरेन्द्रः शक्रः ईशः शङ्करः दिनेशः सूर्यस्तैः सेविता । अतएव भद्रमणतिभद्राणी अस्तु भद्रमिति कथयन्ती । अतएव शुभहेतुः सा ईश्वरी नोऽस्माकं देवानां शुभानि मङ्गलानि करोतु । किञ्च नः अस्माकमापदश्च विरोधिजनितदुःखानि चाऽभिहन्तु । सुरेन्द्रेण दिनेषु सेवितेति पाठे सुरेन्द्रेण शक्रेण दिनेषु प्रत्यहं सेविता । शुभानि भद्राणीतिच्छेदे यानि नः शुभानि जगद्धितानि कर्माणि प्रार्थनीयानि भद्राण्यनुकूलानि अबाधानि अविघ्नानि करोत्वित्यर्थः । अभीष्टसंश्रयेति पाठे अभीष्टः वाञ्छितः संश्रियमाणः संश्रयइत्यर्थो यस्याः सकाशाद्भवति सा ।

जो देवी चैतन्यरूप से इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार और वारम्वार नमस्कार है ।

पूर्वकाल में अपने अभीष्ट की प्राप्ति होने से देवताओं ने जिनकी स्तुति की तथा देवराज इन्द्र ने वहुत दिनों तक जिनका सेवन किया, वह कल्याण की साधनभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और मङ्गल करे तथा सारी आपत्तियों का नाश कर डाले ।

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥

॥ इति तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम् समाप्तम् ॥

सा देवी नः शुभहेतुरित्युक्तं सा केत्याह । या देवी साम्प्रतमिदानीमुद्धतदैत्यतापितैः निर्मर्यादैर्बलोल्बणैः दैत्यैः शुम्भादिभिस्तापितैः सन्तापितैरस्माभिः सुरैरीशा स्वामिनी नमस्यते सेव्यते । या देवी भक्तिनम्रमूर्तिभिः सुरैः स्मृता च स्मृतैव सती-तत्क्षण एव नोऽस्माकं सर्वा आपदः हन्ति । सर्वापदो यतः स्युस्तान् सर्वापदः शत्रून्वा । ईशा पचाद्यच् इगुपधज्ञाप्रीकिरः को वा । साम्प्रतमव्ययम् भक्त्या विनम्रा मूर्त्तयः काया येषान्तैः नमस्यति इति नमोवरिवश्चित्रङःक्यच् । नमसः पूजायां भावकर्मणोः सार्वधातुके यक् यस्य हलः क्यस्यविभाषेति यलोपः ।

उद्दण्ड दैत्यों से सताये हुए हम सभी देवता जिन परमेश्वरी को इस समय नमस्कार करते हैं तथा जो भक्ति से विनम्र पुरुषों द्वारा स्मरण की जानेपर तत्काल ही सम्पूर्ण विपत्तियों का नाश कर देती हैं, वे (वह) जगदम्बा हमारी सङ्कट दूर करें ।

अथ प्राधानिकं रहस्यम्

ॐ अस्य श्री सप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायणऋषिरनुष्टुप्छन्दः, महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः।

राजोवाच।

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि॥
आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज!।
विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे॥

ऋषिरुवाच।

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवाऽवाच्यं नराधिप!॥

ॐ सप्तशती के इन तीनों रहस्यों के नारायण ऋषि, अनुष्टुप् छन्द तथा महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती देवता हैं। शास्त्रोक्त फल की प्राप्ति के लिये जप में इनका विनियोग होता है।

राजा बोले—भगवन्! आपने चण्डिका के अवतारों की कथा मुझे कही। ब्रह्मन्! अब इन अवतारों की प्रधान प्रकृति का निरूपण कीजिये। द्विजश्रेष्ठ! मैं आपके चरणों में पड़ा हूं। मुझे देवी के जिस स्वरूप की और जिस विधि से आराधना करनी है, वह सब यथार्थरूप से बतलाइये।

ऋषि कहते हैं—राजन्! यह रहस्य परम गोपनीय है। इसे किसी से कहने योग्य नहीं बतलाया गया है; किन्तु तुम मेरे भक्त हो, इसलिये तुमसे न कहने योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं है।

सर्वस्याऽऽद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥
मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती ।
नागं लिङ्गञ्च योनिञ्च बिभ्रती नृप ! मूर्द्धनि ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ।
शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥
शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी ।
बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥
सा भिन्नाञ्जनसङ्काशा दंष्ट्राङ्कितवरानना ।
विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥

त्रिगुणमयी परमेश्वरी महालक्ष्मी ही सबका आदि कारण हैं। वे ही दृश्य और अदृश्यरूप से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित हैं।

राजन् ! वे अपनी चार भुजाओं में मातुलिङ्ग (बिजौरे का फल), गदा, खेट (ढाल) एवं पानपात्र और मस्तक पर नाग, लिङ्ग तथा योनि—इन वस्तुओं को धारण करती हैं।

तपाये हुए सुवर्ण के समान उनकी कान्ति है, तपाये हुए सुवर्ण के ही उनके भूषण हैं। उन्होंने अपने तेज से इस शून्य जगत् को परिपूर्ण किया है।

परमेश्वरी महालक्ष्मी ने इस सम्पूर्ण जगत् को शून्य देखकर केवल तमोगुण-रूप उपाधि के द्वारा एक अन्य उत्कृष्टरूप धारण किया।

वह रूप एक नारी के रूप में प्रकट हुआ, जिसके शरीर की शोभा निखरे हुए काजल की भाँति काले रङ्ग की थी। उसका श्रेष्ठ मुख दाढ़ों से सुशोभित था। नेत्र बड़े-बड़े और कमर पतली थी।

खड्गपात्रशिरःखेटैरलङ्कृतचतुर्भुजा ।
कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरःस्रजम् ॥
सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा ।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥
तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् ।
ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥
महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा ।
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥
इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः ।
एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥

उसकी चार भुजाएँ ढाल, तलवार, प्याले और कटे हुए मस्तक से सुशोभित थीं। वह वक्षःस्थल पर कबन्ध (धड़) की तथा मस्तक पर मुण्डों की माला धारण किये हुए थी।

इस प्रकार प्रकट हुई स्त्रियों में श्रेष्ठ तामसी देवी ने महालक्ष्मी से कहा—'माताजी ! आपको नमस्कार है। मुझे मेरा नाम और कर्म बताइये'।

तब महालक्ष्मी ने स्त्रियों में श्रेष्ठ उस तामसी देवी से कहा—'मैं तुम्हें नाम प्रदान करती हूं और तुम्हारे जो-जो कर्म हैं, उनको भी बतलाती हूं।

महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि तथा दुरत्यया।

ये तुम्हारे नाम हैं, जो कर्मों के द्वारा लोक में चरितार्थ होंगे। इन नामों के द्वारा तुम्हारे कर्मों को जानकर जो उनका पाठ करता है, वह सुख भोगता है।

तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप ! ।
सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥
अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तकधारिणी ।
सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ ॥
महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती ।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥
अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम् ।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥
इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् ।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥

राजन्! महाकाली से यों कहकर महालक्ष्मी ने अत्यन्त शुद्ध सत्त्वगुण के द्वारा दूसरा रूप कारण किया, जो चन्द्रमा के समान गौरवर्ण था।

वह श्रेष्ठ नारी अपने हाथों में अक्षमाला, अङ्कुश, वीणा तथा पुस्तक धारण किये हुए थी। महालक्ष्मी ने उसे भी नाम प्रदान किये।

महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेद-गर्भा और धीश्वरी (बुद्धि की स्वामिनी)—ये तुम्हारे नाम होंगे।

तदनन्तर महालक्ष्मी ने महाकाली और महासरस्वती से कहा—'देवियो! तुम दोनों अपने-अपने गुणों के योग्य स्त्री-पुरुष के जोड़े उत्पन्न करो'।

उन दोनों से यों कहकर महालक्ष्मी ने पहले स्वयं ही स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा उत्पन्न किया। वे दोनों हिरण्यगर्भ (निर्मल ज्ञान से सम्पन्न) सुन्दर तथा कमल के आसन पर विराजमान थे। उनमें से एक स्त्री थी और दूसरा पुरुष।

ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम् ।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ॥
महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह ।
एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥
नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम् ।
जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥
स रुद्रः शङ्करः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः ।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ॥
सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप! ।
जनयामास नामानि तयारपि वदामि ते ॥

तत्पश्चात् माता महालक्ष्मी ने पुरुष को ब्रह्मन्! विधे! विरिञ्च! तथा धातः! इस प्रकार सम्बोधित किया और स्त्री को श्री! पद्मे! कमले! लक्ष्मी! इत्यादि नामों से पुकारा।

इसके बाद महाकाली और महासरस्वती ने भी एक-एक जोड़ा उत्पन्न किया। इनके भी रूप और नाम मैं तुम्हें बतलाता हूं।

महाकाली ने कण्ठ में नील चिह्न से युक्त, लाल भुजा, श्वेत शरीर और मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट धारण करनेवाले पुरुष को तथा गोरे रङ्ग की स्त्री को जन्म दिया। वह पुरुष रुद्र, शङ्कर, स्थाणु, कपर्दी और त्रिलोचन के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा स्त्री के त्रयी, विद्या, कामधेनु, भाषा, अक्षरा और स्वरा—ये नाम हुए।

राजन्! महासरस्वती ने गोरे रङ्ग की स्त्री और श्याम रङ्ग के पुरुष को प्रकट किया। उन दोनों के नाम भी मैं तुम्हें बतलाता हूं।

विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः ।
उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ॥
एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।
चक्षुष्मन्तोऽनुपश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥
ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम् ।
रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ॥
स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् ।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ॥
अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप ! ।
महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥

उनमें पुरुष के नाम विष्णु, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव और जनार्दन हुए तथा स्त्री उमा, गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी, सुभगा और शिवा—इन नामों से प्रसिद्ध हुईं। इस प्रकार तीनों युवतियाँ ही तत्काल पुरुषरूप को प्राप्त हुईं। इस बात को ज्ञान-नेत्रवाले लोग ही समझ सकते हैं। दूसरे अज्ञानीजन इस रहस्य को नहीं जान सकते।

राजन्! महालक्ष्मी ने त्रयीविद्यारूपा सरस्वती को ब्रह्मा के लिये पत्नीरूप में समर्पित किया, रुद्र को वरदायिनी गौरी तथा भगवान् वासुदेव को लक्ष्मी दे दी। इस प्रकार सरस्वती के साथ संयुक्त होकर ब्रह्माजी ने ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया और परम पराक्रमी भगवान् रुद्र ने गौरी के साथ मिलकर उसका भेदन किया। राजन्! उस ब्रह्माण्ड में प्रधान (महत्तत्त्व) आदि कार्यसमूह—पञ्चमहाभूतात्मक समस्त स्थावर-जङ्गमरूप जगत् की उत्पत्ति हुई।

पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।
सञ्जहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ॥
महालक्ष्मीर्महाराज ! सर्वसत्त्वमयीश्वरी ।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ॥ॐ॥

॥ इति प्राधानिकं रहस्यम् सम्पूर्णम् ॥

फिर लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु ने उस जगत् का पालन-पोषण किया और प्रलयकाल में गौरी के साथ महेश्वर ने उस सम्पूर्ण जगत् का संहार किया ।

महाराज ! महालक्ष्मी ही सर्वसत्त्वमयी तथा सब सत्त्वों की अधीश्वरी हैं । वे ही निराकार और साकाररूप में रहकर नाना प्रकार के नाम धारण करती हैं ।

सगुणवाचक सत्य, ज्ञान, चित्, महामाया आदि नामान्तरों से इन महालक्ष्मी का निरूपण करना चाहिये । केवल एक नाम (महालक्ष्मीमात्र) से अथवा अन्य प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से उनका वर्णन नहीं हो सकता ।

अथ वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच ।

ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता ।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा ।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥
दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा ।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपाऽपि भूमिप ! ।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥

ऋषि कहते हैं—राजन् ! पहले जिन सत्त्वप्रधाना त्रिगुणमयी महालक्ष्मी के तामसी आदि भेद से तीन स्वरूप बतलाये गये, वे ही शर्वा, चण्डिका, दुर्गा भद्रा और भगवती आदि अनेक नामों से कही जाती हैं।

तमोगुणमयी महाकाली भगवान् विष्णु की योगनिद्रा कही गयी हैं। मधु और कैटभ का नाश करने के लिये ब्रह्माजी ने जिनकी स्तुति की थी, उन्हीं का नाम महाकाली है।

उनके दस मुख, दस भुजाएँ और दस पैर हैं। वे काजल के समान काले रङ्ग की हैं तथा तीस नेत्रों की विशाल पङ्क्ति से सुशोभित होती हैं।

भूपाल ! उनके दाँत और दाढ़ें चमकती रहती हैं। यद्यपि उनका रूप भयङ्कर है, तथापि वे रूप, सौभाग्य, कान्ति एवं महती सम्पदा की अधिष्ठान (प्राप्ति स्थान) हैं।

खड्गबाणगदाशूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत् ।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥
एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया ।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥
सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूताऽमितप्रभा ।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥
श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला ।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा ॥
सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥

वे अपने हाथों में खड्ग, बाण, गदा, शूल, चक्र, शङ्ख, भुशुण्डि, परिघ, धनुष तथा जिससे रक्त चूता रहता है, ऐसा कटा हुआ मस्तक धारण करती हैं। ये महाकाली भगवान् विष्णु की दुस्तर माया हैं। आराधना करनेपर ये चराचर जगत् को अपने उपासक के अधीन कर देती हैं।

सम्पूर्ण देवताओं के अङ्गों से जिनका प्रादुर्भाव हुआ था, वे अनन्त कान्ति से युक्त साक्षात् महालक्ष्मी हैं। उन्हें ही त्रिगुणमयी प्रकृति कहते हैं तथा वे ही महिषासुर का मर्दन करनेवाली हैं। उनका मुख गोरा, भुजाएं श्याम, स्तनमण्डल अत्यन्त श्वेत, कटिभाग और चरण लाल तथा जङ्घा और पिण्डली नीले रङ्ग की हैं। अजेय होने के कारण उनको अपने शौर्य का अभिमान है। कटि के आगे का भाग बहुरंगे वस्त्र से आच्छादित होने के कारण अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र दिखायी देता है। उनकी माला, वस्त्र, आभूषण तथा अङ्गराग सभी विचित्र हैं। वे कान्ति, रूप और सौभाग्य से सुशोभित हैं।

अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥
अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा ।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ॥
शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः ।
अलङ्कृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ! ।
पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥
गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया ।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥

यद्यपि उनकी भुजाएं असंख्य हैं, तथापि उन्हें अठारह भुजाओं से युक्त मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये । अब उनके दाहिनी ओर के निचले हाथों से लेकर बायीं ओर के निचले हाथों तक में क्रमशः जो अस्त्र हैं, उनका वर्णन किया जाता है ।

अक्षमाला, कमल, बाण, खड्ग, वज्र, गदा, चक्र, त्रिशूल, परशु, शङ्ख, घण्टा, पाश, शक्ति, दण्ड, चर्म (ढाल), धनुष, पानपात्र और कमण्डलु—इन आयुधों से उनकी भुजाएं विभूषित हैं । वे कमल के आसन पर विराजमान हैं, सर्वदेवमयी हैं तथा सब की ईश्वरी हैं । राजन् ! जो इन महालक्ष्मी देवी का पूजन करता है, वह सब लोकों तथा देवताओं का भी स्वामी होता है ।

जो एकमात्र सत्त्वगुण के आश्रित हो पार्वतीजी के शरीर से प्रकट हुई थीं तथा जिन्होंने शुम्भ नामक दैत्य का संहार किया था, वे साक्षात् सरस्वती कही गयी हैं ।

दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत् ।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ! ॥
एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति ।
निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥
इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव ! ।
उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥
महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती ।
दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥
विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे ।

पृथ्वीपते ! उनके आठ भुजाएँ हैं तथा वे अपने हाथों में क्रमशः बाण, मुसल, शूल, चक्र, शङ्ख, घण्टा, हल एवं धनुष धारण करती हैं ।

ये सरस्वती देवी, जो निशुम्भ का मर्दन तथा शुम्भासुर का संहार करनेवाली हैं, भक्तिपूर्वक पूजित होनेपर सर्वज्ञता प्रदान करती हैं ।

राजन् ! इस प्रकार तुमसे महाकाली आदि तीनों मूर्तियों के स्वरूप बतलाये, अब जगन्माता महालक्ष्मी की तथा इन महाकाली आदि तीनों मूर्तियों की पृथक्-पृथक् उपासना श्रवण करो ।

जब महालक्ष्मी की पूजा करनी हो, तब उन्हें मध्य में स्थापित करके उनके दक्षिण और वाम भाग में क्रमशः महाकाली और महासरस्वती का पूजन करना चाहिये और पृष्ठभाग में तीनों युगल देवताओं की पूजा करनी चाहिये ।

महालक्ष्मी के ठीक पीछे मध्यभाग में सरस्वती के साथ ब्रह्मा का पूजन करे । उनके दक्षिण भाग में गौरी के साथ रुद्र की पूजा करे तथा वाम भाग में लक्ष्मी

वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवत्रयम् ॥
अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना ।
दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥
अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप ।
दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥
कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये ।
यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ ।

सहित विष्णु का पूजन करे। महालक्ष्मी आदि तीनों देवियों के सामने निम्नाङ्कित तीन देवियों की भी पूजा करनी चाहिये।

मध्यस्थ महालक्ष्मी के आगे मध्यभाग में अठारह भुजाओंवाली महालक्ष्मी का पूजन करे। उनके वामभाग में दस मुखोंवाली महाकाली का तथा दक्षिण भाग में आठ भुजाओंवाली महासरस्वती का पूजन करे।

राजन्! जब केवल अठारह भुजाओंवाली महालक्ष्मी का अथवा दशमुखी काली का या अष्टभुजा सरस्वती का पूजन करना हो, तब सब अरिष्टों की शान्ति के लिये इनके दक्षिण भाग में काल की और वामभाग में मृत्यु की भी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये।

जब शुम्भासुर का संहार करनेवाली अष्टभुजा देवी की पूजा करनी हो, तब उनके साथ उनकी नौ शक्तियों का और दक्षिण भाग में रुद्र एवं वाम भाग में गणेशजी का भी पूजन करना चाहिये (ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी,

नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥
अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः ।
अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥
महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती ।
ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥
महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः ।
पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥
अर्घ्यादिभिरलङ्कारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥

वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री, शिवदूती तथा चामुण्डा—ये नौ शक्तियां हैं। 'नमो देव्यै...' इस स्तोत्र से महालक्ष्मी की पूजा करनी चाहिये।

तथा उनके तीन अवतारों की पूजा के समय उनके चरित्रों में जो स्तोत्र और मन्त्र आये हैं, उन्हीं का उपयोग करना चाहिये। अठारह भुजाओंवाली महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मी ही विशेषरूप से पूजनीय हैं; क्योंकि वे ही महालक्ष्मी, महाकाली तथा महासरस्वती कहलाती हैं। वे ही पुण्य-पापों की अधीश्वरी तथा सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी हैं।

जिसने महिषासुर का अन्त करनेवाली महालक्ष्मी की भक्तिपूर्वक आराधना की है, वही संसार का स्वामी है। अतः जगत् को धारण करनेवाली भक्तवत्सला भगवती चण्डिका की अवश्य पूजा करनी चाहिये।

अर्घ्य आदि से, आभूषणों से, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप तथा नाना प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से युक्त नैवेद्यों से, रक्तसिञ्चित बलि से, मांस से तथा मदिरा से

रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप ! ।
(बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥
तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप! क्वचित् ।)
प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥
सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः ।
वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥
पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।
दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥
वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम् ।
कुर्याच्च स्तवनं धीमान्स्तस्या एकाग्रमानसः ॥

भी देवी का पूजन होता है । (राजन् ! बलि और मांस आदि से की जानेवाली पूजा ब्राह्मणों को छोड़कर बतायी गयी है । उनके लिये मांस और मदिरा से कहीं भी पूजा का विधान नहीं है ।) प्रणाम, आचमन के योग्य जल, सुगन्धित चन्दन, कपूर तथा ताम्बूल आदि सामग्रियों को भक्तिभाव से निवेदन करके देवी की पूजा करनी चाहिये । देवी के सामने बायें भाग में कटे मस्तकवाले महादैत्य महिषासुर का पूजन करना चाहिये, जिसने भगवती के साथ सायुज्य प्राप्त कर लिया । इसी प्रकार देवी के सामने दक्षिण भाग में उनके वाहन सिंह का पूजन करना चाहिये जो सम्पूर्ण धर्म का प्रतीक एवं षड्विध ऐश्वर्य से युक्त है । उसी ने इस चराचर जगत् को धारण कर रक्खा है ।

तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष एकाग्रचित्त हो देवी की स्तुति करे । फिर हाथ जोड़कर तीनों पूर्वोक्त चरित्रों द्वारा भगवती का स्तवन करे । यदि कोई एक ही

ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥
चरितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात् ।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥
क्षमापायेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।
प्रतिश्लोकञ्च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा ॥
जहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः ।
भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहितः ॥
प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि ।

चरित्र से स्तुति करना चाहे तो केवल मध्यम चरित्र के पाठ से कर ले ; किन्तु प्रथम और उत्तर चरित्रों में से एक का पाठ न करे। आधे चरित्र का भी पाठ करना मना है। जो आधे चरित्र का पाठ करता है, उसका पाठ सफल नहीं होता। पाठ-समाप्ति के बाद साधक प्रदक्षिणा और नमस्कार कर तथा आलस्य छोड़कर जगदम्बा के उद्देश्य से मस्तक पर हाथ जोड़े और उनसे वारम्बार त्रुटियों या अपराधों के लिये क्षमा-प्रार्थना करे। सप्तशती का प्रत्येक श्लोक मन्त्ररूप है, उससे तिल और घृत मिली हुई खीर की आहुति दे।

अथवा सप्तशती में जो स्तोत्र आये हैं, उन्हीं के मन्त्रों से चण्डिका के लिये पवित्र हविष्य का हवन करे। होम के पश्चात् एकाग्रचित्त हो महालक्ष्मी देवी के नाम-मन्त्रों को उच्चारण करते हुए पुनः उनकी पूजा करे।

तत्पश्चात् मन और इन्द्रियों को वश में रखते हुए हाथ जोड़ विनीत भाव से

सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥
एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् ।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥
यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ।
भस्मीकृत्याऽस्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी ॥
तस्मात्पूजय भूपाल ! सर्वलोकमहेश्वरीम् ।
यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥

॥ इति वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम् ॥

देवी को प्रणाम करे और अन्तःकरण में स्थापित करके उन सर्वेश्वरी चण्डिका देवी का देर तक चिन्तन करे । चिन्तन करते-करते उन्हीं में तन्मय हो जाय ।

इस प्रकार जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक परमेश्वरी का पूजन करता है, वह मनोवाञ्छित भोगों को भोगकर अन्त में देवी का सायुज्य प्राप्त करता है ।

जो भक्तवत्सला चण्डी का प्रतिदिन पूजन नहीं करता, भगवती परमेश्वरी उसके पुण्यों को जलाकर भस्म कर देती है ।

इसलिये राजन् ! तुम सर्वलोक महेश्वरी चण्डिका का शास्त्रोक्त विधि से पूजन करो । उससे तुम्हें सुख मिलेगा ।

अथ मूर्तिरहस्यम्

ऋषिरुवाच ।

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा ।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥
कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा ।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥
कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलङ्कृतचतुर्भुजा ।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्री रुक्माम्बुजासना ॥
या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ! ।
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥

ऋषि कहते हैं—राजन् ! नन्दा नाम की देवी जो नन्द से उत्पन्न होनेवाली हैं, उनकी यदि भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा की जाय तो वे तीनों लोकों के उपासक के अधीन कर देती हैं।

उनके श्री अङ्गों की कान्ति कनक के समान उत्तम है। वे सुनहरे रङ्ग के सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं। उनकी आभा सुवर्ण के तुल्य है तथा वे सुवर्ण के ही उत्तम आभूषण धारण करती हैं।

उनकी चार भुजाएँ, कमल, अङ्कुश, पाश और शङ्ख से सुशोभित हैं। वे इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी श्री तथा रुक्माम्बुजासना (सुवर्णमय कमल के आसन पर विराजमान) आदि नामों से पुकारी जाती हैं।

निष्पाप राजन् ! पहले मैंने रक्तदन्तिका नाम से जिन देवी का परिचय दिया है, अब उनके स्वरूप का वर्णन करूंगा, सुनो। वह सब प्रकार के भयों को दूर करनेवाली है।

रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा ।
रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥

रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका ।
पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम् ॥

वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी ।
दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ॥

कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी ।
भक्तान् सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥

वे लाल रङ्ग के वस्त्र धारण करती हैं। उनसे शरीर का रङ्ग भी लाल ही है और अङ्गों के समस्त आभूषण भी लाल रङ्ग के हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र, नेत्र, शिर के बाल, तीखे नख और दाँत सभी रक्तवर्ण के हैं, इसलिये वे रक्तदन्तिका कहलाती और अत्यन्त भयानक दिखायी देती हैं। जैसे स्त्री पति के प्रति अनुराग रखती है, उसी प्रकार देवी अपने भक्तपर (माता की भाँति) स्नेह रखते हुए उसकी सेवा करती हैं।

देवी रक्तदन्तिका का आकार वसुधा की भाँति विशाल है। उनके दोनों स्तन सुमेरु पर्वत के समान हैं। वे लम्बे, चौड़े, अत्यन्त स्थूल एवं बहुत ही मनोहर हैं।

कठोर होते हुए भी अत्यन्त कमनीय हैं तथा पूर्ण आनन्द के समुद्र हैं। सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करनेवाले ये दोनों स्तन देवी अपने भक्तों को पिलाती है।

खड्गं पात्रञ्च मुसलं लाङ्गलञ्च बिभर्ति सा।
आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च॥
अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम्॥
(भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात्।)
अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम्।
तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना॥
शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना।
गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी॥

वे अपनी चार भुजाओं में खड्ग, पानपात्र, मुसल और हल धारण करती हैं। ये ही रक्तचामुण्डा और योगेश्वरी देवी कहलाती हैं।

इनके द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है। जो इन रक्तदन्तिका देवी का भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह भी चराचर जगत् में व्याप्त होता है।

(वह यथेष्ट भोगों को भोगकर अन्त में देवी के साथ सायुज्य प्राप्त कर लेता है।) जो प्रतिदिन रक्तदन्तिका देवी के शरीर का यह स्तवन करता है, उसकी वह देवी प्रेमपूर्वक संरक्षणरूप सेवा करती हैं—ठीक उसी तरह, जैसे पतिव्रता नारी अपने प्रियतम पति की परिचर्या करती है।

शाकम्भरी देवी के शरीर की कान्ति नीले रङ्ग की है। उनके नेत्र नील कमल के समान हैं, नाभि नीची है तथा त्रिवली से विभूषित उदर (मध्यभाग) सूक्ष्म है।

सुकर्कसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी ।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥
पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसञ्चयम् ।
काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युभयापहम् ॥
कार्मुकञ्च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी ।
शाकम्भरी शताक्षी सा दैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥
विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् ।
उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ॥
शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन् ।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥

उनके दोनों स्तन अत्यन्त, कठोर, सब ओर से बराबर, ऊँचे, गोल, स्थूल तथा परस्पर सटे हुए हैं। वे परमेश्वरी कमल में निवास करनेवाली हैं और हाथ में बाणों से भरी मुष्टि, कमल, शाक-समूह तथा प्रकाशमान धनुष धारण करती हैं।

वह शाकसमूह अनन्त मनोवाञ्छित रसों से युक्त तथा क्षुधा, तृषा और मृत्यु के भय को नष्ट करनेवाला तथा फूल, पल्लव, मूल आदि एवं फलों से सम्पन्न है। वे ही शाकम्भरी, शताक्षी तथा दुर्गा कही गयी हैं।

वे शोक से रहित, दुष्टों का दमन करनेवाली तथा पाप और विपत्ति को शान्त करनेवाली हैं। उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका और पार्वती भी वे ही हैं।

जो मनुष्य शाकम्भरी देवी की स्तुति, ध्यान, जप, पूजा और वन्दना करता है, वह शीघ्र ही अन्न, पान एवं अमृतरूप अक्षय फल का भागी होता है।

भीमाऽपि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा ।
विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥
चन्द्रहासञ्च डमरुं शिरः पात्रञ्च बिभ्रती ।
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥
तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ।
चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता ॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते ।
इत्येता मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप! ॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया ॥

भीमादेवी का वर्ण भी नील ही है। उनकी दाढ़ें और दांत चमकते रहते हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं, स्वरूप स्त्री का है, स्तन गोल-गोल और स्थूल हैं। वे अपने हाथों में चन्द्रहास नामक खड्ग, डमरू, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं। वे ही एकवीरा, कालरात्रि तथा कामदा कहलाती और इन नामों से प्रशंसित होती हैं।

भ्रामरी देवी की कान्ति विचित्र (अनेक रङ्ग की) है। वे अपने तेजोमण्डल के कारण दुर्धर्ष दिखायी देती हैं। उनका अङ्गराग भी अनेक रङ्ग का है तथा वे चित्र-विचित्र आभूषणों से विभूषित हैं।

चित्रभ्रमर पाणि और महामारी आदि नामों से उनकी महिमा का गान किया जाता है। राजन्! इस प्रकार जगन्माता चण्डिका देवी की ये मूर्तियां बतलायी गयी हैं।

जो कीर्तन करने पर कामधेनु के समान सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करती हैं। यह परम गोपनीय रहस्य है। इसे तुम्हें दूसरे किसी को नहीं बतलाना चाहिये।

व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥
सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि ।
पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥
देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥
(एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि ।
सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत् ।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् ॥)

॥ इति मूर्तिरहस्यं सम्पूर्णम् ॥

दिव्य मूर्तियों का यह आख्यान मनोवाञ्छित फल देनेवाला है, इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके तुम निरन्तर देवी के जप (आराधन) में लगे रहो।

सप्तशती के मन्त्रों के पाठमात्र से मनुष्य सात जन्मों में किये हुए ब्रह्महत्या सदृश घोर पातकों एवं समस्त कल्मषों से मुक्त हो जाता है।

इसलिये मैंने पूर्ण प्रयत्न करके देवी के गोपनीय से भी अत्यन्त गोपनीय ध्यान का वर्णन किया है, जो सब प्रकार के मनोवाञ्छित फलों को देनेवाली है ।

(उनके प्रसाद से तुम सर्वमान्य हो जाओगे । देवी सर्वरूपमयी है तथा सम्पूर्ण जगत् देवीमय है। अतः मैं उन विश्वरूपा परमेश्वरी को नमस्कार करता हूं ।)

श्री दुर्गामानस-पूजा

उद्यच्चन्दनकुङ्कुमारुणपयोधाराभिराप्लावितां
नानानर्घ्यमणिप्रवालघटितां दत्तां गृहाणाम्बिके ।
आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो ।
मातः सुन्दरि ! भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात् ॥
देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं
चञ्चत्काञ्चनसञ्चयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम् ।
एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलम्
गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाम्बिके ! ॥

मातः त्रिपुरसुन्दरि! आप भक्तजनों की मनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाली कल्पलता हो। मा ! यह पादुका आदरपूर्वक आपके श्रीचरणों में समर्पित है,इसे ग्रहण करो। यह उत्तम चन्दन और कुङ्कुम से मिली हुई लाल जल की धारा से धोयी गयी है। भाँति-भाँति की बहुमूल्य मणियों तथा मूङ्गों से इसका निर्माण हुआ है और बहुत-सी देवाङ्गनाओं ने अपने कर-कमलों द्वारा भक्तिपूर्वक इसे सब ओर से धो-पोंछकर स्वच्छ बना दिया है।

मा ! देवताओं ने आपके बैठने के लिये यह दिव्य सिंहासन लाकर रख दिया है, इसपर विराजो। यह वह सिंहासन है, जिसकी देवराज इन्द्र आदि भी पूजा करते हैं। अपनी कान्ति से दमकते हुए राशि-राशि सुवर्ण से इसका निर्माण किया गया है। यह अपनी मनोहर प्रभा से सदा प्रकाशमान रहता हैं। इसके सिवा, यह चम्पा और केतकी की सुगन्ध से पूर्ण अत्यन्त निर्मल तेल और सुगन्धयुक्त उबटन है, जिसे दिव्य युवतियां आदरपूर्वक आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रही हैं, कृपया इसे स्वीकार कीजिये।

पश्चाद्देवि गृहाण! शम्भुगृहिणि! श्रीसुन्दरि! प्रायशो
गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम्।
तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनीस्रोतसि
स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरि! त्वन्मुदे॥

सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां
सचन्दनसकुङ्कुमागुरुभरेण विभ्राजिताम्।
महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां
गृहाण वरदायिनी त्रिपुरसुन्दरि! श्रीप्रदे!॥

गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासन्तानहस्ताम्बुज-
प्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम्।

देवि! इसके पश्चात् यह विशुद्ध आँवले का फल ग्रहण कीजिये। शिवप्रिये! त्रिपुरसुन्दरि! इस आँवले में प्रायः जितने भी सुगन्धित पदार्थ हैं, वे सभी डाले गये हैं, इससे यह परम सुगन्धित हो गया है। अतः इसको लगाकर बालों को कंघी से आप झाड़ लो और गङ्गाजी की पवित्र धारा में नहाओ। तदनन्तर यह दिव्य गन्ध सेवा में प्रस्तुत है, यह आपके आनन्द की वृद्धि करनेवाला हो।

सम्पत्ति प्रदान करनेवाली वरदायिनी त्रिपुरसुन्दरि! यह सरस शुद्ध कस्तूरी ग्रहण करो। इसे स्वयं देवराज इन्द्र की पत्नी महारानी शची अपने कर-कमलों में लेकर सेवा में खड़ी हैं। इसमें चन्दन, कुङ्कुम तथा अगुरु का मेल होने से इसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। इससे बहुत अधिक गन्ध निकलने के कारण यह बड़ी मनोहर प्रतीत होती है।

मा श्रीसुन्दरि! यह परम उत्तम निर्मल वस्त्र सेवा में समर्पित है, यह आपके

मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलम्
चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि ! त्वन्मुदम् ॥

स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका
मध्ये सारसना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये ।
हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके
विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम् ॥

ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरम्
सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम् ।

हर्ष को बढ़ावे । मातः ! इसे गन्धर्व, देवता तथा किन्नरों की प्रेयसी सुन्दरियाँ अपने फैलाये हुए कर-कमलों में धारण किये खड़ी हैं । यह केसर में रङ्गा हुआ पीताम्बर है । इससे परम प्रकाशमान सूर्यमण्डल की शोभामयी दिव्य कान्ति निकल रही हैं, जिसके कारण यह बहुत ही शोभित हो रहा है ।

आपके दोनों कानों में सोने के बने हुए कुण्डल झिलमिलाते रहें, कर-कमल की एक अङ्गुली में अङ्गूठी शोभा पावे, कटिभाग में नितम्बप्रदेश पर करधनी सुहाये, दोनों चरणों में मञ्जीर मुखरित होता रहे, वक्षःस्थल में हार सुशोभित हो और दोनों कलाइयों में कङ्कण खनखनाते रहें । आपके मस्तक पर रक्खा हुआ दिव्य मुकुट प्रतिदिन आनन्द प्रदान करे । ये सब आभूषण प्रशंसा के योग्य हैं ।

धन देनेवाली शिवप्रिया पार्वति ! आप गले में बहुत ही चमकीली सुन्दर हँसली पहन लें, ललाट के मध्यभाग में सौन्दर्य की मुद्रा (चिह्न) धारण करनेवाले सिन्दूर की बेन्दी लगावें तथा अत्यन्त सुन्दर पद्मपत्र की शोभा को तिरस्कृत

राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पददलश्रीमोचने लोचने
तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि ! श्रीपदे ॥
अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवम्
निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ! ।
गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमै-
र्विनिर्मितमघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम् ॥
कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितम्
चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम् ।
देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजैरम्भः
शाम्भवि! सम्भ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके! ॥

करनेवाले नेत्रों में यह काजल भी लगा लें, यह काजल दिव्य औषधियों से तैयार किया गया है ।

पापों का नाश करनेवाली सम्पत्तिदायिनी त्रिपुरसुन्दरि ! अपने मुख की शोभा निहारने के लिये आप यह दर्पण ग्रहण करो। इसे साक्षात् रति रानी अपने कर-कमलों में लेकर सेवा में उपस्थित हैं । इस दर्पण के चारों ओर मूङ्गे जड़े हैं । प्रचण्ड वेग से घूमनेवाले मन्दराचल की मथानी से जब क्षीरसमुद्र मथा गया, उस समय यह दर्पण उसीसे प्रकट हुआ था । यह चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल है ।

भगवान् शङ्कर की धर्मपत्नी पार्वतीदेवि ! देवाङ्गनाओं के मस्तक पर रक्खे हुए बहुमूल्य रत्नमय कलशों द्वारा शीघ्रतापूर्वक दिया जानेवाला यह निर्मल जल ग्रहण करें । इसे चम्पा और गुलाल आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित किया गया है तथा यह कस्तूरी रस, चन्दन, अगुरु और सुधा की धारा से आप्लावित है ।

कह्लारोत्पलनागकेसरसरोजाख्यावलीमालती-

मल्लीकैरवकेतकादिकुसुमै रक्ताश्वमारादिभिः ।

पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्रोतसा

ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकाम्पूजये ॥

मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजःकर्पूरशैलेयजै-

र्माध्वीकैः सह कुङ्कुमैः सुरचितैः सर्पिर्भिरामिश्रितैः ।

सौरभ्यस्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रे भवेत् प्रीतये

धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीचण्डिके ! त्वन्मुदे ॥

धृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो

महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनीनिर्मितः ।

मैं कह्लार, उत्पल, नागकेसर, कमल, मालती, मल्लिका, कुमुद, केतकी और लाल कनेर आदि फूलों से, सुगन्धित पुष्पमालाओं से तथा नाना प्रकार के रसों की धारा से लाल कमल के भीतर निवास करनेवाली श्रीचण्डिका देवी की पूजा करता हूं।

श्री चण्डिका देवी ! देवबधुओं के द्वारा तैयार किया हुआ यह दिव्य धूप आपकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला हो। यह धूप रत्नमय पात्र में, जो सुगन्ध का निवासस्थान है, रक्खा हुआ है, यह आपको सन्तोष प्रदान करे। इसमें जटामांसी, गुग्गुल, चन्दन, अगुरु-चूर्ण, कपूर, शिलाजीत, मधु, कुङ्कुम तथा घी मिलाकर उत्तम रीति से बनाया गया है।

देवी त्रिपुरसुन्दरि ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिये यहां यह दीप प्रकाशित हो रहा है। यह घी से जलता है, इसकी दीवट में सुन्दर रत्न का डण्डा लगा है,

सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वित-
स्तव त्रिपुरसुन्दरि ! स्फुरति देवि ! दीपो मुदे ॥

जाती सौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं
युक्तं हिङ्गुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः ।
पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसम्मिश्रितं
नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीचण्डिके ! त्वन्मुदे ॥

लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं
सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम् ।
सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं
गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ॥

इसे देवाङ्गनाओं ने बनाया है। यह दीपक सुवर्ण के चषक (पात्र) में जलाया गया है। इसमें कपूर से साथ बत्ती रही है। यह भारी-से-भारी अन्धकार का भी नाश करनेवाला है।

श्री चण्डिका देवि ! देववधुओं ने आपकी प्रसन्नता के लिये यह दिव्य नैवेद्य तैयार किया है, इसमें अगहनी के चावल का स्वच्छ भात है, जो बहुत ही रुचिकर और चमेली की सुगन्ध से वासित है। साथ ही हींग, मिर्च और जीरा आदि सुगन्धित द्रव्यों से छौंक-बघार कर बनाये हुए नाना प्रकार के व्यञ्जन भी हैं, इसमें भाँति-भाँति के पकवान, खीर मधु, दही और घी का भी मेल है।

मातः ! सुन्दर रत्नमय पात्र में सजाकर रक्खा हुआ यह दिव्य ताम्बूल अपने मुख में ग्रहण कीजिये। लवङ्ग की कली चुभोकर इसके बीड़े लगाये गये हैं, अतः बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं, इनमें बहुत-से पान के पत्तों का उपयोग किया गया है। इन सब बीड़ों में कोमल जावित्री, कपूर और सोपारी पड़े हैं। यह ताम्बूल सुधा के माधुर्य से परिपूर्ण है।

शरत्प्रभवचन्द्रमःस्फुरितचन्द्रिकासुन्दरम्

गलत्सुरतरङ्गिणीललितमौक्तिकाडम्बरम् ।

गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं

महात्रिपुरसुन्दरि ! प्रकटमातपत्रं महत् ॥

मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिःसदाऽऽन्दोलितं

शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम् ।

सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभिः

स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः ॥

स्वर्गाङ्गणे वेणुमृदङ्गशङ्खभेरीनिनादैरुपगीयमाना ।

महात्रिपुरसुन्दरी मातः पार्वति ! आपके सामने यह विशाल एवं दिव्य छत्र प्रकट हुआ है, इसे ग्रहण करें । यह शरत्-काल के चन्द्रमा की मनोहारिणी चाँदनी के समान सुन्दर है, इसमें लगे हुए सुन्दर मोतियों की झालर ऐसी जान पड़ती है, मानो देवनदी गङ्गा का स्रोत ऊपर से नीचे गिर रहा हो । यह छत्र सुवर्ण-मय दण्ड के कारण वहुत शोभा पा रहा है ।

मा ! सुन्दरी स्त्रियों के हाथों से निरन्तर डुलाया जानेवाला यह श्वेत चँवर, जो चन्द्रमा और कुन्द के समान उज्ज्वल तथा पसीने के कष्ट को दूर करनेवाला है, आपके हर्ष को बढ़ावे । इसके सिवा महर्षि अगस्त्य, वसिष्ठ, नारद, शुक, व्यास आदि तथा वाल्मीकि मुनि अपने-अपने चित्त में जो वेदमन्त्रों के उच्चारण का विचार करते हैं, उनकी यह मनःसङ्कल्पित वेदध्वनि आपके आनन्द की वृद्धि करे ।

स्वर्ग के आँगन में वेणु, मृदङ्ग, शङ्ख तथा भेरी की मधुर ध्वनि के साथ जो

कोलाहलैराकलिता तवाऽस्तु विद्याधरीनृत्यकला सुखाय ॥

देवि ! भक्तिरसभावितवृत्ते प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम् ॥

एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः ।
यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ॥

॥ इति श्री दुर्गामानस-पूजा सम्पूर्णा ॥

सङ्गीत होता हैं तथा जिसमें अनेक प्रकार के कोलाहल का शब्द व्याप्त रहता है, वह विद्याधरी द्वारा प्रदर्शित नृत्य-कला आपके लिये सुख की वृद्धि करे।

देवि ! आपके भावित इस पद्यमय स्तोत्र में यदि कहीं से भी कुछ भक्ति का लेश मिले तो उसी से प्रसन्न हो जावें। मा ! आपकी भक्ति के लिये चित्त में जो आकुलता होती है, वही एकमात्र जीवन का फल है, वह कोटि-कोटि जन्म धारण करने पर भी इस संसार में आपकी कृपा के बिना सुलभ नहीं होती।

इन उपचारकल्पित सोलह पद्यों से जो परा देवता भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्तवन करता है, वह उन उपचारों के समर्पण का फल प्राप्त करता है।

अथ दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी ।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी ॥
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा ।
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला ॥
दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी ।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥
दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी ।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥
दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी ।
दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी ।
नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः ॥
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥

॥ इति श्रीदुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला सम्पूर्णा ॥

अथ सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत् ॥

न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नापि ध्यानञ्च न न्यासो न च वाऽर्चनम् ॥
कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
अतिगुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ! ।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ॥
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे । ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा । इति मन्त्रः । नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि ! । नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि ! ॥ १ ॥ नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ! ॥ २ ॥ जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे । ऐङ्कारी सृष्टिरूपायै ह्रीङ्कारी प्रतिपालिका ॥ ३ ॥ क्लीङ्कारी कामरूपिण्यै बीजरूपे ! नमोऽस्तु ते । चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥४॥ विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि ! ॥ ५ ॥ धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी । क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि ! शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥ ६ ॥ हुं हुं हुङ्काररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी । भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे ! भवान्यै ते नमो नमः ॥ ७ ॥ अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा । पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ॥ ८ ॥ सां सीं सूं सप्तशतीदेव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे । इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे ॥ अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति ! ॥ यस्तु कुञ्जिकया देवि ! हीनां सप्तशतीं पठेत् । न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसम्वादे कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अथ सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच ।

देवि त्वं भक्तसुलभे ! सर्वकार्यविधायिनि ! । कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायम्ब्रूहि यत्नतः ।

देव्युवाच ।

शृणु देव ! प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् । मया तवैव स्नेहेनाऽप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ॥

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायणऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः ।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

दुर्गे ! स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि ! का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ! । एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥

॥ इति श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते गणपतिखण्डे ४५ तमोऽध्यायः

परशुरामकृतं दुर्गास्तोत्रम्

परशुराम उवाच ।

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च ।
आविर्भूता विग्रहतः पुरासृष्ट्युन्मुखस्य च ॥
सूर्यकोटिप्रभायुक्ता वस्त्रालङ्कारभूषिता ।
वह्निशुद्धांशुकाधाना सुस्मिता सुमनोहरा ॥
नवयौवनसम्पन्ना सिन्दूरबिन्दुशोभिता ।
ललितं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥
अहोऽनिर्वचनीया त्वं चार्वीं मूर्त्तिश्च बिभ्रती ।
मोक्षप्रदा मुमुक्षूणां महद्विष्णोर्विधिः स्वयम् ॥
मुमोह क्षणमात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम् ।
बाले सम्भूय सहसा सस्मिता धाविता पुरा ॥
सद्भिःख्याता तेन राधा मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
कृष्णस्त्वां सहसाऽऽहूय वीर्याधानञ्चकार ह ॥
ततो डिम्बं महज्जज्ञे ततो भूतो महाविराट् ।
यस्यैव लोमकूपेषु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च ॥
ततः शृङ्गारक्रमेणैव त्वन्निःश्वासो बभूव ह ।
स निः श्वासो महावायुः स विराड्विश्वधारकः ॥

तव घर्मजलेनैव पुप्लाव विश्वगोलकम् ॥
स विराड् विश्वनिलयो जलराशिर्बभूव ह ॥
ततस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्चमूर्त्ति(र्त्ती?)श्च बिभ्रती ।
प्राणाधिष्ठात्री या मूर्त्तिः कृष्णस्य परमात्मनः ॥
कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः ।
वेदाधिष्ठात्री या मूर्त्तिर्वेदशास्त्रप्रसूरपि ॥
तां सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः ।
ऐश्वर्याधिष्ठात्रीं या मूर्त्तिः शान्तिश्च शान्तिरूपिणी ॥
लक्ष्मीं वदन्ति सन्तस्त्वां शुद्धां सत्त्वस्वरूपिणीम् ।
रागाधिष्ठात्रीं या देवी शुक्लमूर्त्तिः सतां प्रसूः ॥
सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो ।
बुद्धिर्विद्या सर्वशक्तेर्या मूर्त्तिरधिदेवता ॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ।
सर्वमङ्गलबीजस्य शिवस्य मन्दिरेऽधुना ॥
शिवे शिवस्वरूपा त्वं लक्ष्मीर्नारायणान्तिके ।
सरस्वती च सावित्री वेदसूर्ब्रह्मणः प्रिया ॥
राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च ।
परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी ॥
त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषितः ।
त्वद्विधा योषितः सर्वास्त्वं सर्वबीजरूपिणी ॥

छाया सूर्यस्य चन्द्रस्य रोहिणी सर्वमोहिनी।
शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी॥
वरुणानी जलेशस्य वायोः स्त्री प्राणवल्लभा।
वह्नेः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी॥
यमस्य च सुशीला च नैर्ऋतस्य च कटभी।
ईशानस्य शशिकला शतरूपा मनोः प्रिया॥
देवहूती कर्दमस्य वशिष्ठस्याऽप्यरुन्धती।
अदितिर्देवमाता या मुद्राऽगस्त्यमुनेः प्रिया॥
अहि(ह)ल्या गौतमस्याऽपि सर्वाधारा वसुन्धरा।
गङ्गा च तुलसी चाऽपि पृथिव्यां या सरिद्वरा॥
एताः सर्वाश्च या ह्यन्याः सर्वास्त्वत्कलयाऽम्बिके!।
गृहलक्ष्मीर्गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु॥
तपस्विनां तपस्या त्वं गायत्री ब्राह्मणस्य च।
सतां सत्त्वस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्कुरा॥
ज्योतीरूपा निर्गुणस्य शक्तिस्त्वं सगुणस्य च।
सूर्ये प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने॥
जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे।
त्वं भूमौ गन्धरूपा च आकाशे शब्दरूपिणी॥
क्षुत्पिपासादयस्त्वं च जीविनां सर्वशक्तयः।
सर्वबीजस्वरूपा त्वं संसारे साररूपिणी॥

स्मृतिर्मेधा च बुद्धिर्वा ज्ञानशक्तिर्विपश्चिताम् ।
कृष्णेन विद्या या दत्ता सर्वज्ञानप्रसूः शुभा ।
शूलिने कृपया सा त्वं यतो मृत्युञ्जयः शिवः ॥
सृष्टिपालनसंहारशक्तयस्त्रिविधाश्च याः । ब्रह्मविष्णुमहेशानां सा त्वमेव नमोऽस्तु ते ॥
मधुकैटभभीत्या च त्रस्तो धाता प्रकम्पितः ।
स्तुत्वा मुमोच यान्देवीं तां मूर्ध्ना प्रणमाम्यहम् ॥
मधुकैटभयोर्युद्धे त्राताऽसौ विष्णुरीश्वरीम् ।
बभूव शक्तिमांस्तुत्वा तां दुर्गाम्प्रणमाम्यहम् ॥
त्रिपुरस्य महायुद्धे सरथे पतिते शिवे । यान्तुष्टुवुः सुराः सर्वे तां दुर्गाम्प्रणमाम्यहम् ॥
विष्णुना वृषरूपेण स्वयं शम्भुः समुत्थितः । जघान त्रिपुरं स्तुत्वा तां दुर्गाम्प्रणमाम्यहम् ॥
यदाज्ञया वाति वातः सूर्यस्तपति सन्ततम् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निस्तां दुर्गाम्प्रणमाम्यहम्
यदाज्ञया हि कालश्च शश्वद्भ्रमति वेगतः । मृत्युश्चरति जन्त्वोघे तां दुर्गाम्प्रणमाम्यहम् ॥
स्रष्टासृजति सृष्टिञ्च पाता पाति यदाज्ञया । संहर्त्ता संहरेत्काले तां दुर्गाम्प्रणमाम्यहम् ॥
ज्योतिः स्वरूपो भगवान् श्रीकृष्णो निर्गुणःस्वयम् ।
यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्त्तुं नमामि ताम् ॥
रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे । शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति ॥
इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च प्रणम्य तां रुरोद ह ।
तुष्टा दुर्गा सम्भ्रमेण चाभयञ्च वरन्ददौ ॥
अमरो भव हे पुत्र ! वत्स ! सुस्थिरताम्व्रज ।
स(श)र्वप्रसादात्सर्वत्र जपोऽस्तु तव सन्ततम् ॥
सर्वान्तरात्माम्भगवांस्तुष्टोऽस्तु सन्ततं हरिः ।
भक्तिर्भवतु ते कृष्णे शिवदे च शिवे गुरौ ॥

इष्टदेवे गुरौ यस्य भक्तिर्भवति शाश्वती।
तं हन्तुं न हि शक्ताश्च रुष्टाश्च सर्वदेवताः॥
श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं शिष्यो हि शंकरस्य च।
गुरुपत्नीं स्तौसि यस्मात्कस्त्वां हन्तुमिहेश्वरः॥
अहो न कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
अन्यदेवेषु ये भक्ता न भक्ता वा निरङ्कुशाः॥
चन्द्रमा बलवांस्तुष्टो येषां भाग्यवताम्भृगो!।
तेषां तारागणा रुष्टाः किं कुर्वन्ति च दुर्बलाः॥
यस्य तुष्टः सभायाञ्चेन्नरदेवो महान्सुखी।
तस्य किम्वा करिष्यन्ति रुष्टा भृत्याश्चदुर्बलाः॥
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा दत्त्वा रामं शुभाशिषम्।
जगामाऽन्तःपुरं तूर्णं हरिशब्दो बभूव ह॥
काण्वशाखोक्तस्तोत्रञ्च पूजाकाले च यः पठेत्।
यात्राकाले च प्रातर्वा वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम्॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत्।
विद्यार्थी लभते विद्यां प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाम्॥
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धननष्टो धनं लभेत्।
यस्य रुष्टो गुरुर्देवो राजा वा बान्धवोऽथवा॥
यस्य तुष्टश्चवरदः स्तोत्रराजप्रसादतः।
दस्युग्रस्तोऽहिग्रस्तश्च शत्रुग्रस्तो भयानकः॥

व्याधिग्रस्तो भवेन्मुक्तः स्तोत्रस्मरणमात्रतः ।
राजद्वारे श्मशाने च कारागारे च बन्धने ॥
जलराशौ निमग्नश्च मुक्तो भवति स्तोत्रतः ।
स्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दारुणे ॥
स्तोत्रस्मरणमात्रेण वाञ्छितार्थं लभेद्ध्रुवम् ।
कृत्वा हविष्यं वर्षञ्च स्तोत्रराजं शृणोति या ॥
भक्त्या दुर्गाञ्च सम्पूज्य महावन्ध्या प्रसूयते ।
लभते सा दिव्यपुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् ॥
असौभाग्या च सौभाग्यं षण्मासश्रवणाल्लभेत् ।
नवमासं काकबन्ध्या मृतवत्सा च भक्तितः ॥
स्तोत्रराजं या शृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ।
कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं शृणोति या ।
घटे सम्पूज्य दुर्गाञ्च सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसम्वादे गणपतिखण्डे
परशुरामकृतं दुर्गास्तोत्रं समाप्तम् ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते ३७ तोऽध्याये

श्रीदुर्गाकवचम्

नारद उवाच ।

कवचं श्रोतुमिच्छामि ताञ्च विद्यां दशाक्षरीम् ।
नाथ ! त्वत्तो हि सर्वज्ञ भद्रकाल्याश्च साम्प्रतम् ।।

नारायण उवाच ।

शृणु नारद ! वक्ष्यामि महाविद्यां दशाक्षरीम् ।
गोपनीयञ्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।।
ओ३म् ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहेति महामन्त्रम् ।
दुर्वासा हि ददौ राज्ञे पुष्करे सूर्यपर्वणि ।
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिः कृता पुरा ।
पञ्चलक्षजपेनैव राज्ञा कवचमुत्तमम् ।।
बभूव सिद्धकवचोऽप्ययोध्यामाजगाम सः ।
कृत्स्नां हि पृथ्वीं जिग्ये कवचस्य प्रसादतः ।।

नारद उवाच ।

श्रुता दशाक्षरी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि कवचं ब्रूहि मे प्रभो ! ।।

नारायण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र ! कवचं परमाद्भुतम् ।

नारायणेन यद्दत्तं कृपया शूलिने पुरा ॥
त्रिपुरस्य वधे घोरे शिवस्य विजयाय च ।
तदेव शूलिना दत्तं पुरा दुर्वाससे मुने ! ॥
दुर्वाससा च यद्दत्तं सुचन्द्राय महात्मने ।
अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥
ओ३म् ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ।
क्लीं कपालं सदा पातु ह्रीं ह्रीं ह्रीं इति लोचने ॥
ओ३म् ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा नासिकाम्मे सदाऽवतु ।
क्रीं कालिके रक्ष रक्ष स्वाहा दन्तं सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं भद्रकालिके स्वाहा पातु मेऽधरयुग्मकम् ।
ॐ ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा कर्णयुग्मं सदाऽवतु ।
ॐ क्रीं क्रीं काल्यै स्वाहा स्कन्धं पातु सदाऽवतु ॥
ॐ क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा मम वक्षः सदाऽवतु ।
ॐ क्रीं कालिकायै स्वाहा मम नाभिं सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा मम पृष्ठं सदाऽवतु ।
रक्तबीजविनाशिन्यै स्वाहा हस्तौ सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा पादौ सदाऽवतु ।
ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥
प्राच्यां पातु महाकाली आग्नेय्यां रक्तदन्तिका ।
दक्षिणे पातु चामुण्डा नैर्ऋत्यां पातु कालिका ॥
श्यामा च वारुणे पातु वायव्यां पातु चण्डिका ।
उत्तरे विकटास्या च ऐशान्यां साट्टहासिनी ॥

ऊर्ध्वं पातु लोलजिह्वा मायाऽऽद्या पात्वधः सदा ।
जले स्थले चाऽन्तरिक्षे पातु विश्वप्रसूः सदा ॥
इति ते कथितं वत्स ! सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ।
सर्वेषां कवचानाञ्च सारभूतम्परात्परम् ।
सप्तद्वीपेश्वरो राजा सुचन्द्रोऽस्य प्रसादतः ॥
कवचस्य प्रसादेन मान्धाता पृथिवीपतिः ॥
प्रचेता लोमशश्चैव यतः सिद्धो बभूव ह ।
यतो हि योगिनां श्रेष्ठः सौभरिः पिप्पलायनः ॥
यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
महादानानि सर्वाणि तपांसि च व्रतानि च ।
निश्चितं कवचस्याऽस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेत्कालीं जगत्प्रसूम् ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसम्वादे गणपतिखण्डे दुर्गाकवचं समाप्तम् ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते ३८ तमेऽध्याये गणपतिखण्डे

पद्माकवचम्

नारायण उवाच ।

शृणु विप्रेन्द्र ! पद्मायाः कवचं परमं शुभम् ।
पद्मनाभेन यद्दत्तं नाभिपद्मे च ब्रह्मणे ॥
सम्प्राप्य कवचम्ब्रह्मा तत्पद्मे ससृजे जगत् ।
पद्मालयाप्रसादेन सलक्ष्मीको बभूव सः ॥
पद्मालयावरम्प्राप्य पाद्मश्च जगताम्प्रभुः ।
पाद्मेन पद्मकल्पे च कवचम्परमाद्भुतम् ॥
दत्तं सनत्कुमाराय प्रियपुत्राय धीमते ।
कुमारेण च यद्दत्तं पुष्कराय च नारद ! ॥
यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा सर्वसिद्धेश्वरो महान् ।
परमैश्वर्य्यसंयुक्तः सर्वसम्पत्समन्वितः ॥
यद्धृत्वा च धनाध्यक्षः कुवेरश्च धनाधिपः ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ लक्ष्मीवन्तौ यतो मुने ! ।
पृथुः पृथ्वीपतिः सद्यो बभूव धारणाद्यतः ॥
कवचस्य प्रसादेन स्वयं दक्षः प्रजापतिः ।
धर्म्मश्च कर्मणां साक्षी पाता यस्य प्रसादतः ॥
यद्धृत्वा दक्षिणे बाहौ विष्णुः क्षीरोदशायिकः ।
भक्त्या विधत्ते कण्ठे च शेषो नारायणांशकः ॥

यद्धृत्वा वामनं लेभे कश्यपश्च प्रजापतिः ।
सर्वदेवाधिपः श्रीमान्महेन्द्रो धारणाद्यतः ॥

राजा मरुत्तो भगवान् बभूव धारणाद्यतः ।
त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान्नहुषो यस्य धारणात् ॥

विश्वं विजिग्ये खट्वाङ्गः पठनाद्धारणाद्यतः ।
मुचुकुन्दो यतः श्रीमान्मान्धातृतनयो महान् ॥

सर्वसम्पत्प्रदस्याऽस्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्चबृहती देवी पद्मालया स्वयम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः । पुण्यबीजञ्च महतां कवचम्परमाद्भुतम् ॥

ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ।
श्रीं मे पातु कपालञ्च लोचने श्रीं श्रियै नमः ॥
ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु ।
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम् ॥
ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तं सदाऽवतु ।
ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदाऽवतु ॥
ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदाऽवतु ।
ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदाऽवतु ॥
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदाऽवतु ।
ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदाऽवतु ॥
ॐ श्रीं श्रीं कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ।
ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा मम हस्तौ सदाऽवतु ॥
ॐ श्री निवासकान्तायै मम पादौ सदाऽवतु ।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ॥

प्राच्याम्पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया।
पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्याम्पातु श्रीः स्वयम्।
उत्तरे कमला पातु ऐशान्यां सिन्धुकन्यका॥
नारायणेशी पातूर्द्ध्वमधो विष्णुप्रियाऽवतु।
सन्ततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम॥
इति ते कथितं वत्स! सर्वमन्त्रौघविग्रहम्।
सर्वैश्वर्य्यप्रदं नाम कवचम्परमाद्भुतम्॥
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये।
यत्फलं लभते धर्मी कवचेन ततोऽधिकम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान्प्रतिजन्मनि॥
अस्ति लक्ष्मीगृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम्।
देवेन्द्रैश्चाऽसुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितम्भवेत्॥
स सर्वपुण्यवान्धीमान्सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि।
गुरुभक्ताय शिष्याय शरणाय प्रकाशयेत्॥
इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम्।
कोटिसंख्यप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥

॥ इति श्रीपद्माकवचं समाप्तम्॥

अथ दुर्गाकवचम्

कवचं कथितं ब्रह्मन्पद्मायाश्च मनोहरम् ।
परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं कथय प्रभो ! ॥
पद्माक्षप्राणतुल्यञ्च जीवनं बलकारणम् ।
कवचानाञ्च यत्सारं दुर्गासेवनकारणम् ॥

नारायण उवाच ।

शृणु नारद ! वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम् ।
श्रीकृष्णेनैव यद्दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥
ब्रह्मात्रिपुरसङ्ग्रामे शङ्कराय ददौ पुरा ।
जघान त्रिपुरं रुद्रो यद्धृत्वा भक्तिपूर्वकम् ॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः ।
यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी ॥
यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा ज्ञानवान् शक्तिमान्भुवि ।
शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनाञ्च गुरुर्यतः ।
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः ॥
ब्रह्माण्डविजयस्याऽस्य कवचस्य प्रजापतिः ।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवी दुर्गतिनाशिनी ॥
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
पुण्यतीर्थञ्च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥
ओ३म् ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ।
ओ३म् ह्रीं मे पातु कपालञ्च ओ३म् ह्रीं श्रीमितिलोचने ॥
पातु मे कर्णयुग्मञ्च ॐ दुर्गायै नमः सदा ।
ॐ ह्रीं श्रीमिति नासां मे सदा पातु च सर्वतः ॥

ह्रीं श्रीं हूमिति दन्तानि पातु क्लीमोष्ठयुग्मकम्।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु कण्ठञ्च दुर्गे रक्षतु गण्डकम्॥
स्कन्धं दुर्गविनाशिन्यै स्वाहा पातु निरन्तरम्।
वक्षो विपद्विनाशिन्यै स्वाहा मे पातु सर्वतः॥
दुर्गे दुर्गे रक्षणीति स्वाहा नाभिं सदाऽवतु।
दुर्गे दुर्गे रक्ष रक्ष पृष्ठं मे पातु सर्वतः॥
ओ३म् ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पातु सदाऽवतु।
ओ३म् ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गम्मे सदाऽवतु॥
प्राच्याम्पातु महामाया आग्नेय्याम्पातु कालिका।
दक्षिणे दक्षकन्या च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी॥
पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा।
कुवेरमाता कौवेर्य्यामैशान्यामीश्वरी सदा॥
उदूर्ध्वे नारायणी पातु अम्बिकाऽधः सदाऽवतु।
ज्ञाने ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रा सदाऽवतु॥
इति ते कथितं वत्स ! सर्वमन्त्रौघविग्रहम्।
ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
सर्वव्रतोपवासे च तत्फलं लभते नरः॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ कवचं धारयेत्तु यः॥
स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्दुर्गतिनाशिनीम्।

शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥
कवचं कण्वशाखोक्तमुक्तं नारद ! सुन्दरम् ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
॥ इति श्रीदुर्गाकवचं समाप्तम् ॥

क्षमा-प्रार्थना

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ! ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ! ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ! ।
यत्पूजितं मया देवि ! परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ॥
सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ! ।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ॥
अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि ! प्रसीद परमेश्वरि ! ॥
कामेश्वरि ! जगन्मातः ! सच्चिदानन्दविग्रहे ! ।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ! ॥
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ! ॥

॥ इति श्रीसात्त्विकजीवन-स्तोत्रमालायाः प्रथमो भागः समाप्तः ॥

अथ भगवतीध्यानानि

श्रीमहाकालीध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शंखं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

श्रीमहालक्ष्मीध्यानम्

अक्षस्रक्परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिञ्च चर्मजलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननाम्
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

श्रीमहासरस्वतीध्यानम्

घण्टा शूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

श्रीदुर्गाध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवाल खेटविलद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्राम्भजे॥

श्रीदेवीध्यानम्

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

श्रीमातृचरणानाम्

चाञ्चल्यारुणलोचनाञ्चितकृतां चन्द्रार्कचूडामणिं
चारुस्मेरमुखां चराचरजगत्संरक्षणीं सत्पदाम्॥
चञ्चच्चम्पकनासिकाग्रविलसन्मुक्तामणीरञ्जितां
श्रीशैलस्थलवासिनीं भगवतीं श्रीमातरम्भावये॥
कस्तूरीतिलकाञ्चितेन्दुविलसत्प्रोद्भासिभालस्थलीं
कर्पूरद्रवमिश्रचूर्णखदिरामोदोल्लसद्वीटिकाम्।
लोलापाङ्गतरङ्गितैरधिकृपासारैर्नतानन्दिनीं
श्रीशैलस्थलवासिनीं भगवतीं श्रीमातरम्भावये॥

मुद्रक—दि ंगाल प्रिंटिंग वर्क्स, १, सिनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता-१